स्थाना ग सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : स्थाना ग सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– जिनशासन के श्रुतज्ञान रूप द्वादशा गी का यह तीसरा अ ग-शास्त्र है अर्थात् पहला अ गशास्त्र आचारा ग सूत्र है, दूसरा अ गशास्त्र सूयगडा ग सूत्र है और तीसरा अ गशास्त्र यह स्थाना ग सूत्र है । सभी अ गशास्त्र गणधर रचित होने से यह शास्त्र स्थाना ग सूत्र भी गणधर रचित है । भगवान महावीर स्वामी के ११ गणधरों में से ९ गणधर भगवान की उपस्थिति में ही मोक्ष पधार गये थे एव गौतम स्वामी गणधर प्रभु को भगवान के निर्वाण होने की रात्रि में ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया था। तीर्थंकर के प्रथम पाट पर छद्मस्थ गणधर बिराजित होते हक्त, वे ही भगवान के नाम से सर्व तत्त्वों का निरूपण कर सकते हक्त । केवली गणधर तो स्वय सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने से प्रत्येक तत्त्व का निरूपण भगवान के नाम से नहीं कर सकते । अत: भगवान के निर्वाण बाद गौतम स्वामी केवली पर्याय में विचरण करते थे एव सुधर्मास्वामी भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर आचार्य बनाये गये थे अर्थात् जिनशासन की स पूर्ण बागडोर सुधर्मास्वामी के सुपूर्द की गई थी । इन्ही कारणों से द्वादशा गी सुधर्मा स्वामी के नाम से कही जाने लगी है कि तु मौलिक रूप से स पूर्ण द्वादशा गी के बारह अ गशास्त्रों के रचनाकार समुच्चय गणधर प्रभु ही कहलाते हक्त क्यों कि तीर्थंकर द्वारा चतुर्विध स घ की स्थापना के बाद प्रभु आज्ञा से सभी गणधर मिलकर द्वादशा गी की पूरे शासन के लिये रचना कर लेते हक्त । वही एक द्वादशा गी जिनशासन के समस्त साधु-साध्वियों को सिखाई जाती है। इस प्रकार उपलब्ध यह तीसरा अ गशास्त्र स्थाना ग सूत्र भी मौलिक रूप से गणधर रचित है ।

प्रश्न–२ : इस सूत्र के व्याख्याकार-विवेचनकार कौन है ?

उत्तर– वर्तमान में इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है । उसके बाद अनेक बहुश्रुत श्रमणों ने इस सूत्र पर स स्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में स क्षिप्त,

विस्तृत अर्थ-विवेचन आदि लिखे हक्त जो विविध प्रकार से मुद्रित उपलब्ध है । जिसमें स्थानकवासी पर पराओं में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. का, उपाध्याय श्री कन्हैयालालजी म.सा. का, प जाब से श्री अमरमुनिजी का, गुजरात से श्री प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है ।

प्रश्न–३ : इस सूत्र में विषय वर्णन किस प्रकार का है ?

उत्तर– इस सूत्र में विषय वर्णन १ से १० तक की स ख्या के आधार से किया गया है । इसलिये उस स ख्या में समाविष्ट होने वाले तत्त्व, उपदेश, कथाविषय, गणितविषय, आचारविषय आदि अनेक विषयों का समावेश इस शास्त्र में किया गया है । इसलिये इस शास्त्र का कोई भी एक मुख्य विषय नहीं कहा जा सकता है ।

प्रश्न–४ : इस सूत्र के कितने विभाग-प्रतिविभाग हक्त ?

उत्तर– इस शास्त्र में १ से १० स ख्या के आधार से १० अध्ययन हक्त जिन्हें 'स्थान' स ज्ञा दी गई है अर्थात् मुख्य विभाग 'दस स्थान' है। इन मुख्य विभाग में किसी में प्रतिविभाग है और किसी में नहीं है। उन प्रतिविभागों को 'उद्देशक' कहा गया है । इस प्रकार इस शास्त्र में १० स्थान है और उसमें किन्हीं किन्हीं में उद्देशक भी है । प्रथम स्थान में उद्देशक नहीं है, **दूसरे तीसरे चौथे** स्थान में चार-चार उद्देशक हक्त । **पाँचवें** स्थान में तीन उद्देशक हक्त । आगे किसी भी **स्थान** में उद्देशक रूप विभाग नहीं है।

स्थान–१

प्रश्न–१ : इस प्रथम स्थान में क्या वर्णन है ?

उत्तर– इस में **एक** स ख्या को लेकर अनेक तत्त्वों का स ग्रह नय से या जातिवाचक कथन की अपेक्षा एक स ख्या से कथन किया है, कहीं अनेक तत्त्वों का विभाजन लक्ष्य से एक-एक के रूप में कथन किया गया है और कई वास्तविक एक स ख्या वाले तत्त्वों का निरूपण किया गया है । कुछ तत्त्व शास्त्रों में बिना भेद-प्रभेद वाले हक्त फिर भी

करके एक-एक की स ख्या से कहा गया है अर्थात् अपेक्षा से ये सब अपने में एक है, स्वत त्र है । इसी तरह उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के छ आरे हक्त उन्हें भी एक सुसम-सुसमाकाल, एक सुसमाकाल ऐसे अलग-अलग विभाजन से कथन किया गया है। वर्गणा की अपेक्षा अनेक तत्त्वों का विभाजन इस प्रकार किया है– द डक २४ हक्त, भवी अभवी २ हक्त, दृष्टि ३ है, कृष्ण-शुक्ल पक्ष २ हक्त, लेश्या ६ है; इन सब का अलग अलग एक-एक करके कथन है । जैसे कि एक नैरयिक वर्गणा, एक असुरकुमार देव वर्गणा **यावत्** एक स्तनितकुमार देव वर्गणा, एक पृथ्वीकाय वर्गणा, यों द डक क्रम से **यावत्** एक वैमानिक देव वर्गणा । इसी प्रकार एक भवसिद्धिक वर्गणा, एक भवसिद्धिक नैरयिक वर्गणा आदि २४ द डक से कथन है । वैसे ही अभवसिद्धिक का कथन है । इसी प्रकार तीनों दृष्टि का २४ द डक से वर्णन है । जैसे कि एक सम्यग्दृष्टि नैरयिक वर्गणा, एक मिथ्यादृष्टि नैरयिक वर्गणा **यावत्** एक सम्यग्दृष्टि वैमानिक देव वर्गणा । इसी प्रकार छ लेश्या और दो पक्ष से २४ द डक को लेकर एक-एक कथन है । जैसे कि– एक कृष्णलेशी नैरयिक वर्गणा **यावत्** एक शुक्ललेशी वैमानिक देव वर्गणा, एक कृष्णपक्षी नैरयिक वर्गणा **यावत्** एक शुक्लपक्षी वैमानिक देव वर्गणा ।

इसी प्रकार प द्रह भेदे सिद्ध हक्त । उनका भी अलग-अलग वर्गणा रूप कथन है। जैसे कि– एक तीर्थसिद्धों की वर्गणा **यावत्** एक अनेक सिद्धों की(एक साथ अनेक सिद्ध होने वालों की)वर्गणा, एक प्रथम समय सिद्ध वर्गणा **यावत्** एक अन तसमय सिद्ध वर्गणा ।

इसी प्रकार पुद्गल के अनेक भेदों का अलग-अलग एक वर्गणा रूप में कथन है । जैसे कि एक परमाणु पुद्गल की वर्गणा, एक द्विप्रदेशी की वर्गणा **यावत्** एक अन त प्रदेशी की वर्गणा; फिर एक प्रदेशावगाढ **यावत्** अस ख्य प्रदेशावगाढ, एक समय स्थितिक **यावत्** अस ख्य समय स्थितिक पुद्गल, एक गुण काला **यावत्** अन तगुण काला वगैरह वर्णादि २० बोलों का एक-एक करके अलग- अलग वर्गणा रूप में कथन किया गया है ।

प्रश्न–४ : वास्तविक एक स ख्या वाले तत्त्वों का वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर– सिद्धि स्थान एक है, परिनिर्वाण एक है, प्रत्येकशरीरी जीवों के एक शरीर में एक ही जीव होता है। लोक एक है, अलोक एक है, धर्मास्तिकाय एक है, अधर्मास्तिकाय एक है, द्रव्य-पर्याय का उत्पाद धर्म एक है, विनाशधर्म एक है ।

एक समय में एक जीव के चार मन में से एक मन योग होता है, एक समय में चार वचन में से एक वचन योग होता है, सात काययोग में से एक काययोग होता है। उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुढषाकार पराक्रम भी एक ही होता हक्त अर्थात् ये सब एक समय में एक प्रकार के होते हक्त फिर समयाँतर से मन, वचन के भेद पलटते रहते हक्त । तात्पर्य यह है कि सत्य मन हो तब असत्य, मिश्र आदि मन नहीं होता है ।

लाख योजन का ज बूद्वीप एक ही है । श्रमण भगवान महावीर एकेले ही मोक्ष गये अर्थात् अन्य तीर्थंकरों के मोक्ष जाने के समय उनके साथ, उसी दिन अनेक साधु मोक्ष गये पर तु महावीर स्वामी के निर्वाण दिन अन्य कोई साधु निर्वाण प्राप्त नहीं हुए । अनुत्तर विमान के देवों की ऊँचाई एक हाथ की होती है । आर्द्रा नक्षत्र, स्वाति नक्षत्र और चित्रा नक्षत्र के एक-एक तारा होता है । बाकी २८–३=२५ नक्षत्रों के अनेक तारे होते हक्त। यहाँ तारा का अर्थ है विमान । तात्पर्य यह है कि तीन नक्षत्रों के एक-एक विमान ही है, शेष नक्षत्रों में से किसी के दो, किसी के तीन यावत् किसी के १०० विमान हक्त । चरमशरीरी जीवों का मरण एक बार ही होता है क्यों कि वे मरण के पश्चात् मुक्त हो जाते हक्त, सिद्ध बन जाते हक्त; अत: दूसरी बार मरण नहीं होता। सभी सिद्ध मुक्त आत्माओं का शुद्ध आत्मस्वरूप एक ही प्रकार का होता है ।

प्रश्न–५ : ज बूद्वीप की गोलाई के लिये अनेक विशेषण क्यों लगाये हक्त, उनके अर्थ क्या हक्त ?

उत्तर– कुल चार विशेषण गोलाई के लिये लगे हक्त– (१) **वट्टे तेलापूय-स ठाणस ठिए–** गोल दडे जैसा नहीं पर तु तेल के पुडले के जैसा चपटा गोल है । पुडले के किनारे जैसे सम चक्राकार नहीं होते, वैसे ज बूद्वीप भी विषम गोल समझना । (२) **वट्टे रहचक्कवाल**– रथ के चक्र के समान गोल है अर्थात् रथ का चक्र थाली जैसा नहीं होता उसमें पाटियों के जोड से विभाग होते है वैसे ही ज बूद्वीप मुख्य सात क्षेत्र, छ पर्वत मिलकर गोलाकार बना हुआ है । (३) **वट्टे पुक्खर कण्णिया–**

कमल की कर्णिकाएँ सब मिलकर एक गोलाकार बनती है वैसे ही यह ज बूद्वीप अनेक नदियों पहाडों क्षेत्रों के सम्मिलित रूप से गोल है । (४) **पडिपुण्णच द–** पूनम के च द्र जैसा ज बूद्वीप गोल है पर तु चौदस, तेरस या आठम के च द्र जैसा अपूर्ण गोल नहीं है । पूर्ण गोलाकार है, ख डित विभाग जैसा गोल नहीं है । इस प्रकार इन शब्दों से ज बूद्वीप की गोलाई की परिपूर्ण वास्तविकता स्पष्ट होती है ।

प्रश्न–६ : एक की स ख्या में कहे गये तत्त्वों के, अपेक्षा से अनेक भेद हो सकते हक्त, वे कौन से हक्त ?

उत्तर– बाहर के पुद्‌गल लिये बिना विकुर्वणा एक प्रकार की अपेक्षा से है फिर भी वह मनुष्यों के द्वारा बालों में कुछ पुद्‌गल डाले बिना मू छों के वट लगाना, चोटी गू थना तथा सर्प का फण करना, मयूर का अपने प खों को गोलाकार करना वगैरह ।

विभूषा को या मृत शरीर को एक कहा है फिर भी अनेक जीवों के मृत शरीर कलेवर भिन्न-भिन्न होते हक्त या विभूषा भी आभूषण, वस्त्र, माला आदि से अनेक प्रकार की होती है ।

जीवों की आगति-गति च्यवन और उपपात एक-एक प्रकार का कहा गया है । फिर भी गति, द डक, जीव के भेद से उसके अनेक प्रकार हो सकते हक्त ।

छेदन-भेदन भी एक प्रकार का कहा है । इसमें द्रव्य छेदन और भेदन– तलवार, भाला, खीला आदि से अनेक प्रकार का हो सकता है । तो भी छेदनत्व भेदनत्व धर्म की एक रूपता से यहाँ एक छेदन एक भेदन कहा है । कर्म शास्त्रानुसार कर्मों की स्थिति घात करना छेदन है और रसघात करना अर्थात् फल देने की शक्ति म द करना भेदन है। यह भी अनेक कर्मों की अपेक्षा अनेक प्रकार का हो सकता है, फिर भी छेदनत्व भेदनत्व सामान्य की अपेक्षा एक कहा गया है।

जीवों का दु:ख एक प्रकार का कहा गया है । दु:ख का अनुभव सब जीवों को एक समान अप्रिय होता है, इस सामान्य अनुभव की अपेक्षा दु:ख एक कहा है । फिर भी अनेक प्रकारों से होने वाले दु:खों के विविध रूप भी होते हक्त। सा सारिक जीवों के विविध प्रकार के दु:ख दृष्टिगोचर होते हक्त उस अपेक्षा से अनेकों दु:ख के प्रकार भी हो सक्तेहक्त।

धर्मपडिमा अधर्मपडिमा एक कही है, उसका तात्पर्य सूत्र में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि जिससे आत्मा क्लेश-दु:ख प्राप्त करती वे सब अधर्माचरण है, एक है और जिनसे आत्मा स सार क्लेशों से छूट जाय वे सब धर्माचरण है, एक है । दु:ख से मुक्त कराने की अपेक्षा और क्लेशों में फसाने की अपेक्षा धर्माचरण और अधर्माचरणों को धर्मपडिमा तथा अधर्मपडिमा शब्द से एक कहा गया है । विभिन्न आचरणों की अपेक्षा लोक में धर्माचरण और अधर्माचरण अनेकविध देखे जाते हक्त ।

इस प्रकार इस प्रथम स्थान में कोई भी तत्त्व को, कोई न कोई अपेक्षा से एकत्व रूप में कहा गया है; चाहे वास्तव में वह तत्त्व भले एक भी है या अनेक भी, यही इस स्थान की **एक** की स ख्या में कथन रूप अपनी विशेषता है ।

स्थान-२ : उद्देशक-१

प्रश्न-१ : इस स्थान का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस दूसरे स्थान में तत्त्वों को दो की स ख्या में समाविष्ट करके या समाविष्ट होने वाले तत्त्वों का निरूपण है अर्थात् इस स्थान का प्रत्येक कथन दो की स ख्या वाला है । इस स्थान के विभाग रूप में **चार उदेशक** हक्त । चारों उद्देशकों में दो स ख्या वाले विविध विषयों का स कलन है और इस स कलन में कोई भी किसी प्रकार का क्रम नहीं है अर्थात् अक्रमिक वर्णन की बहुलता है ।

प्रश्न-२ : प्रथम उद्देशक में विषयों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- दो भेदों से विध-विध जीवों-अजीवों का, क्रियाओं का, द्रव्यों का, प्रत्याख्यान का, धर्मप्राप्ति-मोक्षप्राप्ति का, ज्ञान स ब धी, चारित्र स ब धी तथा दिशाओं स ब धी वर्णन मुख्य रूप से किया गया है ।

प्रश्न-३ : लोक की समस्त वस्तुओं का दो की स ख्या में किस प्रकार कथन किया गया है ?

उत्तर- प्रथम सूत्र में कहा गया है जगत में जितने पदार्थ हक्त उनका इन दो भेदों में समावेश होता है, यथा- (१) जीव-अजीव (२) त्रस-स्थावर

(३) सयोनिक-अयोनिक- स सारी जीव सभी सयोनिक है अजीव और सिद्ध अयोनिक है (४) आयुष्य वाले-आयुष्य रहित- स सारी जीव आयुष्य वाले हक्त, सिद्ध आयुष्य कर्मरहित हक्त । पुद्‌गल द्रव्य अनेक स्थिति वाले होते हक्त शेष चार द्रव्य की कोई सीमित स्थिति नहीं होती है । (५) सवेदी-अवेदी- स सारी जीव सवेदी या अवेदी है, पुद्‌गल और सिद्ध अवेदी है । (६) ढपी-अढपी- इन दो भेदों में सभी द्रव्य आ जातेहक्त । (७) सपुद्‌गला-अपुद्‌गला- जीव और पुद्‌गल सपुद्‌गला है, शेष चार द्रव्य अपुद्‌गला है, सिद्ध भी अपुद्‌गला है । (८) स सारी-अस सारी- स सार में रहे जीव और पुद्‌गल सब स सारचक्र में हक्त, सिद्ध- अस सारी स सार चक्र से परे हक्त । (९) शाश्वत-अशाश्वत- द्रव्य से जीव और अजीव सभी शाश्वत है पर्याय से अशाश्वत है । (१०) आकाश-नोआकाश- आकाश द्रव्य आकाश है शेष सभी द्रव्य नोआकाश है । (११) धर्म-अधर्म- स सार की सभी प्रवृत्तियाँ इन दो में समाविष्ट हो जाती है । उसी तरह सभी प्रवृत्तियाँ (१२-१३) पुण्य या पाप में, स वर या आश्रव में, समाविष्ट हो जाती है (१४) वेदना-निर्जरा- कर्मजनित जीव की अवस्थाएँ वेदना रूप है या निर्जरा रूप है ।

प्रश्न-४ : जीव स ब धी भेद-प्रभेद दो की स ख्या से किस प्रकार है ?

उत्तर- पृथ्वी आदि पाँच स्थावर सूक्ष्म भी होते हक्त, बादर भी होते हक्त; पर्याप्त भी होते हक्त, अपर्याप्त भी होते हक्त; परिणत अर्थात् शस्त्रपरिणत(अचित्त) भी होते हक्त और अपरिणत-सचित्त भी होते है । गति समापन्नक- अन्य गति में जाते हुए भी होते हक्त और अगतिसमापन्नक- वर्तमानभव में अवस्थित भी होते हक्त । अन तरोत्पन्नक (प्रथम समयोत्पन्न) भी होते हक्त और परम्परोत्पन्नक (ल बी स्थिति वाले) भी होते हक्त । जीव दो काय वाले होते हक्त- त्रसकाय और स्थावरकाय । इन दोनों में भवी-अभवी दोनों प्रकार के जीव होते हक्त। चौवीस द डक के जीव अर्थद ड की प्रवृत्ति में होते हक्त या अनर्थद ड की प्रवृत्ति में होते है । वीतरागी और सिद्ध जीव इन दोनों द डों से रहित होते हक्त ।

प्रश्न-५ : द्रव्य या अजीव स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- काल दो प्रकार का है- उत्सर्पिणीकाल और अवसर्पिणीकाल। उत्सर्पिणी में जीवों का आयुष्य, अवगाहना आदि क्रमश: बढते रहते हक्त और पुद्‌गलों के वर्ण, ग ध, रस आदि में क्रमश: विकास होता है ।

अवसर्पिणी काल में इन सभी का ह्रास होता है । द्रव्य दो प्रकार के होते हक्त- (१) परिणत होने वाले (२) अपरिणत रहने वाले । जीव और पुद्‌गल नई-नई पर्यायों में परिणत होते रहते हक्त और शेष चार द्रव्य धर्मास्तिकाय आदि में इस प्रकार की परिणति परिवर्तन नहीं होता है। द्रव्य, गतिसमापन्न और अगति समापन्न दोनों प्रकार के होते हक्त जिसमें जीव और पुद्‌गल दोनों प्रकार के होते हक्त शेष चार द्रव्य गति नहीं करते हक्त अत: वे अगतिसमापन्नक होते हक्त । अन तरावगाढ और पर परावगाढ भी जीव-पुद्‌गल दो द्रव्य होतेक्त । शेष द्रव्य अवस्थित होतेक्त । आकाश द्रव्य दो प्रकार का है- (१) लोकाकाश- लोक के अ दर का और (२) अलोकाकाश- लोक के बाहर का ।

प्रश्न-६ : क्रियाएँ कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर- विस्तार की अपेक्षा कुल २५ क्रियाएँ होती है, तत्त्वार्थ सूत्र में भी क्रियाएँ पचीस कही है । भगवती सूत्र में प्रस गानुसार गौतमस्वामी ने कायिकी आदि पाँच क्रियाओं स ब धी पृच्छा करी है और कहीं आर भिकी आदि पाँच क्रियाओं को लेकर पृच्छा करी है । स्थाना ग सूत्र में स ख्या की मुख्यता से वर्णन होने के कारण इस दूसरे स्थान में दो-दो के भेद से क्रियाओं का वर्णन है और पाँचवे स्थान में पाँच-पाँच के भेद से कुल पाँच बार में पच्चीस क्रियाएँ कही है, जो तत्त्वार्थ सूत्र से मिलती है । इस दूसरे स्थान में उन पच्चीस में से प्रयोग क्रिया और सामुदानिकी क्रिया नहीं कही है क्यों कि इनके दो भेद नहीं बनते हक्त। शेष २३ क्रियाएँ इस दूसरे स्थान में कही है जिसमें २२ के दो-दो भेद किए हक्त और ईर्यावही क्रिया अलग से कही है, यथा- (१) ईर्यावही क्रिया और (२) सा परायिक क्रिया । ईर्यावही क्रिया के सिवाय २४ क्रियाएँ सा परायिक क्रिया में समाविष्ट हो जाने से अजीव क्रिया के यहाँ दो भेद किये हक्त । विशेष में इस स्थान में २५ के सिवाय जीव क्रिया के दो भेद नये कहे हक्त- सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया । ये दो भेद भगवती सूत्र में भी प्रस गानुसार कहे गये हक्त ।

प्रश्न-७ : पापों की आलोचना, गर्हा और प्रत्याख्यान के विषय में क्या समझाया है ?

उत्तर- सामान्य रूप से पापों की आलोचना, गर्हा और प्रत्याख्यान गुढ समक्ष वचन द्वारा उच्चारणपूर्वक किये जाते हक्त । पर तु कभी ये

सभी मन से भी हो सकते हक्त अर्थात् परिस्थितिवश, समय स योग ऐसा ही बन जाय, व्यक्ति किसी के पास जा नहीं सके, वाचा ब द हो जाय तो वह अपने मन की स्थिरता से, पवित्रता से स्वत: मन से ही पापों की आलोचना, गर्हा और आगामी पच्चक्खाण कर सकता है; यह अपवाद मार्ग है । सामान्यत: गुढ आदि अन्य के पास आलोचना, गर्हा और प्रत्याख्यान करना विधिमार्ग है । दो स ख्या वाले कथन होने से एव अपेक्षा से दोनों ही मार्ग अनेका तवाद युक्त जिनशासन में विहित है, ऐसा समझना चाहिये । इसी प्रकार कोई ल बे काल स ब धी दोषों की आलोचना, गर्हा एक साथ करता है और फिर पाप का प्रत्याख्यान भी ल बे काल का एक साथ ले सकता है । कोई अल्प काल के दोषों की शीघ्र आलोचना, गर्हा करके अल्पकाल के लिये भी प्रत्याख्यान लेता है । इस तरह गर्हा-प्रत्याख्यान के अल्पकालिक और दीर्घकालिक भेद कहे गये हक्त ।

प्रश्न-८ : धर्म की प्राप्ति वगैरह जीव को कब होती है ?

उत्तर- जीव जब तक आर भ और परिग्रह को समझ नहीं लेता है और समझ कर उसके प्रति आसक्ति का त्याग नहीं करता है तब तक उसकी आत्मा में धर्म की उपलब्धि नहीं होती है। अर्थात् आर भ-परिग्रह में रचे-पचे आसक्त जीव धर्माभिमुख नहीं बन सकते ।कभी कोई व्यक्ति देखादेखी या प्रवाह मात्र से धर्मी बन भी जाय तो भी जबतक वह आर भ परिग्रह को समझकर उसकी आसक्ति से नहीं हट जाता है तब तक वह वास्तव में धर्म पाया हुआ नहीं कहलाता है । जो आर भ-परिग्रह को समझकर भावों से उसकी आसक्ति कम कर देते हक्त वे ही वास्तव में धर्मबोध पा सकते हक्त या उन्होंने धर्मबोध प्राप्त किया है, ऐसा समझा जा सकता है ।

इस प्रकार आर भ परिग्रह की आसक्ति हटाकर धर्मबोध पाने वाले,क्रमश: अणगार धर्म स्वीकार कर सकते हक्त । ब्रह्मचर्यवास स वर-स यम यावत् केवलज्ञान पर्यंत पाँचों ज्ञान में से कोई भी ज्ञान प्राप्त कर सकतेहक्त ।

यह इस प्रकार का धर्म जीव को किसी के पास सुनने से भी प्राप्त होता है और बिना सुने स्वत: आत्मबोध भी हो सकता है । जो पूर्वभव के ज्ञान प्रभाव से या क्षयोपशम से होता है ।

प्रश्न-९ : ज्ञान, दर्शन और चारित्र को दो दो के भेद से किस प्रकार कहा है ?

उत्तर- दर्शन दो प्रकार का होता है- सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन । सम्यग्दर्शन भी दो प्रकार से होता है- (१) स्वतः होता है, (२) शास्त्र अध्ययन या गुढ सेवा से होता है । यह दोनों प्रकार का सम्यग्दर्शन स्थाई रहने वाला और समाप्त होकर मिथ्यात्व में परिवर्तित होने वाला भी होता है । मिथ्यादर्शन भी दो प्रकार का होता है- (१) भोले स्वभाव वालों का अज्ञान के कारण-अनभिग्रहिक मिथ्यादर्शन होता है । (२) आग्रह के भावों से अभिग्रहिक मिथ्यादर्शन होता है । ये दोनों भी स्थाई रहने वाले या नष्ट होकर सम्यग्दर्शन में परिवर्तित होने वाले यों दोनों प्रकार के होते हक्त ।

ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है । प्रत्यक्ष में (१) केवलज्ञान और (२) केवलज्ञान व्यतिरिक्त में मनःपर्यवज्ञान और अवधिज्ञान लिया गया है । केवलज्ञान के भवस्थ और सिद्ध, सयोगी-अयोगी, प्रथम समय-अप्रथम समय, चरम समय-अचरम समय ऐसे भेद किये हक्त । फिर सिद्ध केवलज्ञान के भी अन तर-पर पर, एक समय अन तर और अनेक समय अन तर, ऐसे भेद किये गये हक्त । ये सब भेद व्यक्ति या अवस्था को लेकर हक्त । **वास्तव में** तो केवलज्ञान स्वय एक ही है और सभी का केवलज्ञान एक समान और एक ही प्रकार का होता है । अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक दो प्रकार का होता है । मनःपर्यवज्ञान भी ऋजुमति और विपुलमति यों दो प्रकार का होता है ।

परोक्ष ज्ञान भी दो प्रकार का कहा है- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। फिर मतिज्ञान के श्रुतनिश्रित-अश्रुतनिश्रित, अर्थावग्रह-व्य जनावग्रह ऐसे दो दो भेद किये हक्त । श्रुतज्ञान के अ गप्रविष्ट-अ गबाह्य, आवश्यक-आवश्यकव्यतिरिक्त, कालिक-उत्कालिक ऐसे क्रमशः दो दो भेद किये हक्त । श्रुतनिश्रित मतिज्ञान में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा रूप ज्ञान होता है और अश्रुतनिश्रित में चार प्रकार की बुद्धि होती है । अ गप्रविष्ट श्रुतज्ञान में १२ अ ग होते हक्त । अ गबाह्य श्रुतज्ञान में आवश्यक आदि भेद होते हक्त ।

चारित्र के सरागस यम और वीतरागस यम ऐसे दो भेद होते हक्त

फिर इसमें क्रमशः सूक्ष्मस पराय-बादरस पराय, प्रथमसमय-अप्रथम समय, चरमसमय-अचरमसमय, स क्लिश्यमान-विशुद्ध्यमान, प्रतिपाति-अप्रतिपाति ऐसे भेद होते हक्त । वीतराग स यम के भी उपशा त-वीतराग-क्षीणवीतराग, प्रथमसमय-अप्रथमसमय, चरमसमय-अचरम समय; क्षीणकषाय-वीतरागस यम के छद्मस्थ-केवली, स्वय बुद्ध और बुद्धबोधित, सयोगीकेवली-अयोगीकेवली ये विशेष भेद होते हक्त । दो स ख्या की विवक्षा से ये सब भेद-प्रभेद किये हक्त, ऐसा समझना चाहिये।

प्रश्न-१० : धर्म का स्वरूप किस तरह बताया है ?

उत्तर- धर्म दो प्रकार का कहा है- श्रुत धर्म और चारित्र धर्म तथा यह भी बताया गया है कि ज्ञान और चारित्र, इन दो से स पन्न जीव-अणगार अनादि अन त इस स सार को पार करके मुक्त हो सकते हक्त । यहाँ ज्ञान से सम्यग्ज्ञान और उसकी सम्यग् श्रद्धान समझ लेना चाहिये तथा सम्यक्चारित्र के साथ सम्यक् तप समझ लेना चाहिये । क्यों कि उत्तराध्ययन सूत्र में ज्ञान, दर्शन,चारित्र तथा तप रूप चतुर्विध मोक्ष-मार्ग कहा है । कोई मात्र ज्ञान से ही मुक्ति माने, त्याग-प्रत्याख्यान एव विरति आदि की उपेक्षा करे तो वह मुक्ति मार्ग नहीं हो सकता । एका त आग्रह होने से वह भी स सार भ्रमण का मार्ग ही बनता है ।

चारित्रधर्म के भी दो भेद किये हक्त- आगारचारित्र धर्म और अणगारचारित्र धर्म अर्थात् श्रावक धर्म और श्रमणधर्म । साधकों को अपनी अल्प क्षमता होने पर या अवसर-स योग अनुसार श्रावकधर्म स्वीकार करना चाहिये, उसमें भी एक-एक व्रत से बढते हुए उत्कृष्ट बारह व्रतधारी श्रावक बनना चाहिये । आगे बढते हुए पडिमाधारी श्रावक बनकर अ त में स लेखना स थारा युक्त श्रावक धर्मपालन का लक्ष्य रखना चाहिये ।

श्रावकधर्म पालन करने के साथ क्षमता बढाकर या स योग, अवसरों को सुधारकर अणगार धर्म स्वीकारने का लक्ष्य भी रखना चाहिये और उसमें सफलता मिल जाने पर उत्साहपूर्वक अणगार धर्म धारण कर लेना चाहिये । फिर उसकी आगमानुसार आराधना में तत्पर बन जाना चाहिये, यही यहाँ बताये गये द्विविध धर्म का सार है तथा ज्ञान और चारित्र दोनों के सेवन से मुक्ति कहने का सही तात्पर्य है ।

अतः जो जिनधर्म स्वीकारने का स तोष करके भी श्रावक व्रतों में आगे बढने का, व्रत-प्रत्याख्यान बढाने का अथवा स यम लेने का उद्देश्य ही नहीं रखते, व्रत प्रत्याख्यान वृद्धि एव स यम ग्रहण का कोई विशेष महत्त्व ही नहीं स्वीकारते है तो आगम के इस द्विविध धर्म वर्णन से एव ज्ञान और चारित्र से मुक्ति होने के वर्णन से उनकी वह विचारणा बराबर नहीं है, परिपूर्ण नहीं है । मोक्षमार्ग की आराधना में ज्ञान, दर्शन,चारित्र (श्रावकपन या साधुपन) तथा तप(आभ्य तर-बाह्य दोनों) चारों की सुमेलपूर्वक आवश्यकता समझनी चाहिये ।

प्रश्न-११ : शरीर के विषय में यहाँ क्या समझाया है ?

उत्तर- यहाँ दो की स ख्या वाले कथन होने से शरीर के दो प्रकार कहे हक्त- आभ्य तर और बाह्य शरीर। आभ्य तर शरीर सभी जीवों के कार्मण (कार्मण-तैजस)होता है । बाह्य शरीर नारकी देवताओं के वैक्रिय तथा मनुष्य तिर्यंचों के औदारिक शरीर होता है । औदारिक में स्थावर एकेंद्रिय जीवों के हाड-मा स-खून आदि नहीं होते हक्त, त्रस जीवों के होते हक्त । इन सभी शरीरों की उत्पत्ति और प्राप्ति जीव को राग और द्वेष के कारण होती है । राग-द्वेष दोनों समाप्त हो जाने पर जीव अशरीरी-सिद्ध बन जाते हक्त ।

प्रश्न-१२ : दिशाओं के स ब ध में यहाँ क्या कथन किया है ?

उत्तर- यद्यपि चार दिशाएँ स्वरूप की अपेक्षा तो सभी समान ही है तथापि दिशाओं में शुभ आत्माएँ एव शुभ पुद्‌गलों के होने की दृष्टि से दो दिशाओं का विशेष महत्त्व दिखाया गया है । अतः पूर्व और उत्तर दिशा में मुख करके स्वाध्याय करना, दीक्षाग्रहण करना(व्रत-प्रत्याख्यान करना)आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करना। स लेखना-स थारा का पच्चक्खाण भी पूर्व या उत्तर दिशा तरफ मुख करके करना चाहिये। ये सभी कार्य स्वय अकेले करने हो तो इन दिशाओं में मुख रखना जरूरी है कि तु गुढ आदि के समक्ष बैठना या खडा होना हो या सामने-निकट में गुढ बिराजमान हो तो उनके समक्ष मुख होने का या उनकी आशातना न होने का लक्ष्य प्रमुख होना चाहिये ।

तात्पर्य यह है कि गुढ हों तो उनकी तरफ ही मुख और व दन करने का लक्ष्य होना चाहिये, गुढ आदि न हो तो स्वत त्र रूप से पूर्व या उत्तर दिशा तरफ मुख और व दन आदि क्रियाएँ करनी चाहिये,

ऐसा इस सूत्र का आशय समझना चाहिये । इन दोनों दिशाओं का महत्त्व इसलिये है कि हमारी जो पूर्व दिशा है वह ताप दिशा की अपेक्षा अर्थात् सूर्योदय की अपेक्षा है कि तु क्षेत्र दिशा की अपेक्षा वास्तव में वह ईशानकोण है और उसमें विहरमान तीर्थंकर, गणधर, केवली आदि विचरण करते हक्त । उत्तर दिशा में महाविदेह क्षेत्र है और महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर आदि सदा विद्यमान होते हक्त। अतः उन महापुढषों की प्रधानता से पूर्व और उत्तर दिशा में मुख करके उपरोक्त विशिष्ट धर्म अनुष्ठानों को करने का कहा गया है । यदि प्रत्यक्ष में गुढ आदि विराजमान हो तो प्रथम उनकी मुख्यता रखी जानी चाहिये । प्रत्यक्ष विराजमान श्रमण की आशातना हो उस तरह परोक्ष श्रमणों का बहुमान करने की वृत्ति को अविवेक ही कहा जायेगा । ऐसा अविवेक दिशा के इस सूत्र के नाम से कभी भी नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न-१३ : इस उद्देशक में अन्य भी कोई विशेष कथन है ?

उत्तर- उपरोक्त विषयों के सिवाय अन्य विषय इस प्रकार हक्त- (१) दो प्रकार के उन्माद होते हक्त- उन्माद का अर्थ पागलपन है । १. जीव यक्षावेश से अर्थात् भूत-प्रेत के प्रवेश से उन्मत्त-पागल अथवा विवेक-विकल, भान रहित बन जाता है, यह पागलपन ज्यादा से ज्यादा एक भव तक ही रहता है । २. दूसरा उन्माद मोहकर्म जनित कहा है जो अज्ञानदशा रूप पागलपन है । इसमें जीव सही तत्त्वों को एव आत्मा के स सारभ्रमण और कारणों को समझ नहीं पाता है; मात्र मिथ्यात्व के नशे में ही बेभान होकर मानव जीवन को अज्ञान दशा में या बेभान दशा में व्यतीत करके नरक निगोद में चला जाता है और अपना स सार भ्रमण बढाता है । इसे भी जीव का एक प्रकार का उन्माद कहा है । दो की स ख्या की अपेक्षा यह कथन किया गया है । इसके सिवाय रोग से, नशीले पदार्थों से भी उन्माद उत्पन्न होता है, उससे भी आत्मा बेभान बन जाती है, हिताहित विवेक नष्ट हो जाता है ।

स्थान-२ : उद्देशक-२

प्रश्न-१ : इस दूसरे उद्देशक में किन-किन विषयों का वर्णन है ?

उत्तर- दो की स ख्या को लेकर चोवीस द डक के जीवों की द्विविध

गतागत बताकर उनके अनेकविध दो-दो प्रकार बताये हक्त । इसके उपरा त जीवों के कर्मफल भोगने, समवहत या विकुर्वित अवस्था में ज्ञान की स्थिरता, देश-सर्व से सुनना देखना आदि विषयों को समाविष्ट किया है ।

प्रश्न–२ : जीव के कर्म फल भोगने स ब धी क्या कथन किया गया है ?

उत्तर– ऊँचेलोक में उत्पन्न वैमानिक कल्पोपन्न देव या कल्पातीत विमानोत्पन्न देव, समयक्षेत्र के चर ज्योतिषी या बाहर के अचर(स्थिर) ज्योतिषी, भवनपति, व्य तर, नरक आदि २४ ही द डक के जीव जो कुछ भी अशुभ कर्म करते हक्त उसका फल वे उस भव में भी भोग सकते हक्त और आगामी भवभवा तर में भी भोग सकते हक्त । इसका कारण यह है कि किसी कर्म का अबाधाकाल कम है और भव का आयुष्य ज्यादा अवशेष है तो उनका उदय उसी भव में शुढ हो जाता है । यदि उस भव का आयुष्य अल्प बाकी रहा है और उस कर्म का अबाधा काल ज्यादा है या उस कर्म के उदय आने योग्य स योग जहाँ नहीं है तो वह कर्म अन्य भव भवा तर में पूर्ण विपाक रूप से एक साथ उदय में आता है। स योग न होने पर और अबाधाकाल पूर्ण हो जाने पर वह कर्म प्रदेशोदय से या सूक्ष्म प्रकार से किसी भी प्रकार उदय में आता रहता है । स क्षेप में सार यह है कि बा धे हुए पापकर्म २४ ही द डक के जीवों को कभी उसी भव में भोगने पड सकते हक्त, कभी आगामी भव भवा तर में भी उदय में आ सकते हक्त । यह सब कर्मों के बा धने के प्रकार के उपर निर्भर रहता है । जैसे कि– मल्लिनाथ भगवान के जीव ने पूर्वभव में कपट क्रिया से स्त्रीवेद का ब ध किया था उसका अबाधा काल उत्कृष्ट डेढ हजार वर्ष का होता है, फिर अनुत्तरविमान में उत्पन्न हो जाने से ३३ सागरोपम तक वे प्रगट रूप से पुढषवेद में ही रहे थे फिर मनुष्य भवमें स्त्री बने तब स्त्री वेद का प्रगट उदय हुआ था । गजसुकुमाल के जीवने जो कर्म बा धे थे वे लाखो भव के बाद अ तिम भव में सोमिल ब्राह्मण का स योग मिलने पर उत्कृष्ट रूप से उदय में आये ।

प्रश्न–३ : २४ द डक के जीवों के दो प्रकार के भेद और उनकी दो प्रकार की गतागत किस प्रकार कही है ?

उत्तर– २४ द डक के जीव कोई दो गति से, कोई तीन गति से, कोई

चार गति से भी आते हक्त तथा कोई दो गति में, कोई चार गति में जाते हक्त । फिर भी यहाँ दो की स ख्या में कथन होने से विशिष्ट शब्दों के प्रयोग पूर्वक दो प्रकार की गति सु दर ढ ग से कही गई है । वह इस प्रकार है– नारकी-देवता, मनुष्य और प चेन्द्रिय तिर्यंच से आते हक्त । पृथ्वी-काय के जीव पृथ्वीकाय से और अपृथ्वीकाय से आते हक्त यावत् मनुष्य भी मनुष्य और अमनुष्य से आते हक्त । इस प्रकार सभी की द्विविध आगत कही है ।

नारकी जीव– मनुष्य तथा प चेन्द्रिय तिर्यंच दो में जाते हक्त । देवता– मनुष्य तथा तिर्यंचयोनिक में जाते हक्त । (क्यों कि देव तिर्यंच प चेन्द्रिय और एकेन्द्रिय में भी जाते हक्त) पृथ्वीकाय से मनुष्य तक आगत के समान गत कही है **यावत्** मनुष्य तथा अमनुष्यों में जाते हक्त।

जीवों के द्विविध भेद इस उद्देशक में इस प्रकार किये हक्त– २४ द डक के जीव– (१) भवी-अभवी (२) अन तरोत्पन्न-पर परोत्पन्न (३) वाटेवहेता-स्थानस्थित (४) प्रथम समयोत्पन्न-अप्रथम समयोत्पन्न (५) आहारक-अनाहारक (६) उश्वासक-अनुश्वासक (७) सइन्द्रिय-अनिन्द्रिय– मरकर गत्य तर में जाते समय द्रव्येंद्रिय की अपेक्षा (८) पर्याप्त-अपर्याप्त (९) सन्नी-असन्नी– इसमें एकेन्द्रिय विकलेंद्रिय और ज्योतिषी वैमानिक देव छोड दिये हक्त । क्यों कि उनमें ये दो भेद नहीं होते हक्त । एकेंद्रियादि केवल असन्नी ही होते हक्त । दोनों जाति के देव केवल सन्नी ही होते हक्त ।) (१०) भाषक-अभाषक– इसमें एकेंद्रिय नहीं कहे हक्त क्यों कि वे अभाषक ही होते हक्त । (११) सम्यग्-मिथ्यादृष्टि– इसमें भी एकेंद्रिय छोडकर कथन है वे केवल एक मिथ्यादृष्टि ही होते हक्त (१२) परित्तस सारी–अपरित्तस सारी (१३) स ख्यातसमय-स्थितिक-अस ख्यसमयस्थितिक– इसमें एकेंद्रिय-विकलेंद्रिय, ज्योतिषी-वैमानिक देव छोडे है, क्यों कि उनमें दो प्रकार नहीं होते । एकेंद्रियादि में स ख्यात समय की स्थिति ही होती है और दोनों देवों की अस ख्य समय की स्थिति ही होती है । (१४) सुलभबोधि-दुर्लभ-बोधि (१५) कृष्णपाक्षिक-शुक्लपाक्षिक (१६) चरिम-अचरिम; यों दो दो भेद होते हक्त ।

प्रश्न–४ : समुद्घात करने पर आत्मप्रदेश शरीर से बाहर जाते हक्त तब क्या उनमें अवधिज्ञान वगैरह रहता है ?

उत्तर– प्रस्तुत उद्देशक में 'समवहत' से मारणा तिक समुद्घात और विकुर्वित अवस्था से वैक्रिय समुद्घात का कथन किया गया है । इन दोनों समुद्घातों में आत्मप्रदेश अपने स्थूल शरीर से बाहर निकलते हक्त । फिर भी उनको छोटा बडा जो भी अवधिज्ञान होता है और जिससे वे ऊँचा, नीचा, तिरछा लोक जानते देखते हक्त; वह ज्ञान उनको उन दोनों समुद्घातों के समय भी रहता है अर्थात् शरीर के बाहर आत्मप्रदेश निकल जाते हक्त तब भी उस ज्ञान का अभाव उन आत्मप्रदेशों में, उस आत्मा में नहीं होता है । ज्ञान के रहने में या नष्ट होने में स्थूल शरीर में रहने से या समुद्घात करने से या मरकर अन्यगति में जाने से कोई फरक नहीं पडता है । ज्ञान आत्मपरिणामों से आत्म क्षयोपशम से ही स ब ध रखता है । जब तक तत्स ब धी ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम बना रहेगा; आत्मपरिणाम हीन, निकृष्ट या चलायमान-च चल नहीं बनेंगे तब तक उत्पन्न विशेष ज्ञान आत्मा में स्थिर रहता है । अत: सूत्र का आशय यह है कि मारणा तिक और वैक्रिय समुद्घात की अवस्था में अवधिज्ञानी अपने ज्ञान से ऊँचा, नीचा, तिरछा लोक जैसे पहले देखता जानता होता है, वैसा ही उस समुद्घात अवस्था में जानता है ।

प्रश्न–५ : देश से या सर्व से सुनना, देखना, बोलना, आहार करना आदि के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर– यहाँ दो-दो की स ख्या में कथन होने से देखना आदि अनेक क्रियाओं का देश से एव सर्व से होना या करना यहाँ शास्त्रकार ने कहा है । जिसकी स गति कहीं सामान्य अपेक्षा से और कहीं विशेष अपेक्षा से करके समझना चाहिये ।

प्राय: करके शब्द सुनना श्रोतेन्द्रिय से, रूप देखना आँखो से, सू घना नाक से, रसास्वादन जीभ से ही होता है फिर भी इन्हें देश या सर्व दोनों से होना कहा है । अत: स भिन्नश्रोत लब्धि वाले की अपेक्षा ही **सर्व से** समझना चाहिये क्यों कि उस लब्धि वाला पूरे शरीर से देखना सुनना आदि कर सकता है । सामान्य जीव भी स्पर्श का अनुभव देश या सर्व दोनों प्रकार से कर सकता है । शरीर का चमकना **आगिया** आदि की अपेक्षा एक देश से होता है अर्थात् कोई कोई जीवों का कोई अ गोपाँग विशेष चमकता है और देवताओं का

शरीर सर्व भागों से चमकता है । विकुर्वणा करते समय जीव एक हाथ में से अन्य हाथ निकाल कर दिखा सकता है और पूरे शरीर से अनेक वैसे ही शरीर खडे करके दिखा सकता है ।

शरीर के एक अ गोपाँग को हिलाना-चलाना या पूरे शरीर से स चरण करना यह देश और सर्व परिचारणा है अथवा किसी एक अ ग से मैथुनभाव को क्रियान्वित करना या पूरे शरीर से आलि गन आदि से मैथुन भावों की परिपूर्ति करना यह भी देश और सर्व परिचारणा के अर्थ में समाविष्ट किया जाता है ।

कवलाहार देश से और रोमाहार सर्व से होता है । परिणमन भी कभी देश से या सर्व से होता है, जैसे– पाँव में घाव हुआ जो औषध लगाने से भर गया, यह देश परिणमन है, मस्तक दुखा और बाम लगाने से ठीक हो गया यह भी देश परिणमन है । ताव आया इन्जेक्शन या टेबलेट से निकल गया, यह सर्व परिणमन है । ऐसे ही किये गये आहार का परिणमन पूरे शरीर में होता है, यह भी सर्व परिणमन है ।

बोलना जीव के एक देश से अर्थात् मुख, जीभ आदि से ही होता है पर तु यहाँ दो स ख्या युक्त कथन होने से इसे भी वैक्रिय शक्ति या अन्य विशिष्ट लब्धि से जीव पूरे शरीर से बोल सकता है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–६ : देवों के शरीर के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर– दो की स ख्या का कथन होने से देवों के एक शरीरी और द्विशरीरी भी होना कहा है । इसका अर्थ इस तरह से किया जाता है कि– भवनपति व्य तर ज्योतिषी वैमानिक चारों जाति में कोई देव एक भव(शरीर) करके मोक्ष जाने वाले भी होते हक्त और कोई दो भव (शरीर) करके भी मोक्ष जाने वाले होते हक्त । यहाँ पर दो से अनेक भव अर्थ भी किया जाता है । भवधारणीय शरीर और उत्तर वैक्रिय शरीर अथवा वैक्रियशरीर और तैजसकार्मण शरीर को लेकर भी एक शरीर वाले और दो शरीर वाले ऐसा समझने का प्रयत्न किया जा सकता है कि तु वह सरल या समाधान युक्त नहीं है ।

स्थान-२ : उद्देशक-३

प्रश्न-१ : इस तीसरे उद्देशक में किन-किन विषयों का कथन है?

उत्तर- दो की स ख्या को आधार बनाकर भाषा और शब्द, पुद्गल भेद, पाँच शब्दादि विषय, प चाचार, विविध पडिमाएँ, सामायिक, उपपात आदि, गर्भस्थ जीव, स्थिति, आयुष्य कर्म स ब धी स क्षिप्त दो भेदों का कथन है । उसके बाद ज बूद्वीप, भरत आदि क्षेत्र, पर्वत आदि दो दो की स ख्या से अनेक कथन हक्त जिनका मौलिक क्रमिक वर्णन ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र एव जीवाभिगम सूत्र में है ।

प्रश्न-२ : इस उद्देशक में भाषा और शब्द के विषय में क्या क्या स्पष्टता की गई है ?

उत्तर- शब्द के दो प्रकार है- (१) भाषा शब्द (२) नोभाषा शब्द । भाषा शब्द जीव के वचन योग के प्रयोग से क ठ, ओष्ट, जिह्वा, तालु के माध्यम से उच्चारित होते हक्त । नोभाषा शब्द जीव के अन्य अ गोपाँगों द्वारा भी उत्पन्न होते हक्त तथा निर्जीव पदार्थों, पुद्गलों से भी निष्पन्न होते हक्त ।

जीव स ब धी भाषा शब्द अक्षर रूप में भी होते हक्त तथा क ठ, ओठ आदि से की जाने वाली अनेक प्रकार की ध्वनि-डिच, डच, हु कार आदि अनक्षर रूप में भी होते हक्त । वे क ठ, ओठ से उच्चारित होने के कारण भाषा शब्द के अ तर्गत गिने जाते हक्त । हाथ पाँव के द्वारा तालियाँ और भूमि पर प्रहार तथा शरीर पर प्रहार स ब धी ध्वनि, जीव स ब धी नोभाषा शब्द है क्यों कि उसमें क ठ आदि का प्रयोग नहीं होता है । सभी प्रकार के वाजि त्रो द्वारा, आभूषणों के द्वारा जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह नोभाषा शब्द है ।

निर्जीव पदार्थों स ब धी नोभाषा शब्द की उत्पत्ति पुद्गलों के टकराने से तथा भेदन होने से अर्थात् बा स, वस्त्र आदि के फटने-फाडने से भी शब्द उत्पन्न होतेक्त । पुद्गल रहित सिद्ध जीवों के कोई प्रकार की शब्दोत्पत्ति नहीं होती है । दो की स ख्या में वर्णन होने से तीन भेद रूप जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द का वर्णन यहाँ नहीं किया गया है ।

प्रश्न-३ : यहाँ पुद्गल स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- दो की स ख्या को लेकर पुद्गल के विविध प्रकार के दो-दो भेद कहे गये हक्त, यथा- (१) भिन्न-भेदन से बने पुद्गल, अभिन्न-भेदन बिना स्वाभाविक पुद्गल अथवा स योग से निष्पन्न पुद्गल (२) भिदुर-अभिदुर-विनष्ट होने के स्वभाव वाले और स्वभाव से विनष्ट नहीं होने वाले पुद्गल । (३) परमाणु पुद्गल और नोपरमाणु पुद्गल (४) सूक्ष्म-बादर (५) इन्द्रियों से स्पृष्ट और बद्ध होने वाले पुद्गल तथा इन्द्रियों से मात्र स्पृष्ट होने वाले पुद्गल । श्रोतेन्द्रिय से स्पृष्ट पुद्गल ग्रहण होते हक्त । चक्षु इन्द्रिय से अस्पृष्ट पुद्गल ग्रहण होते हक्त । शेष तीन इन्द्रियों से बद्ध एव स्पृष्ट पुद्गल ग्रहण होते हक्त । (६) जीवों द्वारा ग्रहित और अग्रहित पुद्गल (७) आत्त-अनात्त-आत्मीकृत-जीव द्वारा परिणमित पुद्गल और अपरिणमित पुद्गल (८) इष्ट और अनिष्ट पुद्गल (९) का त और अका त पुद्गल (१०) प्रिय और अप्रिय पुद्गल (११) मनोज्ञ-मन को गमने वाले और अमनोज्ञ पुद्गल (१२) मणाम-जिसकी स्मृति भी प्रिय हो और अमणाम । इस प्रकार यहाँ १२ प्रकार से **पुद्गल के** दो-दो भेद कहेक्त ।

शब्द, रूप, रस, ग ध और स्पर्श इन पाँच प्रकार के पुद्गलों के आत्त-अनात्त आदि पिछले((७ से १२) छ प्रकार से दो दो भेद कहे गये हक्त । जिसका तात्पर्य यह है कि समुच्चय-सामान्य पुद्गलों के उपरोक्त १२ प्रकार से दो भेद बन सकते हक्त और स्वत त्र शब्द आदि के प्रार भिक छ प्रकार वाले दो दो भेद नहीं बनते । कि तु आत्त-अनात्त वगेरे अ तिम छ प्रकार के दो-दो भेद बनते हक्त । जैसे कि सूक्ष्म-बादर में से शब्द आदि बादर ही होते सूक्ष्म नहीं होते अत: दो भेद नहीं बनते ।

प्रश्न-४ : पाँच आचार को यहाँ दो की स ख्या में कैसे कहा है?

उत्तर- पाँच आचार को भेद की विशिष्ट पद्धति से दो दो प्रकार के कहे हक्त, यथा- (१) ज्ञानाचार और नोज्ञानाचार (२) नोज्ञानाचार के दो भेद-दर्शनाचार और नोदर्शनाचार (३) नोदर्शनाचार के दो भेद- चारित्राचार और नोचारित्राचार (४) नोचारित्राचार के दो भेद- तपाचार, वीर्याचार । इस प्रकार पाँच भेदों को भी दो-दो के भेद में दर्शाया गया है ।

प्रश्न-५ : यहाँ पडिमाएँ कितनी और किस प्रकार कही है ?

उत्तर– दो की स ख्या में कथन होने से भिक्षु की १२ प्रतिमाओं और श्रावक की ११प्रतिमाओं का कथन यहाँ नहीं है । दो-दो के जोडे से अन्य विशिष्ट कुल १२ पडिमाओं का कथन किया गया है , यथा– **(१) समाधि पडिमा–** स यम समाधि अर्थात् स यम के स पूर्ण नियम उपनियम रूप भगवदाज्ञाओं के यथार्थ पालन का दृढ स कल्प **(२) उपधान पडिमा–** स यम नियमों के सिवाय तप रूप विशिष्ट नियम, अभिग्रह, भिक्षुपडिमा आदि स्वीकार करना । इन दो के कथन से समस्त स यम-तप का ग्रहण कर लिया गया है **(३) विवेक पडिमा–** विवेक अर्थात् त्याग । अवगुणो का, कषायों का, कुमान्यताओं का त्याग । इसका तात्पर्य है कि स यम-तप-मोक्षमार्ग में बाधक सभी अवगुणों से दृढ स कल्प पूर्वक दूर रहना, प्रतिपक्ष में–सद्‌गुणों में आत्मा को लीन रखना, यह विवेक पडिमा का स्वरूप है । **(४) व्युत्सर्ग पडिमा–** अवगुणों के त्याग उपरा त यथाशक्य यथासमय मन-वचन-काया की समस्त प्रवृत्तियों का निर्धारित समय के लिये त्याग करना और आत्म-भावों में, परिणामों में ज्ञाता-दृष्टाभाव से लीन बनना । ये चारों ही पडिमाएँ आगे चौथे स्थान(अध्याय)में भी कही है।–४।१।३५॥ **(५) भद्र पडिमा–** दो उपवास (छट्ठ) करके चारों दिशा में मुख करके चार-चार प्रहर का कायोत्सर्ग करना । **(६) सुभद्र पडिमा–** छ दिशाओं में मुख करके चार-चार प्रहर का कायोत्सर्ग तीन उपवास के साथ करना । **(७) महाभद्र पडिमा–** चारों दिशाओं में मुख करके अहोरात्रि का कायोत्सर्ग, चार उपवास के साथ करना । **(८) सर्वतोभद्रा पडिमा–** दस उपवास के साथ दस दिशाओं में मुख करके अहोरात्र-अहोरात्र का कायोत्सर्ग करना ।

यहाँ सुभद्र प्रतिमा का अर्थ अनुमान से दिया गया है । ऊ ची नीची दिशा में मुख करने में अधोमुख और ऊर्ध्व मुख करके सोने की अपेक्षा समझना । अ तगड सूत्र में लघुसर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र तपस्या का कथन है ।यहाँ सर्वतोभद्र पडिमा का कथन है । अ तगड कथित दोनों तपस्या में क्रमशः ४०० और ९८० दिन लगते हक्त । जब कि यहाँ वर्णित सर्वतोभद्र पडिमा में मात्र १० दिन ही लगते हक्त । जिसमें तप के साथ कायोत्सर्ग करने की विशेषता होने से इसे यहाँ पडिमा कहा गया है। **(९-१०) लघुमोकपडिमा और वडीमोकपडिमा । (११-१२)**

यवमध्यच द्र पडिमा और वज्रमध्यचन्द्र पडिमा । इन चारों पडिमाओं का विस्तृत वर्णन व्यवहार सूत्र उद्देशक ९ में किया गया है । अन्य भी पडिमाएँ शास्त्र में वर्णित है तथापि यहाँ दो-दो के जोडे बने वैसी पडिमाओं का कथन किया गया है ।

प्रश्न–६ : द्वीपक्षेत्र स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– ज बूद्वीप में भरत आदि क्षेत्र, चुल्ल हिमव त आदि पर्वत वगैरह सभी १–१ है तथापि **सर्वथा समान** का विशेषण लगाकर यहाँ दो-दो क्षेत्र पर्वतों का कथन किया गया है । यथा– भरत-एरवत क्षेत्र, हेमवत-हेरण्यवत क्षेत्र, देवकुढ-उत्तरकुढ क्षेत्र, चुल्लहिमव त-शिखरी पर्वत, निषध-नीलपर्वत, पूर्वविदेह-अपर विदेह । इस तरह ज बूद्वीप स ब धी, वृत वेताढ्य, वेताढ्य पर्वत, गुफा, कूट, महाद्रह, महानदी, प्रपातद्रह आदि दो-दो समान कहे है ।

उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के आरों में से जिनका कालमान समान है उनका कथन है । उसके सिवाय दो-दो क्षेत्रो में समान काल वर्ण-पर्याय आयुष्य और अवगाहना का कथन किया गया है यथा– देवकुढ उत्तरकुढ दो क्षेत्रों में उक्त सभी बोलों की समानता है ।

ज बूद्वीप में एक समय, एक युग में भरत और एरवत क्षेत्र की अपेक्षा से दो-दो अरिह त, चक्रवर्ती आदि की और उनके व शों की उत्पत्ति होती है । सभी बलदेव वासुदेवों के व श को दसारव श कहा गया है । अ त में बताया है कि ज बूद्वीप में दो चन्द्र दो सूर्य हक्त तथा प्रत्येक ग्रह नक्षत्र भी दो-दो होते हक्त अर्थात् २८×२=५६ नक्षत्र और ८८×२=१७६ ग्रह होते हक्त ।

ज बूद्वीप की जगती पर दो कोश की ऊँची पद्मवर वेदिका है । **लवणसमुद्र** का दो लाख योजन का चक्रवाल विस्तार है और दो गाउ की ऊँची वेदिका-पाली है, जो घातकीख ड की तरफ और लवण समुद्र के किनारे पर है ।

धातकीख ड और पुष्करार्धद्वीप– पूर्वी धातकीख ड में ज बूद्वीप के समान दो-दो क्षेत्र पर्वत समान के सभी कथन है । उसी तरह पश्चिमी धातकी ख ड में तथा पूर्वी-पश्चिमी पुष्करार्धद्वीप में दो दो समान के कथन है । समुच्चय-सामान्य रूप से धातकी ख ड में (दोनों ख डो की अपेक्षा) दो भरत, दो एरवत यावत् दो दो प्रपात द्रह एव

दो-दो मेढ पर्वत हक्त– एक पूर्वी विभाग में और एक पश्चिमी विभाग में । दोनों द्वीप के बाह्य किनारे दो गाउ ऊँची वेदिका-पाली है । ढाई द्वीप के बाहर भी सभी द्वीप-समुद्रों के बाह्य किनारे दो-दो गाउ की पाली-वेदिका है ।

नोंध– ज बूद्वीप स ब धी क्षेत्र, पर्वतों आदि का विस्तृत वर्णन ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति शास्त्र में है और अन्य द्वीप समुद्रों स ब धी विस्तृत वर्णन जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में है ।

प्रश्न–७ : चारों जाति के देवों के ६४ इन्द्र कौन कौन से हैं ?

उत्तर– यहाँ दो-दो बोल का कथन होने से दो-दो इन्द्रों का कथन करते हुए चारों जाति के देवों के कुल ६४ इन्द्र कहे हक्त । स क्षेप में वे इस प्रकार हक्त– भवनपति देवों के–२०, व्य तर देवों के–३२, ज्योतिषी देवों के–२ और वैमानिक देवों के १० इन्द्र हक्त, यों कुल २०+३२+२+ १०=६४ इन्द्र होते हक्त । आगमानुसार ज्योतिषी देवों में अस ख्य इन्द्र होते हक्त तथापि जाति रूप से या अपेक्षा विशेष से गिनती की अपेक्षा आगम में ही इन्द्रों की यह ६४ स ख्या कही जाती है । ६४ इन्द्रों के नाम यहाँ इस प्रकार दर्शाये गये हक्त–

भवनपतिदेवों के बीस इन्द्र :– भवनपति की असुरकुमार आदि दस जातियाँ है, उन दशों जातियों में उत्तर दिशावर्ती और दक्षिण दिशावर्ती दो-दो इन्द्र होने से कुल बीस इन्द्र होते हक्त, यथा– (१-२) चमरेन्द्र-बलीन्द्र (३-४) धरणेन्द्र-भूतानेन्द्र (५-६) वेणुदेव-वेणुदाली (७-८) हरिक त-हरिस्सह (९-१०) अग्निसि ह-अग्निमाणव (११-१२) पूर्ण-विशिष्ट (१३-१४) जलका त-जलप्रभ (१५-१६) अमितगति-अमितवाहन (१७-१८) वेल ब-प्रभ जन (१९-२०) घोष-महाघोष ।

वाणव्य तर देवों के बत्तीस इन्द्र :– वाणव्य तर के पिशाच आदि आठ और आणपन्नी आदि आठ यों १६ जाति है । इन १६ जाति में उत्तर दिशावर्ती और दक्षिण दिशावर्ती दो-दो इन्द्र होने से कुल ३२ इन्द्र होतेहक्त, यथा– **पिशाचादिके–** (१-२) काल-महाकाल (३-४) सरूप-प्रतिरूप (५-६) पूर्णभद्र-माणिभद्र (७-८) भीम-महाभीम (९-१०) किन्नर-कि पुढष (११-१२) सत्पुढष-महापुढष (१३-१४) अतिकाय-महाकाय (१५-१६) गीतरति-गीतयश ।

आणपन्नी आदि के– (१७-१८) सन्निहित-सामान्य (१९-२०) धाता-

विधाता (२१-२२) ऋषि-ऋषिपालक (२३-२४) ईश्वर-महेश्वर (२५-२६) सुवत्स-विशाल (२७-२८) हास्य-हास्यरति (२९-३०) श्वेत-महाश्वेत (३१-३२) पत ग-पत गगति ।

ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र– च द्र और सूर्य । **वैमानिकदेवों के १० इन्द्र–** (१) सौधर्मेन्द्र (२) ईशानेन्द्र (३) सनत्कुमारेन्द्र (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्मलोकेन्द्र (६) ला तकेन्द्र (७) महाशुक्रेन्द्र (८) सहस्रारेन्द्र (९) प्राणतेन्द्र (१०) अच्युतेन्द्र । देवलोक १२ है तथापि इन्द्र १० है, क्यों कि नववें दसवें देवलोक का सम्मिलित एक ही इन्द्र-प्राणतेन्द्र है । उसी तरह ग्यारवें बारहवें का सम्मिलित एक ही इन्द्र अच्युतेन्द्र है । नवग्रैवेयक और पाँच अणुत्तर विमान में सभी इन्द्र ही है, उन्हें अहमेन्द्र कहा गया है । अतः उनकी गिनती ६४ इन्द्रों में नहीं की गई है ।

प्रश्न–८ : इस उद्देशक में अन्य भी छुटक विषय कौन से कहे गये हक्त ?

उत्तर– पूर्वोक्त ७ प्रश्नों में चर्चित विषयों के अतिरिक्त छुटक विषय इस प्रकार है– (१) पुद्‌गल स्वय भी जुडते-बनते, बिखरते हक्त; सडन, पडन, विध्व शन को प्राप्त होते हक्त और पर प्रयोग या निमित्त से भी जुडते–बनते बिखरते हक्त; सडन,पडन, विध्व शन को प्राप्त होते हक्त । (२) सामायिक के दो प्रकार है– आगारसामायिक, अणगारसामायिक अर्थात् देशविरति और सर्वविरति की सामायिक । (३) समस्त देव-नारकी का उपपात जन्म है । नारकी और भवनपति का मरण उद्‌वर्तन रूप होता है अर्थात् वे मरकर नीचे से उपर आते हक्त। ज्योतिषी और वैमानिक देवों का च्यवन रूप मरण होता है अर्थात् वे मरकर उपर से नीचे आते है । गर्भज जन्म स ज्ञी मनुष्य और तिर्यंच प चेंद्रिय का होता है । (४) गर्भस्थ– गर्भ में रहे हुए तिर्यंच-मनुष्य दोनों के आहार, शरीर वृद्धि, हानि(बिमारी से), विक्रिया, हलन-चलन, मारणांतिक समुद्‌घात, मृत्यु स योग और मरण आदि स भव है । दोनों के हाड-मा स-चमडीमय शरीर होता है और दोनों शुक्र-शोणित के मिश्रण वाले स्थान में जन्म धारण करते है– स ज्ञी तिर्यंच और स ज्ञी मनुष्य । (५) मनुष्य और तिर्यंच दोनों के कायस्थिति होती है। नारकी और देव दोनों के एक मात्र भव-स्थिति होती है, कायस्थिति नहीं होती है । क्यों कि वे पूर्णायु में मरते हक्त और वापिस उसी में जन्म नहीं करते कि तु मनुष्य तिर्यंच में जन्म लेते हक्त । जब कि कायस्थिति उसी स्थान में पुनः पुनः जन्म धारण

करने पर बनती है । भवस्थिति सर्व स सारी जीवों को होती है कि तु यहाँ दो की स ख्या से सीमित कथन है । आयु भी दो प्रकार का है– अद्धायु और भवायु । जो स्थिति के समान ही समझ लेना ।

नोंध– कायस्थिति और अद्धायु एकेन्द्रियादि सभी तिर्यंचों के होते हक्त। मूलपाठ में – **प चि दियतिरिक्खजोणियाण** ऐसा पाठ है उसे सुधार कर **तिरिक्खजोणियाण** ऐसा पढना चाहिये । अथवा दो की स ख्या का प्रस ग होने से उपलब्ध पाठ सापेक्ष कथन रूप है ऐसा भी मान सक्तेहक्त।

(६) कर्मोदय दो प्रकार से होता है– प्रदेशोदय और विपाकोदय । नारकी देवता पूर्णायु भोगते हक्त और स वर्तित आयुष्य मनुष्य तिर्यंच के होता है अर्थात् इन दोनों में एकतृतीयाँश आयुष्य को स वर्तित करके प्रदेशोदय से भोग लिया जा सकता है (७) सातवें आठवें देवलोक में विमान दो वर्ण के होते हक्त– पीला और सफेद । (८) ग्रैवेयक देवों की अवगाहना दो हाथ की होती है ।

स्थान-२ : उद्देशक-४

प्रश्न-१ : इस उद्देशक में क्या क्या विषय है ?

उत्तर– जीव अजीव को लेकर समय, आवलिका, ग्रामादि तथा छाया आदि की विचारणा, मृत्यु समय में आत्मप्रदेश निकलने का, धर्मबोधि, कषाय, जीवों के दो-दो भेद, आठों कर्मों के दो-दो भेद तथा देवों की स्थिति, परिचारणा आदि दो स ख्या से छुटक विषय भी कहे गये हक्त ।

प्रश्न-२ : समय आदि, ग्राम आदि जीव है या अजीव ?

उत्तर– एक समय से लेकर उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक सभी ४८ काल की इकाइयाँ जीव-अजीव दोनों पर प्रवर्तित होती है । जीव अजीव दोनों की पर्यायें काल से स ब धित होती है । अत: समय आदि को जीव रूप भी कहा जा सकता है और अजीव रूप भी कहा जा सकता है । दो स ख्या का कथन होने से इन्हें जीव और अजीव दोनों रूप में होना स्वीकारा गया है ।

ग्राम नगर आदि, उद्यान आदि, सरोवर-नदी-पर्वत, नरकपृथ्वी

घनोदधि आदि, द्वीपसमुद्र, नैरयिक आवास यावत् वैमानिक आवास, वर्ष(हरिवासादि) वर्षधरपर्वत, कूट, विजय, राजधानी वगैरह सभी क्षेत्रीय पदार्थ जीवाश्रय होने से जीव रूप तथा अजीवमय होने से अजीव रूप यों दो दो प्रकार के स्वीकार किये गये हक्त ।

छाया, आतप, अ धकार, उद्योत आदि अजीव होने से अजीव रूप और जीवाश्रय होने से जीव रूप यों दोनों ही प्रकार के स्वीकार किये गये हक्त अर्थात् ये उपरोक्त सभी जीव रूप भी कहे गये हक्त और अजीव रूप भी ।

प्रश्न-३ : अशाता वेदना कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर– दो प्रकार की अशाता वेदना कही गई है– (१) लोच, तपस्या आदि के द्वारा वेदना की उदीरणा, उदय और निर्जरा होती है वह **अभ्युपगमिकी वेदना** है। (२) कर्मों के उदय से रोगात क या आकस्मिक घटना आदि से अशाता वेदना की उदीरणा, उदय और निर्जरा होती है वह **ओपक्रमिकी वेदना** है ।

प्रश्न-४ : मरने वाले जीव की आत्मा शरीर में से कहाँ से निकलती है?

उत्तर– मरने वाले जीव की आत्मा दो प्रकार से निकलती है– (१) स सार से मुक्त होकर मोक्ष में जाने वाले जीव के आत्मप्रदेश समस्त शरीर से एक साथ निकलते हक्त। (२) चार गति में जाने वाले जीवों के आत्मप्रदेश शरीर के एक देश से निकलते हक्त अर्थात् शरीर के किसी भी एक विभाग रूप हाथ, पाँव आदि अ गोपाँग से निकलते हक्त। दो स ख्या का कथन होने से यहाँ देश से और सर्व से आत्मप्रदेश निकलने का स क्षिप्त निरूपण किया गया है । जिस अ ग में से आत्मप्रदेश बाहर अन्य गति में जाने के लिये निकलते हक्त उस अ ग का स्पर्शन, क पन, स्फुरण, स कोचन और निवर्तन(त्याग)निकाश होता है ।

प्रश्न-५ : जीवों को धर्म का बोध यावत् मन:पर्यव ज्ञान किस प्रकार होता है ?

उत्तर– जीव को दर्शनमोह के क्षयोपशम या क्षय से धर्म का बोध– श्रद्धान होता है । चारित्रमोह कर्म के क्षयोपशम से स यम, स वर आदि की प्राप्ति एव ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ४ ज्ञान और क्षय से केवलज्ञान होता है, इस प्रकार दो स ख्या के कथन में **क्षय और**

उपशम से इन सर्व गुणों(बोलों)की प्राप्ति का कथन किया गया है । क्षय और उपशम इन दो के कथन में शास्त्रकार ने क्षयोपशम का भी समावेश किया है ।

प्रश्न–६ : यहाँ जीवों के दो-दो प्रकार कौन से कहे गये हैं ?

उत्तर– (१) त्रस-स्थावर (२) सिद्ध-स सारी (३) सइन्द्रिय-अनिन्द्रिय (४) सकाय-अकाय (५) सयोगी-अयोगी (६) सवेदी-अवेदी (७) सकषायी-अकषायी (८) सलेशी-अलेशी (९) ज्ञानी-अज्ञानी (१०) साकारोपयोगी-अनाकारोपयोगी (११) आहारक-अनाहारक (१२) भाषक-अभाषक (१३) चरिम-अचरिम (सिद्ध और अभवी दोनों को अचरिम में गिना गया है) और (१४) सशरीरी-अशरीरी । यहाँ प्रथम बोल के दो भेदो में मात्र स सारी जीवों का कथन है, शेष सभी बोलो में स सारी और सिद्ध सभी जीवों का कथन है । इस बात का स्पष्टीकरण मूलपाठ में ही कर दिया गया है ।

प्रश्न–७ : आठ कर्मों के दो-दो भेद किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर– दो स ख्या वाले इस प्रकरण की यही विशेषता है कि प्रत्येक इच्छित विषय को दो में कथन करना । इस लक्ष्य में– (१) ज्ञानावरणीय–देश ज्ञानावरणीय(प्रथम चार ज्ञानावरण)और सर्वज्ञानावरणीय(केवल ज्ञानावरण) (२) दर्शनावरणीय–देश दर्शनावरणीय और सर्व दर्शना-वरणीय (३) वेदनीय–शातावेदनीय और अशातावेदनीय (४) मोहनीय–दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय (५) आयुष्य–अद्धायु (कायस्थिति) और भवायु (भवस्थिति) (६) नाम–शुभनाम और अशुभनाम (७) गौत्र–उच्च गौत्र और नीच गौत्र (८) अ तराय– वर्तमान लाभ का विनाशक अ तरायकर्म और आगामी लाभ को रोकने वाला अ तराय कर्म । यहाँ ४ कर्मों में विशेष विशेषता युक्त दो भेदों का कथन है और ४ कर्मों के(वेदनीय, मोहनीय, नाम और गौत्र) प्रचलित दो-दो भेद ही कहेहह ।

प्रश्न–८ : बाल मरणों के लिये हेय-उपादेय का कथन किस प्रकार है ?

उत्तर– दो-दो के जोडे से १२ बालमरण को श्रमण भगवान ने हेय कहा है । उनका श्रमण निर्ग्रंथों के लिये निषेध किया है । तथापि कारण विशेष की परिस्थिति में उनमें से दो का निषेध नहीं किया है– (१) फा सी लगाकर मरना (२) गिद्ध आदि पक्षियों से खाया जाकर मरना ।

विशेष कारण– शील रक्षा, स यम रक्षा, बलात्कार से बचने के लिये वगेरे । उपलक्षण से इन दो के अतिरिक्त भी समय पर किसी भी विधि से शीघ्र प्राणत्याग हो सके उसका भी ग्रहण कर लेना चाहिये, यथा– जीभ खींचकर, गला मरोडकर-दबोचकर वगेरे । **नो वर्णित**– सामान्य रूप से अच्छा नहीं कहा है । **नो कीर्तित**–विशेष प्रेरणा रूप से कथन नहीं किया है। **नो उक्त**– स्पष्ट निरूपण नहीं किया है । **नो प्रश सित**–प्रश सा करके श्रेष्ठ एव आदरणीय भी नहीं कहा है। **णो अब्भणुण्णाइ** –आज्ञा नहीं दी है उपादेय नहीं कहा है ।

पादपोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान ये दोनों प डित मरण की स्पष्ट आज्ञा दी गई है । पादपोपगमन स थारे वाले शरीर की सेवा शुश्रूषा कराते भी नहीं है और करते भी नहीं है । उनकी सेवा में रहने वाले श्रमण आवश्यक होने पर उनके उपकरणों का प्रतिलेखन कर सकते हक्त, प्रतिक्रमण करा सकते हक्त, अन्य भी देख-रेख विवेक स्वत: रखते हक्त ।भक्तप्रत्याख्यान स थारे में सेवा-सहयोग लिया जा सकता है । स्वय भी शरीर की आवश्यक सार-स भाल कर सकता है । दोनों स थारे वालों का नीहरण, दाह स स्कार हो सकता है और नहीं भी । अर्थात् ग्राम आदि में हो तो हो सकता है; वन, पर्वत, गुफा आदि में हो तो नहीं भी होता है ।

१२ प्रकार के बाल मरण:– (१) वलय मरण (२) वशार्त मरण (३) निदान मरण (४) तद्‌भव मरण (५) गिरिपतन मरण (६) तढपतन मरण (७) जलप्रवेश मरण (८) अग्निप्रवेश मरण (९) विषभक्षण मरण (१०) शस्त्राघात मरण (११) वैहायस मरण (१२) गृद्धस्पृष्ट मरण ।

प्रश्न–९ : यहाँ वर्णित आराधनाओं का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– आराधना दो प्रकार की होती है– प्रवृति रूप और परिणाम रूप (१) प्रवृति रूप आराधना को सूत्र में **धार्मिकी आराधना** कहा है अर्थात् श्रुतधर्म तथा चारित्रधर्म की यथार्थ आचरणा करना, यह धार्मिकी आराधना है (२) परिणाम रूप, रिझल्ट रूप आराधना को सूत्र में **केवली आराधना** कहा है अर्थात् जिनाज्ञानुसार आचरणा करते हुए अ तिम समय में पूर्ण आराधक होना यह केवली आराधना है ।श्रावक या साधु धर्म का आचरण करते हुए मृत्यु समय में अ तक्रिया=

मोक्ष प्राप्त करना अथवा वैमानिक देवलोक में जाना, यह केवली आराधना है । स क्षेप में तात्पर्य यह है कि (१) जीवन में श्रुतधर्म की सु दर पालना **श्रुतधर्म धार्मिकी** आराधना कही जाती है (२) जीवन में चारित्रधर्म की सु दर पालना **चारित्रधर्म धार्मिकी** आराधना है (३) अ तिम समय में आराधक बन कर मुक्ति प्राप्त करना **अ तकिरिया केवली** आराधना है (४) अ तिम समय में आराधक बनकर वैमानिक देवगति में जाना **कल्पविमानोत्पत्तिकी** केवली आराधना है । जैसे कि- विद्यार्थी का सु दर पढाई करने का अलग महत्व होता है और परीक्षा में उत्तीर्ण होने का या रेंक न बर लाने का अलग महत्त्व होता है।

प्रश्न-१० : इस उद्देशक में अन्य किन-किन विषयों का निरूपण है?

उत्तर- यहाँ छुटक अनेक विषयों का स क्षिप्त कथन है वह इस प्रकार है- (१) विश्व के सर्व पदार्थों का दो राशि में समावेश होता है- जीव राशि और अजीवराशि । (२) जगत में ब धन एव कर्मब ध के कारण भी दो है- राग और द्वेष । (३) उपमाकाल के दो भेद हक्त- पल्योपम और सागरोपम । **पल्योपम-** १ योजन ल बा चौडा ऊँडा कूवा बालाग्रों के अस ख्य ख डो से भरा हो, उसमें से १-१ बालाग्र ख ड १००-१०० वर्षों से निकालने पर जितने समय में वह कूवा खाली होवे, वह काल पल्योपम है तथा १० क्रोडाक्रोडी पल्योपम का एक सागरोपम काल होता है । इसके आगे उत्पसर्पिणी आदि भेद हक्त । कि तु यह दो की स ख्या का प्रकरण होने से उपमाकाल की शरूआत की दो इकाई का ही कथन किया गया है (४) क्रोध जीव को या २४ द डक के जीवों को अपने पर तथा अन्य पर यों दोनों पर हो सकता है ।एकेन्द्रियादि अस ज्ञी जीवों में क्रोध आदि का पूर्वभव के स स्कार से अस्तित्व स्वीकार किया गया है । स ज्ञी जीवों में उभय निमित्तक क्रोधादि (१३ पाप) माने गये हक्त । यहाँ दो की स ख्या के कारण १३ पाप(प्रार भ के पाँच छोडकर) का ही कथन किया गया है (५) लोक क्या है ? लोक में अन त क्या है ? और लोक में शाश्वत क्या है ? इन तीनों प्रश्नों का उत्तर है- जीव और अजीव रूप यह लोक है, लोक में अन त जीव और अन त अजीव है । जीव और अजीव ये दोनों ही लोक में शाश्वत है । (६) ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त बोधि ज्ञानबोधि है और दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाली बोधि

दर्शनबोधि है । (७) अयथार्थ ज्ञान, ज्ञान मोह है और उसके वशीभूत होना ज्ञान मूढता है । अयथार्थ दर्शन अयथार्थ श्रद्धान, दर्शन मोह है और अयथार्थ दर्शन के अधीन बन जाना उसी में आग्रही बुद्धि हो जाना दर्शन मूढता है ।(८) मूर्च्छा के दो प्रकार है- रागयुक्त और द्वेष युक्त मूर्च्छा । राग मूर्च्छा में मायालोभ का और द्वेष मूर्च्छा में क्रोध मान का समावेश होता है (९) तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण- बीसवें, बावीसवें तीर्थंकर का नीलोत्पल(श्याम) । १९ वें, २३ वें तीर्थंकर का प्रिय गु वृक्ष जैसा(नीला)। छट्ठे-बारहवें तीर्थंकर का **पद्मगौर** वर्ण का । आठवें नवमे तीर्थंकर का च द्रगौर वर्ण कहा गया है । (१०) सत्य-प्रवाद पूर्व की दो वस्तु(बडे अधिकार) है ।(११) पूर्व-उत्तरभाद्रपद तथा पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी ये चार नक्षत्र के दो-दो तारे होते हक्त । (१२) मनुष्य क्षेत्र में दो समुद्र है-लवण और कालोदधि ।

(१३) दो चक्रवर्ती मरकर नरक में गये- आठवाँ सुभूम और बारहवाँ ब्रह्मदत्त । दो की स ख्या का कथन होने से अन्य १० चक्रवर्ती का कथन यहाँ नहीं है, वे सभी मोक्ष गये हक्त । टीका ग्र थों में दो चक्रवर्तियों का देवलोक में जाना भी कहा जाता है कि तु यहाँ दो की स ख्या में उनका कथन नहीं है और उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवें अध्ययन में १० ही चक्रवर्तियों का मोक्ष जाना कहा गया है । (१४) नवनिकाय के देवों में दो पल्योपम और प्रार भ के ४ देवलोकों में दो सागरोपम की स्थिति का कथन किया गया है। दो देवलोक में देवियाँ होती है । दो देवलोक के देवों में एक तेजोलेश्या होती है।

(१५) **परिचारणा-** पहले दूसरे देवलोक में काय परिचारणा, ३-४ में स्पर्श परिचारणा, ५-६ में रूप परिचारणा, ७-८ में शब्द परिचारणा होती है । उन-उन देवों को स्त्री के स्पर्श, रूप, शब्द से मैथुनभावों की तृप्ति हो जाती है । ९ से १२ देवलोक में मन परिचारणा है । उनको मन में देवी के चिंतन मात्र से तृप्ति हो जाती है । नव ग्रैवेयक तथा पाँच अनुत्तर विमान में कोई भी परिचारणा नहीं है । वे देव स्त्री स ब धी विकार भावों से मुक्त होते हक्त ।(१६) स सार के जीवों ने दो स्थान में रहकर कर्मों का चय, उपचय, ब ध आदि किया है, करते हक्त और करेंगे- त्रस पणे में और स्थावर पणे में ।(१७) लोक में दो प्रदेशी

पुद्‌गल अन त है, दो प्रदेश अवगाढ पुद्‌गल भी अन त है, दो समय की स्थिति के पुद्‌गल भी अन त है और दो गुण काला यावत् दो गुण लुक्खा पुद्‌गल भी अन त है ।

स्थान–३ : उद्देशक–१

प्रश्न–१ : इस स्थान का परिचय क्या है ?

उत्तर– इसमें तीन की स ख्या वाले तत्त्वों का कथन है तथा अनेक तत्त्वों को कोई भी अपेक्षा या पद्धति से तीन की स ख्या में समाविष्ट करके कथन किया गया है । इस स्थान में ४ उद्देशक हक्त जिनमें कुल २०० से अधिक सूत्रों में तीन की स ख्या से स ब धित अनेक विषय हक्त। चारों उद्देशकों के विभाजन में कोई विषय विभाजन नहीं है । जहाँ तहाँ विविध विषय चारों उद्देशकों में अक्रमिक रूप से स कलित है ।

प्रश्न–२ : प्रथम उद्देशक में मुख्य कौन-कौन से विषयों का निरूपण है ?

उत्तर– इस उद्देशक में तीन की स ख्या को लेकर विक्रिया, परिचारणा, योग-प्रयोग-करण, आयुब ध, गर्हा-प्रत्याख्यान, पुरिषजात, स्त्री-पुढष, नपु सक, लेश्या, देव विषयक, तारा टूटना, ऋण मुक्ति, उपधि-परिग्रह-प्रणिधान, योनि, स्थावर तीर्थ, काल, उत्तम पुढष, लोक में समान स्थल, सद्‌गति, दुर्गति आदि तथा अन्य भी प्रकीर्णक अनेक विषय इस उद्देशक में समाविष्ट किये गये हक्त ।

प्रश्न–३ : यहाँ विक्रिया के कथन से क्या समझाया गया है ?

उत्तर– मूल में **विकुव्वणा** शब्द है । इस शब्द से वैक्रिय शरीर बनाने स ब धी क्रिया का आभास होता है पर तु यहाँ यह शब्द शरीर की विभूषा, परिचर्या अर्थात् जीव के द्वारा शरीर को स स्कारित करने स ब धी विशेष-विशेष क्रियाओं के अर्थ में प्रयुक्त है । इस प्रकार प्रस्तुत में तीन की स ख्या को लेकर विक्रिया के विषय में अनेका तिक निरूपण किया गया है कि शरीर स ब धी विक्रिया– (१) बाह्य पुद्‌गल लेकर भी होती है (२) बाह्य पुद्‌गल बिना लिये भी होती है (३) और कभी पुद्‌गल लेने और नहीं लेने दोनों प्रकार से अर्थात् मिश्र प्रकार से भी शरीर की परिचर्या विभूषा हो सकती है । इसी तरह (४-६) आभ्य तर पुद्‌गल लेने, नहीं लेने स ब धी तीन भ ग समझ लेने चाहिये । इसी तरह (७-९)

बाह्य-आभ्य तर दोनों पुद्‌गलों के ग्रहण; अग्रहण और उभय स ब धी तीन विकल्प हो सकते हक्त । शरीर परिचर्या रूप विक्रिया–विकुर्वणा में ये सभी भ ग घटित हो जाते हक्त । कि तु वैक्रिय शरीर बनाने रूप विकुर्वणा में तो केवल एक ही भ ग होता है कि बाह्य पुद्‌गल ग्रहण करके ही वैक्रिय शरीर स ब धी विकुर्वणा होती है । क्यों कि भगवती सूत्र शतक–३, उद्देशक–४, ५ में भी बाह्य पुद्‌गल ग्रहण करने से ही विकुर्वणा किया जाना बताया गया है ।

प्रश्न–४ : परिचारणा और मैथुन के क्या अर्थ है और इस स ब ध में प्रस्तुत उद्देशक में क्या समझाया गया है ?

उत्तर– परिचार शब्द का स चरण–गमनागमन अर्थ भी होता है । परिचार से बना हुआ परिचारणा जैन आगमों का विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है । यह देव देवियों की परस्पर की काम-भोग सेवन की प्रक्रिया के लिये प्रयुक्त हुआ है । यहाँ यह बताया गया है कि देवलोक के देवता भी एक प्रकार के सा सारिक प्राणी है । उनके भी विविध-विचित्र भोगावली कर्म होते हक्त जिस कारण से भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के कई देव (१) अपनी देवियों के साथ क्रीडा–विषयभोग सेवन में स तुष्ट रहते हक्त (२) कोई अन्य देवों की देवियों के साथ भी परिचारणा करते हक्त (३) और कोई स्वय देवियों के रूपों की विकुर्वणा करके उनके साथ भी परिचारणा करते हक्त । इस प्रकार की परिचारणा–विषयेच्छा की पूर्ति मनुष्य स्त्री-पुढष के समान ही उन देव-देवीयों के होती है ।

मैथुन शब्द भी स्त्री-पुढष की विषयेच्छा पूर्ति की क्रिया का द्योतक है । यह भी जैनागमों का विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है । परिचारणा शब्द का प्रयोग आगमों में प्रायः देवों के लिये देखा जाता है और मैथुन शब्द का प्रयोग देव,मनुष्य,तिर्यंच सभी के लिये होता है। परिचारणा शब्द विशाल है उसमें अनेक अर्थ समाविष्ट है । मैथुन शब्द सीमित अर्थ वाला है । विषय भोग की इच्छा से स्त्रीपुढष की स योगजन्य प्रक्रिया मैथुन क्रिया है । इसका एक ही प्रकार है । जो परिचारणा के पाँच प्रकारो में से प्रथम काय परिचारणा में समाविष्ट होता है । परिचारणा के पाँच प्रकार ये हक्त– (१) काया से विषय सेवन (मैथुन सेवन) (२) स्पर्श से अर्थात् स्त्री-पुढष परस्पर

हाथ-पाँव, शरीर के स्पर्श, आलि गन आदि से । इसी तरह (३) रूप देखकर (४) शब्द श्रवणकर और (५) मन में स्त्री-पुढष परस्पर चि तन करके । यों परिचारणा शब्द कथित विषयेच्छा की पूर्ति पाँचों प्रकार से होती है । जब कि मैथुन शब्द एक प्रकार की विषयेच्छा पूर्ति के लिये ही प्रयुक्त होता है ।

तीन स ख्या के प्रस ग से यह भी बताया गया है कि- (१) मनुष्य तिर्यंच देव तीनों में मैथुन प्रक्रिया है (२) इसलिये मैथुन के तीन प्रकार है ।(३) स्त्री-पुढष और नपु सक तीनों ही मैथुन सेवन करते हक्त । नपु सकों में भी स्त्री लि गी नपु सक और पुढषलि गी नपु सक यों दो प्रकार होते हक्त अत: उनमें भी मैथुन सेवन कहा गया है । नारकी में इस प्रकार से कोई भी मैथुन सेवन या परिचारणा नहीं है, वे सदा अत्य त दुःखों में स तप्त रहते हक्त । त्याग प्रत्याख्यान नहीं होने से वे ब्रह्मचारी या व्रती नहीं कहलाते हक्त । नारकी देवता सभी अव्रती ही कहे गये हक्त ।

प्रश्न–५ : योग-प्रयोग और करण में क्या विशेषता है ?

उत्तर– सामान्य रूप से तीनों एकार्थक समझे जाते हक्त और इन तीनों के यहाँ पर मन,वचन,काया रूप तीन-तीन भेद एक सरीखे किये गये हक्त । विशेष अर्थ की अपेक्षा से (१) मन वचन काया की प्रवृत्ति योग है उसमें आत्मा की शक्ति का उपयोग वह प्रयोग है और योगप्रवृत्ति के पुन: तीन प्रकार है, वे करण है–(१) मन से स्वय करना, कराना, अनुमोदन करना (२) वचन से करना, कराना और अनुमोदन करना (३) काया से करना, कराना और अनुमोदन करना । **करण के** अन्य भी तीन प्रकार कहे हक्त– स र भ, समार भ और आर भ । इनका स्वरूप इस प्रकार है– (१) जीव विराधना का स कल्प करना या विराधना के पूर्व की तैयारी **सरभ-करण** है (२) जीवों को दुख पहुँचाना **समार भ करण** है और (३) उन्हें प्राण रहित कर देना **आर भ करण** है ।

मन, वचन और काया स ब धी योग-प्रयोग-करण २४ द डक में यथायोग्य समझना अर्थात् एकेंद्रिय में एक योग-प्रयोग-करण हक्त । विकलेन्द्रियों में दो-दो और प चेन्द्रियों में ३-३ योग-प्रयोग-करण हक्त। स र भ आदि तीन करण तो चोवीस ही द डकों में हक्त क्यों कि एकेन्द्रिय में भी पूर्व स स्कार की अपेक्षा अठारह ही पाप स्वीकारे गये हक्त ।

प्रश्न–६ : जीव कब कैसा और कितना आयुष्य का ब ध करता है?

उत्तर– तीन की स ख्या वाले कथन का अधिकार होने से अल्पायु-दीर्घायु वगैरह ब ध स ब धी अनेक कारण होते हुए भी मुख्य तीन-तीन कारण कहे गये हक्त । अर्थात् (१) तीन कारणों से जीव अल्पायु का ब ध करता है (२) तीन कारणों से जीव दीर्घायु का ब ध करता है (३) तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घायु का ब ध करता है । (४) तीन कारणों से जीव शुभ दीर्घायु का ब ध करता है ।

अल्पायु ब ध– (१) जीवों को मारने से (२) झूठ बोलने से (३) स यम के यथार्थ पालक तथारूप श्रमण-माहण(पूर्ण अहिंसक) को अप्रासुक अनेषणीय आहार आदि वहोराने से । **दीर्घायु ब ध–** (१) हिंसा नहीं करने से (२) झूठ नहीं बोलने से (३) तथारूप के श्रमण-माहणको प्रासुक-एषणीय आहार आदि वहोराने से । **अशुभ दीर्घायु ब ध–** (१) हिंसा करने से (२) झूठ बोलने से (३) श्रमण-माहण की हीलना, निंदा, अपमान करके; अप्रीतिकारक–खराब अमनोज्ञ आहार आदि वहोराने से । **शुभ दीर्घायु ब ध–** (१) हिंसा नहीं करने से (२) झूठ नहीं बोलने से (३) श्रमण-माहण को व दना नमस्कार करके सम्मानपूर्वक मनोज्ञ आहार पानी भक्तिभाव पूर्वक स यम विधि अनुसार(निर्दोष) वहोराने से ।

अपेक्षा से इन चारों का तात्पर्य इस प्रकार समझना चाहिये कि (१) आर भ समार भ करके झूठ बोलकर, होशियारी करके, भक्ति भाव से, अनुकम्पा भावों से, अनुराग से साधु-मुनिराज को अप्रासुक-अनेषणीय अर्थात् कोई भी छोटा-मोटा दोष लगाकर अकल्पनीय विधि से या अकल्पनीय पदार्थ वहोराने से अल्प मनुष्यायु का ब ध होता है क्यों कि नरकायुब ध करने जैसा क्रूर परिणाम नहीं होते है, तिर्यंचायु बा धने जैसी कोई स्वार्थ युक्त ठगाई नहीं है । देवायु तो दीर्घ होता है, कम से कम दस हजार वर्ष होता है । अत: अनुकम्पा-लागणी-भद्रिकता के साथ झूठ-आर भ और सदोषता होने से तथा जीवन में बार बार ऐसा आचारण होने से अल्प मनुष्यायु का ब ध होता है । अर्थात् कभी ऐसे प्रस ग पर ही आयुब ध का स योग आ जाय तो भी अल्प मनुष्यायु का ब ध होता है ऐसा समझना । इसके फल स्वरूप वह जीव मनुष्यभव पाकर २-४ महिनों से, ५-१५ वर्ष या ३५-४० वर्ष की उम्र में काल कर जाता है । (२) इसी प्रकार दीर्घायु मनुष्य, देव का (३) अशुभ दीर्घायु नरकादि का(नागश्री ब्राह्मणी की तरह)

(४) शुभ दीर्घायु वैमानिक देव का । अल्पायु के सूत्र में जो हिंसा, झूठ के आचरण की बात है वह सामान्य हिंसा या आर भ-समार भ स ब धी समझनी है, क्यों कि बडी हिंसा झूठ आदि का सेवन करने वाला तो नरक आदि दुर्गति का दीर्घ आयुब ध करता है । अत: यहाँ सदोष आहारादि वहोराने के साथ होने वाले हिंसा झूठ की अपेक्षा है, ऐसा समझना समाधान कारक होता है । यहाँ श्रमण-माहण दोनों ही शब्द जैन साधु के परिचायक है । वाक्याल कार के लिये इस प्रकार का डबल प्रयोग होता है, यथा– **साधु-महात्माओं** को दुख देने वाला कभी सुखी नहीं होता, यहाँ भी दो एकार्थक शब्दों का प्रयोग है । शब्द दृष्टि से भले उन शब्दों के अलग-अलग अर्थ होते हक्त, फिर भी अपने कथन में वजन देने के लिये ऐसे डबल शब्दों का प्रयोग होता है । लुच्चे-बदमास, चोर-लुटेरे, भोले-भद्रिक, सती-साध्वी, श्रमण-निर्ग्रंथ आदि भी इसी के उदाहरण हक्त ।

प्रश्न–७ : गर्हा का क्या अर्थ है और उसके विषय में यहाँ क्या कहा गया है ?

उत्तर– गर्हा आलोचना का ही एक विशेष प्रकार है । **आलोचना** में गुढ आदि के समक्ष अपने अतिचार-दोषों का सहजभावों से प्रगट करना होता है और गर्हा में अपनी भूल के प्रति खेद प्रगट करते हुए, अपनी निंदा करते हुए, गुढ आदि के समक्ष दोष का प्रगटीकरण होता है । सामान्य दोषों में आलोचना से शुद्धि हो जाती है । विशिष्ट बडे दोष रूप अक्षम्य भूल में आत्म निंदा-खेद-अफसोस के साथ आलोचना का महत्त्व अधिक बढ जाता है और वह साधक बडे अपराध से भी शीघ्र शुद्ध होकर हल्का फूलसा बन जाता है । ऐसे परिणामों में वह अपने पापों के मैल को अति शीघ्र धो डालता है । यह गर्हा आत्मनिंदा तीन प्रकार की कही है– (१) एकाध वाक्य में एकाध बार बोलना, (२) बार बार कथन कर-करके अधिक समय तक आत्मनिंदा खेद प्रगट करना (३) शीघ्र ही अपने दोष आचरण को समेटकर उससे पूर्ण निवृत्त हो जाना, उस दोष आचरण को सदा के लिये छोड देना, छोड देने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो जाना या उसका प्रत्याख्यान कर लेना; यह तीसरे प्रकार की उत्कृष्ट परिणाम दायक गर्हा है ।

आलोचना में सामान्य रूप से दोष कथन होता है और उसका

शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त स्वीकार कर लिया जाता है । अत: उसके एक बार या अनेक बार कथन, दीर्घकाल कथन आदि भेद नहीं होते हक्त।

गर्हा, आलोचना और प्रत्याख्यान ये तीनों (१) कभी स योगवशात् **मन से** भी हो सकते हक्त अर्थात् पवित्र-स्पष्ट-दृढ मन से इन तीनों की सिद्धि हो सकती है (२) कभी **वचन से** बोलकर या गुढ वडील **की** साक्षी या श्रीमुख से भी ये तीनों कार्य हो सकते हक्त (३) कभी **काया से** अपने आप के परिवर्तन या निय त्रण से भी होते हक्त । काया से गर्हा में अपने दोष के प्रति क पक पी, अ गस्फुरण एव पूर्ण रूप से उस दोष का त्याग होता है ।

प्रश्न–८ : २४ द डक में लेश्या का कथन तीन की स ख्या से किस प्रकार है ?

उत्तर– नैरयिकों के, तेउ-वायु और विकलेन्द्रियों के तथा स मूर्च्छिम मनुष्य के तीन-तीन लेश्या होती है । भवनपति, वाणव्य तर, पृथ्वी-पानी-वनस्पति और युगलिक मनुष्यों के तीन अशुभ लेश्या होती है । तिर्यंच प चेन्द्रिय और स ज्ञी मनुष्य के तीन अशुभ लेश्या और तीन शुभ लेश्या होती है । ज्योतिषी देवों में मात्र एक लेश्या होती है अत: उसका कथन यहाँ किसी भी प्रकार से नहीं हो सकने से छोड दिया गया है क्यों कि तीसरा स्थान तीन की स ख्या वाले तत्त्वों के स कलन रूप ही है ।

प्रश्न–९ : तारा कैसे टूटता है ?

उत्तर– तारा टूटना यह एक लोक व्यवहार भाषा का कथन मात्र है । आगम में **तारा रूवा चलेज्जा** ऐसा पाठ भाषा के विवेक के साथ है। जिसका अर्थ है– तारा जैसे रूप में आकाश में कुछ चलता है, चलते हुए देखा जाता है । ऐसा दिखना तीन प्रकार से होता है– (१) कोई देव आकाश में रहकर विकुर्वणा करे, वैक्रिय शक्ति प्रयोग से पुद्‌गल ग्रहण करे, छोडे तो उसमें कोई पुद्‌गल वैक्रिय शरीर योग्य उद्योत गुण वाले हों तो वे आकाश में इधर-उधर चलायमान होते दिखते हक्त अर्थात् पदार्थों की चमक दिखती है । जैसे कि फटाकों के कोई पुद्‌गल उपर जाकर चमकते हुए दिखकर वहीं समाप्त हो जाते हक्त वैसे ही ये चमकने वाले पुद्‌गल थोडी देर में वहीं समाप्त–विशीर्ण होकर दिखने ब ध हो जाता है । (२) देव आकाश में परिचार–स चरण

करते हक्त तब कुछ देर तक तारा जैसे चमकते पुद्गल और चलते पुद्गल दिखते हक्त थोडी देर बाद वे देव अपने से दूर हो जाय या उनके बाधक कोई विमान आदि आ जाय या वे विमान के अ दर चले जाय, तब अपने को दिखना ब द हो जाता है। अत्य त दूर ऊँचे सैकडों माइल आदि होने से चमकीले पदार्थ कितने भी बडे हों वे तारा जैसे छोटे दिखने लग जाते हक्त । (३) च द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र के विमान सदा अपने स्थान(अवग्रह) में रहते हुए गोलाकार में मेढ पर्वत के प्रदक्षिणा लगाते हुए और मेढ से समान दूरी पर रहते हुए भ्रमण करते रहते हक्त । वे चारों तरह के विमान कभी भी आजु-बाजू या ऊपर-नीचे नहीं सरकते हक्त । कि तु तारा विमान कभी आडे-टेढे भी चल सकते हक्त और थोडी दूर जाकर फिर अपनी पूर्ववत् परिक्रमा चालू कर देते हक्त । जिससे भी लोक में हमें तारा टूटता है, ऐसा आभास होता है; जिसे शास्त्रकार की भाषा में तारा रूप चलना कहा गया है ।

प्रश्न-१० : लोक में उजाला होने का या अ धकार होने का क्या तात्पर्य समझना ?

उत्तर– लोक में कहीं भी होने वाली प्रक्रिया को लोक में होना कहा जाता है । उसे आखा लोक समझ लेना एक बहुत बडी भूल है, जो भ्रम से चली आ रही है । शास्त्र में अनेक बातें लोक शब्द से कही हुई है, उन्हें आखालोक नहीं समझा जाता । यथा– लोक में दस अच्छेरे कहे हक्त तो गर्भहरण, अस यति पूजा, च द्र-सूर्यावतरण वगेरे पूरे लोक में नहीं समझना । लोक में किसी एक भाग में होने वाली घटना को लोक की घटना कही गई है । जब कि अस यति पूजा भरत क्षेत्र में ही हुई, उसे पूरे लोक में मानने की कोशीश नहीं की जा सकती । तात्पर्य यह है कि जिसका जितना जैसा प्रस ग हो वैसा अर्थ समझा जाता है।

ठीक उसी तरह लोक उद्योत और लोक अ धकार भी अपेक्षा से समझे जा सकते हक्त । लोक में जहाँ देवों का आगमन होता है, जिस मार्ग से देव या देव विमान निकलते हक्त वहाँ पर प्रकाश हो जाता है । क्यों कि आगे के सूत्र में ही उसका स्पष्टीकरण आ जाता है कि **देवुज्जोए सिया**–देव स ब धी उद्योत होता है । लोक का अर्थ है हमारे इस मनुष्य लोक में । लोक से पूरा लोक अर्थ का आग्रह करने पर अनेक सूत्र पाठों के अर्थ में दुविधा पैदा होती है ।

तीर्थंकरों के ऐसा कोई उद्योत नाम कर्म भी शरीर में नहीं होता है कि जो पूरे लोक में चमक-प्रकाश करे । खुशी में आकर देवता प्रकाश करे तो वे भी पूरे लोक में ऐसा नहीं कर सकते, अमुक सीमित क्षेत्र में ही देवता प्रकाश, वर्षा, बिजली, गर्जना, कोलाहल, सि हनाद आदि कर सकते हक्त ।

यहाँ जो अ धकार होने का कथन है वह तो एक मात्र भाव अ धकार की अपेक्षा ही समझना चाहिये, वह भी एक देश में अर्थात् सीमित क्षेत्र की अपेक्षा समझना चाहिये । क्यों कि पाँच महाविदेह क्षेत्र की १६० विजयों में पूर्वों का ज्ञान, जिनशासन, धर्म और अनेक तीर्थंकर केवली, द्वादशा गधारी, पूर्वधारी होते ही हक्त । अत: लोक से हमारा यह भरतक्षेत्र, उसमें भी तीर्थंकर की नगरी और आने वाले देवों का प्रकाश जहाँ जहाँ तक पहुँचता है, जिधर से वे गमनागमन करते हक्त वह क्षेत्र समझना चाहिये । तीर्थंकर के जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान के समय पूरे लोक में प्रकाश होना मानकर नरक सहित १४ राजलोक प्रमाण में द्रव्य प्रकाश होना मानना, बिना सूक्ष्मतम विचारणा से एव आगम में प्रयुक्त शब्दों के प्रास गिक अर्थ की अपेक्षा को ध्यान में लिये बिना अनुपयोग से तथा अतिशयोक्ति के मानस से चलाई गई पर परा समझनी चाहिये । अत: **लोगुज्जोए**–लोक में उद्योत अर्थात् प्रास गिक क्षेत्र में द्रव्य प्रकाश अर्थ समझना पर्याप्त और समाधान युक्त होता है ।

लोक में अ धकार का यहाँ तीन कारणों से जो भी कथन है वह द्रव्य अ धकार का विषय नहीं है, उसमें भाव अ धकार अर्थ करना प्रस गस गत एव समाधानकारक होता है । पूर्वों का विच्छेद होने से जिनशासन में कुछ अभाव, कमी होने से उसे भाव अ धकार होना समझा जा सकता है । द्रव्य अ धकार होना अस भव है और ऐसा मानना भी अस गत है ।

देवुज्जोए-देव धयारे शब्द से पूरे देवलोक में प्रकाश या द्रव्य अ धकार अर्थ किया जाय तो यहीं पर क्रमश: **देवुक्कलिया, देवकह-कह** वगेरे शब्दों से पूरे देवलोक में देवों की किलकारियाँ, देवों की चिक-चिक, देवों का आवागमन आदि मानना पडेगा पर तु ऐसा नहीं समझ करके जहाँ जहाँ जितने क्षेत्र में देवों का आवागमन होता है

वहीं देवों की किलकारियाँ, चिक-चिक और स न्निपात आदि समझा जाता है । ठीक उसी तरह उद्योत, देवुद्योत भी उसी क्षेत्र में समझना चाहिये, पूरे देवलोक में नहीं समझना चाहिये । इसलिये लोकुद्योत भी लोक में जहाँ प्रस ग है, जिधर से देवों का आवागमन है, वहीं तक समझना चाहिये । इस प्रकार यहाँ के सूत्रों का अर्थ होता है कि– (१) तीर्थंकरों के जन्म समय (२)दीक्षा समय (३)और केवलज्ञान के समय लोक में=प्रास गिक क्षेत्र में उद्योत होता है । इन तीन प्रस गों में देवों के आवागमन प्रस ग से देव स ब धी उद्योत, खुशियाँ, किलकारियाँ, चिक-चिक=घोंघाट होता है ।

इसी प्रकार (१) तीर्थंकर के निर्वाण होने से (२) तीर्थंकर धर्म का विच्छेद होने से (३) पूर्वज्ञानरूप श्रुतज्ञान के विच्छेद होने से; लोक में अर्थात् प्रास गिक क्षेत्र में(क्यों कि महाविदेह क्षेत्र में धर्म और पूर्वज्ञान सदा रहता है।) भाव अ धकार=धर्म की हानि रूप अ धकार होता है, जिसका आभास धर्मी-धर्मनिष्ठ मानव और देवों को होता है । इसीलिये यह भावा धकार भी एक देश = लोक के एक भाग में होते हुए भी इसे शास्त्र में शब्द प्रयोग दृष्टि से **लोग धयारे** कहा गया है कि तु उसके साथ **सव्व लोग धयारे** नहीं कहा गया है । अतः महाविदेह क्षेत्र में ये भावा धकार नहीं होने पर भी यहाँ कथित **लोग धयारे** से कोई विरोध नहीं समझा जाता है ।

इसी सूत्र के चौथे स्थान में तीर्थंकर के निर्वाण प्रस ग पर भी लोग धकार कहा है और उसके साथ के सूत्र में लोकुद्योत भी कहा है । उसका भी तात्पर्य यही है कि प्रास गिक क्षेत्रों में निर्वाण समय में देवों के आगमन का द्रव्य प्रकाश होता है और शासनप्रेमी धर्मनिष्ठ आत्माओं के लिये भावा धकार भी होता है । तीर्थंकरों से और ज्ञान से, धर्म से स ब धित इस अ धकार के लिये द्रव्य अ धकार कहीं भी नहीं समझकर मात्र भाव अ धकार ही समझना चाहिये ।

नारकी जीवों के क्षणिक सुख का कथन शास्त्र में आता है, उसे भी इस लोकप्रकाश से स ब धित किया जाता है कि तु उस क्षणिक सुख का स ब ध तो देवों के नरक में जाने के निमित्त से समझा जा सकता है । उसके लिये प्रस्तुत प्रकाश के कथन को आखा लोक में मानना जरूरी नहीं होता ।

सूत्रोक्त तीन प्रस गों पर इन्द्र, सामानिक, त्रायत्रिंशक, लोकपाल, अग्रमहिषी देवियाँ, परिषद के देव-देवी, अनिकाधिपति, आत्मरक्षक देव भी आते हक्त । इसके सिवाय लोका तिक देव भी पाँचवें देवलोक से इन तीनों प्रस गों पर आते हक्त । मुख्य रूप से लोका तिक देव तीर्थंकर के दीक्षा के पूर्व आकर, अपना जीताचार निभाते हुए भगवान से दीक्षा हेतु प्रेरणा वाक्य बोलकर, भगवान के दीक्षा के भावों का बहुमान करते हक्त ऐसा प्रसिद्ध है । तथापि प्रस्तुत सूत्रानुसार वे जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान आदि प्रस ग पर भी उपस्थित होते हक्त। इन तीनों प्रस गो पर देवों के(इन्द्रों के) अ गस्फुरण होता है, वे सर्व कार्य छोडकर उठ जाते हक्त, उनके चैत्यवृक्ष भी चलित–स्फुरित होते हक्त । इन प्रस गो पर खुशी में आकर देव सि हनाद करते हक्त, **चेलुक्खेवे**– ध्वजाएँ भी फहराते हक्त ।

प्रश्न–११ : माता-पिता, स्वामी और धर्माचार्य इन तीनों के उपकार से उऋण होने या नहीं होने के स ब ध में यहाँ पर क्या समझाया गया है ।

उत्तर– प्रस्तुत में मानव के जीवन में तीन का महान उपकार स्वीकारा गया है । तीन की स ख्या का प्रकरण होने से (१) माता-पिता को एक साथ में कहकर उनका उपकार स्वीकारा गया है । (२) स सार में जीवन यापन के लिये आजीविका, एक बडा प्रश्न है । जो कोई भी व्यक्ति व्यापार में मदद करता है, जिसके नेतृत्व में रहकर व्यापार की कला में पार गत बना जाता है, उसे यहाँ भट्टी-स्वामी-मालिक कहा गया है । व्यक्ति के जीवन निर्वाह में या आजीविका निर्वाह में, सुखी जीवन व्यतीत करने में उस स्वामी का मुख्य भाग होता है । अतः माता-पिता के बाद दूसरा उपकारी व्यापारिक स्वामी को, व्यापार कार्य में होशियार करने वाले को कहा गया है । (३) तीसरे न बर में स सार से तिरने का मार्ग दिखाने वाले और दीक्षा देने वाले धर्मगुढ धर्माचार्य का उपकार स्वीकारा गया है और इनका ऋण स्वीकारा गया है ।

इस ऋण से मुक्त होने के विषय में यह समझाया गया है कि तन मन से अर्पणता पूर्वक सब कुछ न्योछावर करते हुए इन तीनों की शारीरिक सेवा की जाय, इन्हें हर तरह से सुखशा ति पहुँचाई जाय वह भी जीवनभर, तो भी पूर्ण रूप से ऋण से उऋणता नहीं हो पाती अर्थात् इतना महान उपकार और ऋण इनका माना गया है । अ त में

उऋण होने का एक उपाय प्रस ग बताया गया है कि ये माता-पिता और स्वामी, धर्म में उपस्थित न हों तो उन्हें वीतराग धर्म में जोडने से और धर्म की सच्ची आराधना कराने में पूर्ण मददगार या प्रेरक बनने से इनके ऋण से सच्चा और पूर्ण उऋण बना जा सकता है । यदि ये धर्म को प्राप्त हो गये हो और कोई भी कारण से श्रुत-चारित्रधर्म से उनकी आस्था डोलायमान हो, धर्माचार्य भी उदयकर्म से धर्म में डावाडोल चित्त या सुस्त चित्त बने हों तो ऐसे समय में विवेक तथा बुद्धिमानी पूर्वक इन्हें धर्म में स्थिर करके मोक्षमार्ग के आराधक बनाने में पूर्ण प्रयत्न कर, सफलता प्राप्त कर ली जाय तो इन तीनों के उपकार का सच्चा बदला चुकाया जाना गिना जायेगा ।

प्रश्न-१२ : साधु बनने की सफलता के द्योतक मुख्य तत्त्व क्या है ?

उत्तर- यहाँ तीन की स ख्या का प्रस ग होने से स यम की सफलता के मुख्य तीन तत्त्व ध्यान रखने योग्य कहे हक्त-(१) **जोगवाहिता**-लिये हुए स यमयोग-स यम विधानों के भार का, महाव्रतों का, समिति-गुप्ति, तपाचरण आदि का यथार्थ जिनाज्ञानुसार, शास्त्रोक्त वर्णन अनुसार पालन होना चाहिये (२) **दृष्टिस पन्न**- जिनवाणी एव जिनाज्ञा के प्रति पूर्ण श्रद्धा, निष्ठा, आस्था अ त तक दृढ एव शुद्ध बनी रहनी चाहिये । (३) **अनिदानता**-स यम-तप के फल की इहलौकिक पारलौकिक कोई भी सुखों की कामना नहीं करनी चाहिये । मोक्षप्राप्ति और कर्मक्षय के सिवाय स यम-तप के फल स्वरूप कोई भी आका क्षा या स कल्प जीवन में कभी भी नहीं करना चाहिये । इन तीन गुणों का यथार्थ धारण एव पालन का विवेक रखने वाला अर्थात् इन तीन गुणों से स पन्न अणगार यथाशीघ्र अनादि अन त इस स सार सागर को पार कर लेता है, मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न-१३ : लोक में तीर्थ कितने होते हक्त ?

उत्तर- द्रव्य तीर्थ और भाव तीर्थ यों दो प्रकार के तीर्थ समझे जा सकते हक्त । भावतीर्थ का अर्थ होता है जिनके माध्यम से अर्थात् सुस गति से स सार सागर से तिरा जाता है । भावतीर्थ इस सूत्र के चौथे स्थान में आगे चार की स ख्या में बताये हक्त । वहाँ साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका इन चारों को तीर्थ कहा गया है । ये अपने ज्ञान से जीवों को बोध देकर, सन्मार्ग में जोडकर स सार प्रप च से, दुखों से उन्हें मुक्त

करा सकते हक्त, स सार समुद्र को तिरने का मार्ग बता सकते हक्त अतः इन्हें तीर्थ कहा गया है । वे चारों भावतीर्थ हक्त ।

प्रस्तुत में तीन की स ख्या के आधार से हमारे भरत क्षेत्र में तीन तीर्थस्थान कहे हक्त । मागध, वरदाम और प्रभास, ये उन तीन तीर्थों के नाम हक्त । उन तीर्थ स्थानों से लवण समुद्र के जल में प्रवेश किया जाता है, इस मार्ग से आगे जाने पर मागध, वरदाम, प्रभास नामक देवों के भवनरूप तीर्थस्थान हक्त, जो जल से घिरे हुए जल मध्य स्थित है, इन्हें ही अपेक्षा से तीर्थ (द्रव्य तीर्थ) कहा गया है । ऐसे तीन तीर्थ एरावत क्षेत्र में, महाविदेह क्षेत्र की सभी विजयों में तथा ज बूद्वीप के समान घातकी ख ड द्वीप और पुष्करार्ध द्वीप में भी ये तीन-तीन तीर्थस्थान है । यों कुल मिलाकर ढाई द्वीप में ५१० तीर्थों का कथन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है । इस प्रकार इस स्थाना गसूत्र अनुसार द्रव्यतीर्थ स्थान-५१० है और भावतीर्थ ४ है । वर्तमान में जैनों में अनेक तीर्थस्थान पर्यटन की अपेक्षा प्रसिद्ध है, जिनका हमारे इन आगमों में तीर्थ रूप में कहीं भी कथन नहीं मिलता है ।

प्रश्न-१४ : लोक में एक समान क्षेत्रावगाहना वाले पदार्थ कौन से हक्त ?

उत्तर- ज बूद्वीप तिर्च्छालोक में एक लाख योजन ल बा चौडा गोल तीन लाख योजन साधिक परिधि वाला है । ठीक इसकी पूर्ण सीध में नीचेलोक में चौतरफ समकक्ष समान ल बाई-चोडाई-परिधि वाला सातमी नरक का अप्रतिष्ठान नामक नरकावास है । ज बूद्वीप की सीध में ऊँचेलोक में सर्वार्थसिद्ध विमान चौतरफ से समकक्ष ज बूद्वीप जितनी ल बाई चौडाई एव परिधि वाला है । इस प्रकार ये तीनों एक लाख योजन की अपेक्षा समान और समकक्ष में रहे हुए हक्त ।

ढाईद्वीप-मनुष्यक्षेत्र ४५ लाख योजन ल बा-चौडा और साधिक तीन गुनी गोलाई-परिधि वाला तिर्च्छालोक में समभूमि पर रहा हुआ है । नीचालोक में प्रथम नरक का सीम तक नरकावास और ऊर्ध्वलोक में सिद्धशिला(ईषत्प्रागभारा पृथ्वी) भी इतने ही परिमाण वाले हक्त । इस प्रकार ये तीनों वस्तुएँ एक सीध में और समान क्षेत्रावगाहन वाली है ।

तीसरा स्थान होने से यहाँ तीन की स ख्या से सापेक्ष कथन है। आगे चौथे स्थान में प्रथम देवलोक का उडु विमान भी समयक्षेत्र के परिमाण वाला अर्थात् उतना ही ल बा चौडा-गोल बताया गया है ।

इस स्थाना ग सूत्र की यह एक विशिष्ट रचना शैली है कि अधिक स ख्या वाले तत्त्वों को भी अपेक्षा विशेष से कम स ख्या में कहा जाता है । इसी पद्धति के कारण यहाँ प्रथम देवलोक का उडु विमान जो इस माप वाला है तो भी उसे छोडकर तीन का कथन है और फिर चौथे स्थान में उसे इन तीन में मिलाकर चार का कथन पूर्ण किया गया है । एक लाख योजन के चार पदार्थ भी चौथे स्थान में कहे गये हक्त पर तु वहाँ कहा गया **पालक विमान** एक लाख योजन का होते हुए भी सीधो-सीध में नहीं होता है तथा वह यान विमान है, फोल्डि ग सिस्टम वाला है और आभियोगिक देवों द्वारा स योजित या निर्मित किया जाता है । उसे यहाँ तीन स्थान के समान-समकक्ष के पदार्थों में नहीं कहा जाना अपेक्षा से समीचीन भी है क्यों कि उसका स्वरूप एक लाख योजन की इन तीन वस्तुओं से भिन्न है ।

प्रश्न-१५ : सभी शास्त्र कालोकाल पढे जाते हक्त तो 'तीन शास्त्रों को काल से पढा जाता है', ऐसे कथन का क्या आशय है ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक के अ तिम सूत्र में यह कथन है, जिसमें तीन शास्त्रों के नाम है- (१) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति (२) च द्र प्रज्ञप्ति (३) सूर्य प्रज्ञप्ति । बात ऐसी है कि ये तीन शास्त्र गणित प्रधान एव भौगोलिक विषय वाले हक्त, जिन्हें बुद्धि से परिपक्व एव श्रद्धा से परिपक्व साधकों को अध्ययन कराया जाना श्रेयस्कर होता है, ऐसा सूत्रकार का आशय है । सामान्य बुद्धि विरक्तात्मा ऐसे विषय से ऊब सकते हक्त और ग्रहण शक्ति के अभाव में सम्यग् श्रद्धा से विचलित भी हो सकते हक्त । क्यों कि इन शास्त्रों में धर्मकथा या आचार-विचार, वैराग्य-उपदेश तथा स यम-साधना स ब धी कोई तत्त्व मुखरित नहीं होता है। अत: स यम पर्याय, दीक्षाकाल के परिपक्व हो जाने पर उस प्रकार की क्षमता, योग्यता प्राप्त साधकों के लिये ये शास्त्र अध्ययन योग्य बनते हैं, इस आशय को कहने के लिये ही यहाँ कहा गया है कि ये तीन शास्त्र **कालेणअहिज्ज ति** दीक्षाकाल के परिपक्व हो जाने पर यथासमय ही अध्ययन कराये जाने चाहिये । अन्य विशाल अर्थ की अपेक्षा ये तीनों शास्त्र विशिष्ट तप के साथ विशिष्ट क्षयोपशम वाले श्रमण श्रमणियों को पढाये जाने चाहिये ।

प्रश्न-१६ : इस उद्देशक में और किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- इस उद्देशक में अन्य अनेक विषय इस प्रकार स ग्रहित है- (१) तीन की स ख्या से कुल ९ इन्द्र कहे हक्त- १. नाम से इन्द्र २. स्थापना से इन्द्र ३. द्रव्येन्द्र । तीन भावेन्द्र- १. ज्ञानेन्द्र २. दर्शनेन्द्र ३. चारित्रेन्द्र। तीन ऐश्वर्य से-देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मनुष्येन्द्र(चक्रवर्ती)। तीन स ख्या की मुख्यता होने से यहाँ ६४ इन्द्रों में से कुछ का कथन नहीं है । (२) २४ द डक में जीवों की उत्पत्ति तीन प्रकार की स ख्या से होती है- १. स ख्यातजीव(२ से अधिक) २. अस ख्यात जीव और ३. एक जीव । इन्हें ही क्रमश: कतिस चित, अकतिस चित और अवक्तव्य स चित कहा है । (३) इन्द्र की तरह तीन की स ख्या में पुढषों के भी अनेक प्रकार दर्शाये हक्त- नाम, स्थापना, द्रव्य पुढष; ज्ञान, दर्शन, चारित्र पुढष; **वेद से**-वेदमोह के उदय से पुढष, दाढी मूछ आदि **चिन्हों** से पुढष और घट आदि पुल्लि गवाची शब्द, ये **अभिलाप्य** पुढष हक्त । उत्तम, मध्यम, जघन्य पुढष । उत्तम पुढष में- धर्मपुढष में अरिह त, भोगपुढष में चक्रवर्ती और कर्मपुढष में वासुदेव है । मध्यम पुढष में- उग्र, भोग, राजन्य पुढष । जघन्य में- दास-खरीदे हुए, भजक-वेतनीय और कुछ प्रतिशत भाग या कमीशन लेने वाले ।

(४) मच्छों के प्रकार- अ डज, पोतज, स मूर्च्छिम । अ डज पोतज के तीन प्रकार- स्त्री, पुढष, नपु सक । पक्षियों के तीन प्रकार भी इसी तरह हक्त । स मूर्च्छिम में एक नपु सक ही होने से उसके तीन भेद नहीं किये हक्त । इसी तरह उरपरिसर्प और भुज परिसर्प के भी तीन-तीन प्रकार हक्त । तीन भेद करते हुए स्त्री के तीन प्रकार कहे हक्त- मनुष्य, देव, तिर्यंच; इसी प्रकार पुढष के तीन । नपु सक के तीन भेद में- नरक, तिर्यंच, मनुष्य हक्त क्यों कि देव नपु सक नहीं होते हक्त । (५) देवता- वैक्रिय बनाते समय, गमनागमन करते हुए और अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन करते हुए गाज-बीज कर सकते हक्त । (६) उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी और ६ आरों में भाव वर्तन की अपेक्षा जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद भी होते हक्त। (७) तीन कारणों से पुद्गलों का भेदन नहीं हो तो भी वे अपने स्थान से चलित होते हक्त- १. जीव के द्वारा आहार रूप में ग्रहण किये जाने पर अछिन्न पुद्गल भी आकृष्ट होकर चलित होते हक्त। इसी प्रकार २. विकुर्वणा करने पर ३. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते समय बिना छेदन के भी पूरा स्क ध गतिमान-चलित होता है ।

(८) जीवों के कर्म, शरीर और बाह्य उपकरण ये तीन उपधि है, ये तीन परिग्रह भी हक्त और ये सभी, एकेंद्रिय के सिवाय द डकों में तीन-तीन होते हक्त । एकेंद्रिय में बाह्य उपकरण नहीं होने से दो रह जाते हक्त जिससे उनका कथन यहाँ नहीं हो सकता । अथवा सचित्त, अचित्त और मिश्र यों भी उपधि और परिग्रह के प्रकार होते हक्त । (९) मन वचन काया यों तीन प्रणिधान अर्थात् एकाग्र और तल्लीन होने के प्रकार है। ये तीनों सुप्रणिधान भी होते हक्त और दुष्प्रणिधान भी होते हक्त ।

(१०) निढपक्रमी आयुष्य वाले तीन के कथन में– तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव-बलदेव को कहा गया है । ये तीनों मध्यम वय में आयुष्य पूर्ण कर लेते हक्त । उन्हें बुढापा नहीं आता है । ये स्वाभाविक मौत से मरते हक्त, कि तु शस्त्र आदि से नहीं मरते हक्त । इनका आयुष्य बीच में कभी टूटता नहीं है, पूर्णायु प्राप्त करते हक्त । प्रत्येक वासुदेव- बलदेव के व श को ही दशारव श कहा गया है । (११) तीन समुद्रों में पानी का स्वाद स्वाभाविक पानी जैसा होता है– कालोदधि समुद्र, पुष्कर समुद्र और स्वय भूरमण समुद्र । तीन समुद्रों में मच्छ-कच्छ बहुत होते हक्त– लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वय भूरमण समुद्र; ऐसा स्वाभाविक रूप से ही है ।

(१२) कई वनस्पति सदा अन तजीवी होती है, यथा– आकडा, थोर वगेरे । क्यों कि उनके विभागों में से दूध निकलता है और दूध वाली वनस्पति अन तजीवी होती है । कई वनस्पति सदा अस ख्यजीवी होती है । ताड-खजूर,नारियेल, केलि आदि के वृक्ष स ख्यातजीवी भी होते है, प्रार भ की अनेक अवस्थाओं को छोडकर यहाँ वनस्पति का सामान्य कथन है । फिर भी इसे तृण वनस्पति शब्द से कहा गया है तो भी यहाँ केवल तृणों का कथन हो ऐसा नहीं समझना चाहिये । अथवा प्राय: प्रत्येक वनस्पति में तीन प्रकार की अवस्था–विभाग होते हक्त– पहले अन तजीवी, फिर अस ख्यजीवी और कभी कोई विभाग स ख्यात जीवी होते हक्त । तात्पर्य यह है कि तीनों तरह की वनस्पतियाँ होती है अथवा प्राय: प्रत्येक वनस्पति में तीन अवस्थाएँ होती है ।

(१३) तीन प्रकार के वृक्ष के समान तीन प्रकार के पुढष होते हक्त– १. पत्र युक्त वृक्ष के समान कई मनुष्य अन्यों को छाया रूप आश्रय दाता होते हक्त । २. कई मनुष्य पुष्प युक्त वृक्ष के समान अपने

गुणों की सुग ध फैलाकर दूसरों को गुणी बनाते हक्त । ३. फल युक्त वृक्ष के समान कई पुढष अन्यों का नि:स्वार्थ भरणपोषण करने वाले होते हक्त । (१४) महार भी महाकुटु बी व्यक्ति, राजा-महाराजा-चक्रवर्ती ये बडे लोग धर्म-कर्म, दान-पुण्य, मान-मर्यादा रहित अधर्मी जीवन जीवे तो अप्रतिष्ठान नरकावास में अर्थात् उत्कृष्ट सातमी नरक में जाते हक्त । इसके विपरीत जो राजा, सेनापति, म त्री आदि प्रशास्ता पुढष गृहत्यागी बनकर स यमपालन आराधन कर उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध विमान में जाते हक्त । यह सापेक्ष कथन है अर्थात् आयुब ध नहीं करे तो मोक्ष भी जाते हक्त ।

(१५) इस उद्देशक में अन्य भी कुछ ऐसे विषयों का कथन है जिनका वर्णन अन्य शास्त्रों में है, यथा– गुप्ति-अगुप्ति, द ड, योनि, अवगाहना, काल, आयुष्य, नरकस्थिति-वेदना, विमान वर्ण, देवों की अवगाहना आदि तीन की स ख्या से स ब धित कथन है । जिनकी चर्चा अन्य शास्त्रों में की जायेगी ।

स्थान-३ : उद्देशक-२

प्रश्न–१ : इस उद्देशक में मुख्य किन-किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर– इसमें तीन की स ख्या के आधारित देवेन्द्रादि की पर्षदा, धर्म के आचरण का एव दीक्षा का समय, दीक्षित होने के निमित्त, तीन दिशा, जीवों को दुख का भय, लोक प्रकार, पुढष के परिणाम, सुन्दर-असुन्दर जीवन का परिणाम, लोकस स्थिति एव अछेद्य-अभेद्य आदि का कथन है । इसके सिवाय अन्य आगमों में आने वाले जीवभेद, निर्ग्रंथ प्रकार, स्थविर, शैक्ष, त्रस-स्थावर, बुद्ध, बोधि, मोह आदि अनेक विषयों को तीन की स ख्या से स ब धित करके कहा गया है ।

प्रश्न–२ : चारों जाति के देवों की पर्षदा के स ब ध में क्या निरूपण है?

उत्तर– देवों में ६४ इन्द्र हक्त । उन सभी के आभ्य तर, मध्यम और बाह्य पर्षदा होती है तथा इन इन्द्रों के सामानिक, त्रायत्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषियों के भी तीनों प्रकार की पर्षदा होती है ।

व्य तर और ज्योतिषी देवों में त्रायत्रिंशक और लोकपाल नहीं होते हक्त । अत: उनकी पर्षदा का कथन भी नहीं है ।

इन तीनों प्रकार की पर्षदा में से आभ्य तर पर्षदा वालों की स्थिति अधिक होती है उनसे मध्यम और बाह्य पर्षदा की स्थिति क्रमशः कम-कम होती है । इन तीनों पर्षदा के नाम तीन प्रकार के हक्त– (१) समिया, च डा, जाया (२) तुम्बा, तुडिया, पव्वा (३) ईसा, तुडिया, दढरहा ।

(१) प्रथम प्रकार के **समिया, च डा, जाया नाम**– भवनपति और वैमानिक के इन्द्र सामानिक और त्रायत्रिंशकों की पर्षदा के होते हक्त। (२) दूसरे प्रकार के **तु बा, तुडिया, पव्वा नाम**– भवनपति जाति में असुरकुमार और वैमानिकों के लोकपाल और अग्रमहिषी की पर्षदा के होते हक्त तथा चन्द्र-सूर्य ज्योतिषी इन्द्र, सामानिक और अग्रमहिषी की पर्षदा के होते हक्त । (३) तीसरे प्रकार के **ईसा, तुडिया, दढरहा नाम**– भवनपति में नवनिकाय देवों के लोकपाल और अग्रमहिषी की पर्षदा के तथा व्य तर के इन्द्र, सामानिक और अग्रमहिषी की पर्षदा के होते हक्त । तीन प्रकार के नामों में भी स्थिति और रिद्धि का कुछ-कुछ अ तर होता है । जिसमें प्रथम के तीन नाम वाली पर्षदा की स्थिति ऋद्धि विशेष होती है, दूसरे और तीसरे प्रकार के नामों वाली पर्षदा की स्थिति, ऋद्धि क्रमशः कुछ कम-कम होती है ।

प्रश्न–३ : लोक में धर्माचरण के लिये चौथा स न्यासाश्रम कहा गया है तो जैन धर्म में इस विषय में क्या नियम है ?

उत्तर– मानव जीवन में धर्माचरण और आत्मकल्याण करने का अनुपम अवसर होता है और मानव की मृत्यु का कोई निश्चित्त समय नहीं होता है । अतः योग्य समझ, विवेक–बुद्धि होने के बाद मानव कभी भी धर्म का आचरण और स न्यास–स यम स्वीकार कर सकता है । योग्य समझ भी व्यक्ति के पूर्व भव के स चित कर्मों के अनुसार होती है । किसी को गर्भ में भी योग्य समझ होती है, किसी को ४-५ वर्ष की उम्र में तथा किसी को ८-९ वर्ष की उम्र में योग्य समझ हो सकती है । फिर भी बहुलता को ध्यान में रखते हुए जैनागमों में गर्भकाल सहित **नव वर्ष** एव उससे अधिक वय वाले को धर्म के आचरण तथा स न्यास ग्रहण के योग्य कहा है । यह एक **मर्यादा रूप, व्यवस्था रूप** विधान है । कदाचित् कोई इस से पहले भी योग्य हो सकता है (वज्रस्वामी-एव ताकुमार) और कोई अधिक उम्र तक भी योग्य समझ से व चित रह जाता है । इसलिये यहाँ शास्त्र में एका त आग्रह नहीं

दर्शाते हुए अनेका तिक कथन किया गया है कि– तीनों अवस्था में अर्थात् बचपन, जवानी और बुढापे में यों कभी भी भावना और योग्यता हो तो व्यक्ति धर्माचरण यावत् स न्यास-दीक्षा अ गीकार कर सकता है तथा उसे केवलज्ञान तक भी प्राप्त हो सकता है । यहाँ तीनों अवस्थाओं को तीन **याम** कहा गया है । बचपन अवस्था १६ वर्ष तक, १७ वर्ष से ४० वर्ष तक युवावस्था और उसके बाद प्रौढ एव वृद्ध अवस्था है ।

दूसरे प्रकार से तीन वय कही है– प्रथम, मध्यम और पश्चिम। इसमें ३० वर्ष तक प्रथम, ६० वर्ष तक मध्यम और आगे ९०-१०० वर्ष तक पश्चिम वय समझना । **वय** में स पूर्ण उम्र के तीन विभाग कहे हक्त और **जामा** शब्द से जीवन की तीन अवस्थाएँ कही गई है । सार यह है कि मानव जीवन की किसी भी अवस्था में (बाल्य, युवा आदि) और किसी भी वय(प्रथम,मध्यम,पश्चिम) में धर्माचरण एव दीक्षा अ गीकार की जा सकती है, क्यों कि– प्रत्येक मानव की मृत्यु अनिश्चित्त है और योग्य समझ पूर्वभव के स चित कर्म अनुसार होती है । तथापि व्यवस्था की दृष्टि से ९ वर्ष के बाद योग्यता हो तो किसी को भी दीक्षा दी जा सकती है । अ त में १ दिन या एक घडी भी उम्र बाकी हो और व्यक्ति की योग्यता हिम्मत हो तो उसे जैन दीक्षा दी जा सकती है । इसमें आगम-शास्त्रों से कोई विरोध नहीं आता है।

प्रतिप्रश्न– ९ वर्ष में दीक्षा देने की बात गले उतरने जैसी नहीं है अतः १८ वर्ष पहले किसी को दीक्षा नहीं देने का नियम होना चाहिये। उसके पहले कच्ची उम्र में लेने से बाद में स यम-ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकने से समाज में बहुत निंदा और टीका–टीपणी होती है, तो उचित क्या है ?

समाधान– अपनी छद्मस्थ बुद्धि से ऐसा एका त मान लेना उचित नहीं है तथा ऐसा मानने में सर्वज्ञों के विधान की अवहेलना आशातना भी होती है । वास्तव में छद्मस्थ साधक किसी के भी वर्तमान गुणों से उसकी योग्यता का परिक्षण कर सकते हक्त और परस्पर परामर्श करके निर्णय कर सकते हक्त । भविष्य में कौन दीक्षा छोडेगा; गुढ को छोडेगा, ब्रह्मचर्य नहीं पालन कर सकेगा इत्यादि कल्पना और ठेकेदारी किसी के हाथ की बात नहीं है । चौथे आरे में भी गोशालक, जमाली, वेश्या

को स्वीकारने वाले एव अनेक निह्नव आदि बनते हक्त । स्वय भगवान महावीर के द्वारा दीक्षा दिए हुए मेघकुमार सरीखे दीक्षा के पहले ही दिन में वापिस घर जाने का सोच सकते हक्त 'उनके वैराग्य की कसौटी नहीं हुई थी', ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। पार्श्वनाथ भगवान की सेकडों साध्वियाँ स यम ग्रहण और पालन के बाद गुढणी से अलग होकर रहने लगी थी ।

अत: बाल वय की दीक्षा पर ही आक्षेप लगाकर अनेक अनिष्ट की कल्पना करना एका तिक सोच है । भगवान का मार्ग अनेका तिक दृष्टिकोण युक्त होता हक्त । वर्तमान में भी हम ध्यान देवेंगे तो अनुभव होगा कि अनेक प्रभावक आचार्य आदि जिनशासन के सितारे जैसे महान साधक ऐसे हुए हक्त और वर्तमान में हैं कि जो ९-१०-१२-१५ वर्ष की वय में दीक्षा लेकर भी बहुमुखी प्रतिभा से स पन्न होकर वर्षों की स यम पर्याय से जिनशासन की प्रभावना कर रहे हक्त । दूसरी ओर देखेंगे तो १८ से ६० वर्ष में दीक्षा लेने वाले भी कोई वापिस घर चले जाय, ऐसे भी उदाहरण देखने को मिल सकते हक्त। अत: अनेका तिक दृष्टिकोण युक्त सर्वज्ञानी तीर्थंकरों की और उनके आगमों की आज्ञा या विधान को सर्वोपरी महत्त्व देना चाहिये । फिर भी विवेक सावधानी रखने के लिये किसी को कोई मनाई नहीं है । तथापि अपनी सोच को ही सर्वोपरी समजकर सर्वज्ञों के, आगमों के विधान को अयथार्थ ठहराने की चेष्टा किसी को भी नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न-४ : स सार के सब सुखों का अनुभव करने के बाद खुद के सच्चे वैराग्य से दीक्षा लेना श्रेष्ठ होता है, किसी के पीछे या बात-बात में दीक्षा ले ले वह अच्छा नहीं है, क्या ऐसा मानना ठीक हे ?

उत्तर– प्रस्तुत उद्देशक में चार सूत्रों में १२ प्रकार से प्रव्रज्या लेने वालों का कथन किया गया है । जिसका तात्पर्य यह है कि दीक्षा ग्रहण करने में कई प्रकार के निमित्त बन सकते हक्त । गौतम स्वामी आदि गणधरों की प्रतिज्ञा थी कि मेरे प्रश्न का समाधान होगा तो मक्त दीक्षा ले लू गा । धन्ना अणगार पत्नी के एक वचन से दीक्षित बन गये थे और उसी भव में मोक्ष गये । शालिभद्र ने **अपने उपर नाथ है,** ऐसा निमित्त पाकर दीक्षा का विचार किया । कोई घेवर खाने के लिये भी दीक्षा लेकर कल्याण कर लेते हक्त । जम्बूस्वामी के माता पिता वगेरे पुत्र के पीछे

दीक्षित हुए थे । इसलिये निमित्त कोई भी मिले वह कोई स यम का साधक बाधक नहीं हो सकता है । वास्तव में महत्त्व तो दीक्षा लेने के बाद सम्यग् ज्ञान और श्रद्धान के साथ स यम-तप के यथार्थ पालन का और आराधना करने का है । आज भी एक माता-पिता जिन्हें प्रतिक्रमण भी नहीं आता है ६५ वर्ष के करीब उम्र है फिर भी लडके लडकियों के दीक्षा लेने के निमित्त से दीक्षित हो जाते हक्त, कुछ भी ज्ञान नहीं चढता हो तो भी । फिर भी सच्चे स स्कार और सुस गत से महान स यम तप के साधक बनकर दृढता से अनेक दिन के स लेखना स थारे के साथ सावधानी और स्वस्थता पूर्वक आराधना कर लेते हक्त,ऐसे उदाहरण भी देखने को मिलते हक्त।

इसी कारण से यहाँ के चार सूत्रों में तीन-तीन के बोल के साथ १२ प्रकार से दीक्षित होने वालों की प्रव्रज्या का कथन है– (१) इह-लौकिक अच्छे भोजन आदि की इच्छा से (२) दैविक सुखों की इच्छा से (३) उभय स कल्प से (४) गुढ या आचार्य बनू गा इस अभिलाषा से (५) परिवार वाले सुखी बन जायेंगे या उन्हें सुखी कर दू गा, ऐसे विचारों से (६) तथा उभय विकल्प से (७) देव द्वारा कष्ट देकर दीक्षा दिलाने से (८) किसी के द्वारा अपहरण करके दीक्षा दिलाने से (९) किसी के द्वारा वादे में, शर्त में बा धकर दीक्षा दिलाने से । (१०) गुढ सेवा के लिये दीक्षा लेने के स कल्प से (११) गुढ-वडील के वचन स्वीकार करने से (१२) कोई स केत निश्चित्त करके कि अमुक दीक्षा लेगा तो मक्त भी लू गा; इत्यादि किसी भी स योग से प्रव्रज्या ग्रहण का स योग बनने के बाद जो ज्ञान, समझ, श्रद्धापूर्वक स यम-तप का यथार्थ पालन करता है उसका प्रव्रज्या लेना सफल है। उपरोक्त प्रव्रज्या के प्रस गों में किसी को खराब और किसी को श्रेष्ठ ऐसा कोई विभाजन सूत्रकार ने नहीं किया है । अत: तात्पर्य से प्रव्रज्या का शुद्ध आराधन करने वाला श्रेष्ठ होता है और वह आत्मकल्याण साध लेता है ।

प्रश्न-५ : यहाँ पर दिशाएँ कितनी कही है ? उनमें जीवों की गति आदि के कथन में क्या विशेषता है ?

उत्तर– तीन की स ख्या का प्रकरण होने से यहाँ दिशाएँ ३ कही है– (१) ऊँची (२) नीची (३) तिरछी दिशा । जीव की गति आगति, आहार, वृद्धि, समुद्घात, व्युत्क्रा ति आदि तीनों दिशाओं में होते हक्त ।

जीवाभिगम, अजीवाभिगम आदि भी जीव को तीनों दिशाओं से होते हक्त । समुच्चय जीव के समान तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य में भी गति-गमन आदि स पूर्ण कथन करना चाहिये ।

शेष एकेन्द्रिय विकलेंद्रिय जीव लोकनिष्कू टो की अपेक्षा लोका त में हो सकते तब उनमें उपरोक्त तीनों दिशाओं में गति व्युत्क्रा ति समुद्घात आदि नहीं होते, एक या दो दिशा घट जाने से इस तीसरे स्थान में उनका कथन नहीं है । तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य तिरछा लोक के मध्य में ही होते हक्त, वे लोका त में नहीं होते हक्त। देव-देवी कोई कभी वैक्रिय शक्ति से लोका त में पहुँच सकते हक्त । तब लोका त वाली कोई भी दिशा में अलोक होने से उस दिशा से पुद्गल ग्रहण और उस दिशा में गमन, समुद्घात आदि स भव नहीं होते हक्त । अत: देवों को भी तीन दिशा के कथन में नहीं लिया गया है । नारकी में ऊँची दिशा शक्य नहीं होने से उन्हें भी तीन दिशा के कथन में नहीं लिया गया है।

प्रश्न-६ : स सार के प्राणियों को मुख्यतया किस बात का भय रहता है ?

उत्तर- स क्षेप में समस्त प्राणियों को दु:ख का भय लगा रहता है । दु:ख सबको अप्रिय होता है । सभी प्राणी दु:ख से दूर रहना चाहते हक्त। दु:ख शारीरिक, मानसिक आदि अनेक तरह के होते हक्त, उन दु:खों का मूल कारण **कर्म** है । जिन्हें जीव स्वय प्रमाद से उत्पन्न करता है और अप्रमाद के आचरण से जीव दु:ख रूप कर्मों का वेदन करके क्षय कर देता है । यहाँ प्रमाद में १८ पापस्थान का आचरण एव आश्रव स्थानों का ग्रहण किया गया है और अप्रमाद में तप-स यम आदि का ग्रहण किया गया है ।

इस विषय में अन्यतीर्थिक ऐसा मानते हक्त कि दु:ख अकृत और अहेतुक होता है । जब कि भगवान का कथन है कि सुख-दु:ख रूप कोई भी कार्य अहेतुक और अकारण नहीं होता है, वह सहेतुक और सकारण होता है । अकारण अहेतुक बताना मिथ्या है । ऐसा मानने वाले मिथ्यादृष्टि हक्त । आत्मा स्वय कृत, उपार्जित और क्रियमान कर्मों की कर्ता है और सुख-दु:ख रूप फल की भोक्ता भी आत्मा है । स सार के समस्त जीव अपने-अपने किये हुए कर्मों का फल भोगते हक्त।

प्रश्न-७ : इस उद्देशक में और क्या-क्या निरूपण है ?

उत्तर- इस उद्देशक में अन्य अनेक विषय इस प्रकार स ग्रहित है- (१)

लोक ९ प्रकार के कहे हक्त- नाम, स्थापना और द्रव्य लोक; ज्ञान, दर्शन, चारित्र लोक, ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक्लोक ।

(२) परिणाम, स कल्प-विकल्पों की अपेक्षा पुढषों के अनेक प्रकार (४६×९=४१४) कहे हक्त जिसमें वह गति आदि ४६ कार्य करके या न करके सुमन, दुर्मन या उभय रूप परिणाम करता है, फिर इन्हीं के तीन काल की अपेक्षा किया, करता, करेगा इत्यादि विकल्प करके तीन के जोडकों से ४१४ पुढष प्रकार कहे हक्त । उस ४६ में मूल गाथा में स्पष्ट नहीं होते हुए भी शब्द रूप रस ग ध स्पर्श का सेवन करके और न करके ऐसे दो भेद करने होते हक्त तथा अ त में गर्हा और प्रश सा के भी करने और न करने ऐसे दो-दो भेद करने से कुल ४६ बनते हक्त ।

(३) व्रत-मर्यादा एव शील-गुण रहित प्रत्याख्यान पौषध आदि से रहित व्यक्ति का यह भव, पर भव और भवोभव बिगडते हक्त । वह हीन-हीनतर अवस्थाओं को प्राप्त करता है । इसके विपरीत जो अपने जीवन को व्रत-मर्यादा, शीलगुण आदि से स पन्न बनाता है उसका यह भव, परभव और भवोभव सुधर जाता है ।वह उच्च-उच्चत्तर अवस्थाओं को प्राप्त करता है ।

(४) अपनी पृथ्वी ठोस पानी पर रही हुई है । वह पानी सघन वायु पर रहा हुआ है और वह वायु आकाश के आधार पर रही हुई है । यह अनादि लोक स्थिति स्वाभाविक है । नय की अपेक्षा नरकावास की स स्थिति इस प्रकार है- नैगम, स ग्रह, व्यवहार नय की अपेक्षा नरकावास पृथ्वी पर रहे हुए हक्त । ऋजु सूत्र नय की अपेक्षा नरकावास आकाश में रहे हुए हक्त । तीन शब्दादि नयों की अपेक्षा नरकावास आत्म प्रतिष्ठित-आत्म स्वरूप में रहे हुए हक्त । **उद्देशक-३**॥ सूक्ष्म-तात्त्विक दृष्टि से सभी वस्तुएँ अपने रूप में आत्म- प्रतिष्ठित होती है । स्थूल दृष्टि से सभी पदार्थ आकाश में अवगाहित होते हक्त और व्यवहार से सभी वस्तुएँ पृथ्वी आदि पर स्थित होती है ।

(५) परमाणु पुद्गल, एक समय और एक आकाशप्रदेश इन तीन का छेदन, भेदन, विभाग नहीं होता है; ये अप्रदेशी हक्त, अमध्य हक्त और छद्मस्थों के चक्षु, बुद्धि या तर्क से अग्राह्य हक्त ।इसके अतिरिक्त बोधि, बुद्ध, मोह, निर्ग्रंथ भेद, शैक्षभूमि, स्थविर, स सारी जीवों के भेद, सर्व जीवों के भेद, त्रस-स्थावर के भेद वगेरे अन्य आगमों में वर्णित है

तथापि यहाँ तीन स ख्या में समाविष्ट करके कहे गये हक्त । उनकी विचारणा उन-उन स्थलों में की जायेगी ।

स्थान-३ : उद्देशक-३

प्रश्न-१ : इस उद्देशक में मुख्य किन-किन विषयों का कथन है?

उत्तर- तीन की स ख्या से स ब धित अनेक विषयों का इस उद्देशक में स कलन है, यथा- आलोचना, सूत्रधारण, वस्त्र-पात्र, आत्मरक्षक, वृष्टि, पदवी, विस भोग, देवों का आना या नहीं आना, देवों की आका क्षा, देवों का दु:ख, विमान, तपस्या में धोवणपानी, ऊणोदरी, लब्धियों की प्राप्ति, राजनीति, अविनय, सत्स ग आदि विषयों का निरूपण है ।

प्रश्न-२ : आत्मदोषों की आलोचना नहीं करने या करने के पीछे व्यक्तिओं के क्या हेतु होते हक्त ?

उत्तर- कोई भी व्रत धारण करने वाला प्राय: यह जानता ही है कि व्रत-नियम का यथार्थ पालन करना होता है और यदि कोई भी कारण से व्रत में दोष लग जाय तो उसका आलोचना प्रायश्चित्त करना होता है । इस प्रकार जानते हुए भी कई साधक दोष की आलोचना शुद्धि नहीं करते हक्त, उनके कारण इस प्रकार है- (१) मक्तने दोष लगाया है, लगाता हूँ और बाद में भी दोष तो लगेगा ही; फिर क्या आलोचना करना ? (२) मेरी अपकीर्ति अवर्णवाद और अविनय होगा, इस भय की कल्पना से व्यक्ति आलोचना शुद्धि नहीं करता । (३) कीर्ति-यश और पूजा-सत्कार जो है वह घट जायेगा, नष्ट हो जायेगा, इस कल्पना से व्यक्ति आलोचना शुद्धि नहीं करता। वास्तव में इस प्रकार की मानसिक वृत्ति और कल्पना खुद की असरलता और चारित्र मोहोदय का परिणाम है ।

कई साधक दोषों की आलोचना शुद्धि कर लेते हक्त, उनकी मनोदशा इस प्रकार ज्ञान भावित होती है कि- (१) आलोचना, शुद्धि नहीं करने वाले कपटी साधकों का यहलोक परलोक और भवोभव गर्हित-निंदित होतेहक्त अर्थात् बिगड जातेहक्त और (२) दोषों की आलोचना शुद्धि करने वालों का भवोभव सुधर जाता है । (३) आलोचना करने वाले को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्राप्ति होती है और रत्नत्रय की शुद्ध

आराधना होती है । ऐसे ज्ञान भावित स कल्पों से, पवित्र मनोमानस से साधक सदा सहर्ष दोषों की आलोचना शुद्धि कर लेता है । सूत्र में दोष सेवन करने वाले के लिये **मायी** शब्दप्रयोग किया गया है । फिर भी आलोचना शुद्धि कर लेने वाला भगवती सूत्र श.३, उद्दे.४,५ अनुसार अमायी कहलाता है ।

प्रश्न-३ : श्रमणों को आगम का क ठस्थ ज्ञान कैसा होना चाहिये ?

उत्तर- श्रमण-श्रमणी अपने-अपने क्षयोपशम अनुसार तथा गुढ आज्ञा अनुसार आगमश्रुत के धारक बनते हक्त । कई मूलपाठ के धारक सूत्रधर होते हक्त, कोई केवल अर्थधर होते हक्त और कोई सूत्र, अर्थ और उभय के धारक होते हक्त । सूत्र भगवान की वाणी-गिरा है, गिरा को धारण करने वाला **गीती** कहलाता है, अर्थ को धारण करने वाला **अर्थी** कहलाता है और उभय को धारण करने वाला गीत+अर्थ=**गीतार्थ** कहलाता है । गीतार्थ और बहुश्रुत ये दोनों एक ही अर्थ के बोधक है । वास्तव में उत्सर्ग मार्ग से सूत्र-अर्थ दोनों को धारण करने वाला गीतार्थ-बहुश्रुत ही आगमोक्त सभी पदवियों के धारण करने के योग्य बनता है, कहलाता है। उसके अभाव में निढपाय-परिस्थितिवश अर्थ-धारक भी पदवियाँ ग्रहण कर सकते हक्त ।

प्रश्न-४ : कर्मब ध या स यमदोष से आत्मसुरक्षा के क्या उपाय है ?

उत्तर- (१) समूह में रहने वाले सहवर्ती साधु स यम का यथार्थ पालन न करे या परस्पर क्लेश कदाग्रह करते हों तो उन्हें विवेक पूर्वक धर्मबोध देकर सावधान करना, वातावरण को शा त, पवित्र रखना (२) गलती करने वाले समझने, मानने के स्वभाव या स्थिति में न हों या उन्हें समझाने की अपनी क्षमता न हो तो मौनभाव पूर्वक स्वय की साधना में अत्यधिक लीन-एकाग्र बनने का प्रयत्न करना (३) खुद की शा ति एकाग्रता कायम रख सकने के योग्य प्रकृति या अभ्यास न हो तो वहाँ से अपने को अलग कर लेना अर्थात् अन्यत्र चले जाना, अन्य के साथ विहार करना या एका त-एकत्व का सेवन करना; ये क्रमिक आत्मसुरक्षा के, आत्मा को कर्मब ध से और स यम को स कल्प-विकल्पों से सुरक्षित रखने के उपाय हक्त ।

प्रश्न-५ : सहवर्ती श्रमणों के साथ आहार स ब ध विच्छेद करने के अर्थात् स भोग का विस भोग करने के मुख्य कारण क्या हो सकते हक्त ?

उत्तर– (१) किसी को महाव्रत आदि में बडे दोष लगाते हुए स्वय देख लेने पर या (२) प्रमाणिक जानकारी मिलने पर यदि वह दोषी अपने दोष को छिपाता है, शुद्ध होने की वृत्ति नहीं रखता है तो उसके साथ आहार स ब ध विच्छेद किया जा सकता है । (३) यदि कोई शुद्धि के लिये प्रेरणा करने पर या अन्य कोई कारण से चौथी बार झूठ-कपट का सेवन करता है तो उसके साथ भी स ब ध विच्छेद किया जा सकता है और ऐसा करने वाला जिनाज्ञा का अतिक्रमण करने वाला नहीं गिना जाता है ।

प्रश्न–६ : अल्पवृष्टि या अधिक वृष्टि के क्या क्या कारण हो सकते हक्त ?

उत्तर– (१) स्वाभाविक रूप से जिस क्षेत्र में या प्रदेश में उदकयोनिक जीवों की और पुद्‌गलों की उत्पत्ति, चयोपचय वगेरे अधिक मात्रा में होवे तो अधिक वृष्टि होती है । (२) भवनपति, व्य तर या वैमानिक देव अन्यत्र रहे उदक परिणत वर्षा के योग्य पुद्‌गलों को वहाँ से स हरित करके ले आवे (३) वर्षा वरसने योग्य उदक परिणत बादलों को हवा नहीं बिखेरे तो अधिक वृष्टि-महावृष्टि होती है ।

इसके विपरीत (१) स्वाभाविक रूप से जिस क्षेत्र या प्रदेश में उदकयोनिक जीव और पुद्‌गलों की उत्पत्ति, चय-उपचय आदि न होवे (२) देवता उदकपरिणत वर्षा के योग्य पुद्‌गलों को अन्य देश में स हरण कर देवे (३) वरसने योग्य बादल रूप में परिणत पुद्‌गलों को हवा विखेर देवे तो अल्पवृष्टि या अनावृष्टि होती है । तीन की स ख्या का कथन होने से वृष्टि स ब धी ३–३ कारण कहे हक्त ।

प्रश्न–७ : देवता मनुष्य लोक में किन कारणों से आते हक्त ? और किन कारणों से नहीं आते हक्त ?

उत्तर– देवों की मनुष्य लोक में आने की इच्छा होते हुए भी वे तीन कारणों से नहीं आ सकते, यथा– (१) वे दिव्य सुखों मे गृद्ध आसक्त हो जाते हक्त और उन्हें मानुषिक आकर्षण नहीं रहता है जिससे वे यहाँ आने का स कल्प या निर्णय नहीं करते हक्त । (२) उन देवों का वहाँ की आसक्ति के कारण यहाँ के लोगों का प्रेम स ब ध नष्ट हो कर दिव्य प्रेम में स क्रा त हो जाता है । (३) दिव्य सुखों में लीन कोई देव **अभी जाता हूँ, थोडी देर से जाता हूँ** यों स कल्प करते- करते भी यहाँ के लोगों का आयुष्य पूर्ण हो जाता है और उनका आना नहीं हो पाता है ।

तीन कारणों से देवों का मनुष्य लोक में आना हो सकता है– (१) दिव्य सुखों में अनासक्त कोई देव को इस प्रकार विचार होता है कि मनुष्य लोक में मेरे उपकारी आचार्य आदि गुढ भगव त हक्त जिनके प्रभाव से मक्तने यह रिद्धि प्राप्त करी है तो मक्त जाऊँ और उनको व दन नमस्कार कढँ, उनकी पर्युपासना कढँ । (२) किसी अनासक्त देव को ऐसा स केत होता है कि मनुष्य लोक में विशिष्ट ज्ञानी, तपस्वी एव दुष्कर साधना करने वाले महर्षि हक्त, तो मक्त जाऊँ और उन गुढ भगव तो का व दन नमस्कार करके उनकी पर्युपासना कढँ । (३) किसी देव को ऐसे विचार होते हक्त कि मनुष्य लोक में मेरे माता- पिता, भाई, भगिनी, भार्या, पुत्र आदि हक्त तो मक्त जाऊँ और उन्हें अपनी दिव्य ऋद्धि बताऊँ । इस प्रकार मनुष्य लोक के आकर्षण से कोई देव यहाँ आ सकते हक्त ।

इसके अतिरिक्त चोथे स्थान में एक-एक कारण अधिक है यथा– (१) मनुष्य लोक स ब धी ग ध ४००-५०० योजन ऊँचे तक फैली हुई रहती है । उस ग ध के कारण भी देवता नहीं आते हक्त। (२) अपने पूर्व भव के मित्र, गुढ, शिष्य आदि के साथ प्रतिज्ञाबद्ध हो तो उसे प्रतिबोध देने के लिये देव आते हक्त । इसी के उपलक्षण से किसी के द्वारा अत्यधिक स्मरण, जाप-तप युक्त भक्ति करने पर देव का अ गस्फुरण होने से भी वे मनुष्य लोक में आते हक्त और मित्र स्नेही या भक्तिवान का उद्देश्य पूर्ण करके चले जाते हक्त । यहाँ तीन की स ख्या के कारण तीन तीन कारण कहे है, चौथे स्थान में इन तीन सहित एक-एक अधिक कहा है अतः कुल चार-चार कारण आने-नहीं आने के यहाँ दर्शाये गये हक्त ।

प्रश्न–८ : देवों को चाहना-खेद-मरण-उद्वेग क्या क्या होते हक्त?

उत्तर– कई देवों को यह **चाहना** होती है कि मुझे मनुष्य भव, आर्यक्षेत्र और उत्तम कुल की प्राप्ति होवे, जिससे मक्त यथासमय सुस गति से धर्म बोध पाकर आत्म उत्थान कर सकूँ ।

(१) देवों को यह **खेद–पश्चात्ताप** होता है कि मैने पूर्वभव में शक्ति होने पर भी एव क्षेत्र, स योग और आचार्य आदि का सहवास प्राप्त होने पर भी विशाल श्रुतज्ञान हासिल नहीं किया । (२) मक्तने सा सारिक सुख-भोगों की आसक्ति में समय गुमाकर दीर्घ स यमपर्याय का पालन नहीं किया । (३) मक्तने शाता–सुख एव इन्द्रिय विषयों में गृद्ध होकर

ग्रहण किये स यम का शुद्ध यथार्थ पालन नहीं किया । देवता अपने अवधिज्ञान से पूर्वभव को जानकर अपनी धर्मोत्थान नहीं करने की भूलों का खेद-पश्चात्ताप करते हक्त ।

जब देवों को मृत्यु का समय नजीक (६ महीना करीब)आता है तब उन्हें प्रत्यक्ष समझने के कुछ स केत होते हक्त, यथा- (१) उनके रहने के विमान और पहनने के आभूषणों की कान्ति-चमक कुछ फीकी दिखने लग जाती है ।(२) उनका कल्पवृक्ष म्लान सा नजर आता है। (३) खुद के शरीर की कान्ति भी निस्तेज दिखने लग जाती है जिससे वे अवधि ज्ञान में उपयोग लगाने पर जान सकते हक्त कि मेरे देव भव का आयुष्य अब समाप्त होने वाला है ।

देवों को भी घृणा-उद्वेग और अनमना उदासी जैसा भी हो जाता है, उसके कारण इस प्रकार हक्त- (१) अहो ! मुझे मिली यह देव ऋद्धि छोडकर मरकर जाना पडेगा, यह सब चिरपरिचित अनुभूत सुख-सामग्री छूट जायेगी; ऐसी कल्पना से उसे अत्य त मनोवेदना होती है ।(२) अहो ! मुझे मनुष्य-तिर्यंच गति में जाकर स्त्री-पुढष के शुक्र-शोणित मिश्रित पुद्गलों का आहार ग्रहण करना पडेगा ।(३) अहो ! मुझे अशुचि के स्थान में गर्भाशय में कष्टमय गर्भावास करना पडेगा । इस प्रकार के ज्ञान से देव कुछ समय अत्य त शोक स तप्त बन जाते हक्त ।

देवों का अवधिज्ञान जन्म से मृत्युपर्यंत होता ही है, उससे वे उपयोग लगाने पर भूत-भविष्य को जान सकते हक्त और कभी अ गस्फुरण से अथवा पदार्थों की, शरीर की कान्ति में फर्क देखकर उस स केत से विचार में पडने से अवधिज्ञान में उपयोग लगाकर देखने का स्मरण हो जाता है । उपयोग लगाने पर वे अपने अवधिज्ञान की क्षमता अनुसार क्षेत्र और काल स ब धी विषयों को जान लेते हक्त और अवधिदर्शन से देख भी सकते हक्त ।

प्रश्न-९ : देवलोक और उनके विमान किस प्रकार के होते हक्त ?

उत्तर- जैसे हमारी पृथ्वी और हमारे नगर मकान ये सब स्वभाव से ही किसी आधार से रहे हुए हक्त वैसे ही देवलोक और देवों के विमान भी किसी आधार से ही रहे हुए हक्त । जैसे हमारी यह पृथ्वी, पानी, वायु और आकाश के आधार से रही हुई है वैसे ही पहला-दूसरा देवलोक घनोदधि(ठोस जल) के आधार से रहे हुए हक्त । तीसरा, चौथा, पाँचवाँ

देवलोक घनवात(ठोस वायु) के आधार से रहे हुए हक्त ।छट्ठा, सातवाँ, आठवाँ देवलोक घनोदधि-घनवात उभय प्रतिष्ठित हक्त ।आगे के सभी देवलोक आकाश प्रतिष्ठित हक्त । यह सभी लोक स स्थिति से स्वभाव से अनादि से इस प्रकार स्थित हक्त ।

देवलोक में देवों के विमान(नगर) तीन आकार के होते हक्त-(१) गोल (२) त्रिकोन (३) चौकोन। गोल विमानों में चारों ओर से गोलाकार परकोटा होता है और उसमें एक ही द्वार होता है । **त्रिकोण विमान में-** दो तरफ परकोटा और एक तरफ छोटी पाल-भींत होती है और तीनों दिशाओं में एक-एक यों कुल तीन द्वार होते हक्त । **चौकोन विमान में-** चारों तरफ छोटी पाल होती है और चारों दिशाओं में एक-एक कुल चार द्वार होते हक्त ।

देवों के तीन प्रकार के विमान होते हक्त- (१) स्थाई रहने योग्य नगर रूप विमान-भवन (२) तात्कालिक कहीं जाने के लिये वैक्रिय लब्धि से बनाये जाने वाले विमान (३) यान विमान- ये महान रिद्धि सिद्धि सहित आवागमन के लिये चर्मरत्न के समान स कोच विस्तार स्वभाव वाले स्थाई शाश्वत होते हक्त, वे मनुष्यों की सवारी गाडी के समान होते हक्त ।

प्रश्न-१० : क्या साधु को तपस्या में भी धोवण पानी लेना कल्पता है?

उत्तर- इस शास्त्र में यहाँ पर तथा कल्पसूत्र के आठवें अध्याय के मूलपाठ में स्पष्ट बताया गया है कि तपस्या में धोवणपानी लेना और पीना कल्पता है । इन दोनों शास्त्रों में कुल ९ प्रकार के धोवण पानी के नाम कहे गये हक्त । अत: कोई भी बहुमत से या पर परा के नाम से साधु को धोवण पानी लेना पापमय बताकर निषेध करे तो यह उनका मनमाना शास्त्र विपरीत बोलना-प्रढपणा करना होता है । यहाँ बताये गये ९ प्रकार के धोवण पानी इस प्रकार है- (१) आटे के बर्तन धोया हुआ पानी (२) उबाले हुए केर, मेथीदाणा, भाजी आदि का धोया हुआ पानी (३) चावल धोया हुआ पानी (४) तिल आदि को धोया हुआ पानी (५) दाल वगेरे धोया हुआ पानी (६) जौ, गेहूँ वगेरे धोया हुआ पानी (७) छाछ के उपर का पानी अर्थात् छाछ का आछ (८) गर्म पदार्थों को पानी में रखकर ठ डा किया हो वैसा पानी(सोवीरोदक) (९) राख, लवि ग आदि से अचित्त बनाया हुआ पानी(शुद्धोदक) ।

प्रस्तुत में उपवास में पीने के नाम से तीन, बेले में पीने के नाम से तीन और तेले में पीने के नाम से तीन धोवणपानी कहे हैक्त तथापि इन धोवणपानी का परस्पर विचार करने से यह सहज स्पष्ट होता है कि, तीन की स ख्या के कारण यह विभाजन युक्त कथन है । वास्तव में सभी प्रकार के शुद्ध–निर्दोष पानी तपस्या में या बिना तपस्या में साधु-साध्वियाँ ग्रहण कर सकते हक्त ।

ये ९ नाम भी उदाहरणार्थ कहे गये है, वास्तव में आचारा ग सूत्र, दशवैकालिक सूत्र कथित विविध प्रकार के धोवण पानी शुद्ध निर्दोष गवेषणा युक्त एव विवेकपूर्वक साधु ग्रहण कर सकते हक्त ।

सूत्र सिद्धा तो के विपरीत मनमाने प्रढपण करने का किसी को अधिकार नहीं होता है कि तु क्षेत्र-काल अनुसार जहाँ जब जैसी सुविधा स योग होवे तदनुसार साधु-साध्वी निर्दोष धोवण पानी या गर्म पानी शरीर की अनुकूलतानुसार ग्रहण कर सकते हक्त । दोष युक्त लेने पर शास्त्रानुसार उस-उस दोष का प्रायश्चित्त आता है । प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करने पर आराधना हो सकती है कि तु उस दोष का प्रायश्चित्त न करके उलटा वैसा लेने की प्रश सा या प्रढपणा करे तो स यम विराधना का कारण बनता है ।

प्रश्न–११ : साधु को उपकरण तो बहुत कम ही रखने होते हक्त तो फिर उसमें ऊणोदरी करना कैसे होता है ?

उत्तर– सामान्यत: साधु-साध्वी रूप श्रमणस घ में बाल-वृद्ध, सरोग-निरोग अनेक प्रकार से साधु-साध्वी होते हक्त । उन सबकी योग्यता को मद्देनजर रखकर उपकरणों की एक मध्यम सीमा शास्त्र में बताई गई है । उतने वस्त्र पात्र आदि सामान्यत: साधु-साध्वी रख सकते हक्त । अत: विशेष साधक तपस्या के लक्ष्य से अपने मर्यादित उन उपकरणों में से भी वस्त्र पात्र की स ख्या घटा कर ऊणोदरी तप कर सकते हक्त । कई साधु अपने पास में सेवा आदि उद्देश्य से उपकरण रखते हुए भी कम उपकरणों का उपयोग करके भी ऊणोदरी तप कर सकते हक्त । यथा– आगम धारणा पर परा अनुसार साधुको चद्दर-क बल कुल तीन रखना कल्पता है तो कोई अपनी क्षमता स जोकर एक ही चद्दर रखे और उसी से सर्दी-गर्मी सभी को सहन करे । इस तरह शरीर की सुविधा के उपकरणों में ऊणोदरी तप किया जा सकता है । स यम की

साधना के मुख्य उपकरण दो है– मुखवस्त्रिका और रजोहरण । उनकी ऊणोदरी या त्याग नहीं किया जा सकता । वस्त्र पात्र की ऊणोदरी करता हुआ साधक १ वस्त्र और १ पात्र भी रख सकता है और आगे बढकर अचेल और करपात्री भी बन सकता है । यह सब उपकरण ऊणोदरी तप कहलाता है । यहाँ पर यह भी बताया गया है कि कोई साधु ऐसा नियम करे कि मक्त नया वस्त्र ग्रहण नहीं कढँगा कि तु गृहस्थों के उपयोग में आये हुए वस्त्र निर्दोष मिलने पर ग्रहण कढँगा; तो यह भी वस्त्र-उपकरण स ब धी ऊणोदरी कही गई है । इस प्रकार साधु के लिये मुखवस्त्रिका और रजोहरण के सिवाय कोई भी उपकरण का त्याग या स कोच किया जाना स भव होता है । उनको रखने स ब धी कोई भी एका त आग्रह नहीं होता है कि 'अमुक कपडा या क बल साधु को रखनी ही होगी', क्यों कि साधु उपकरण स ब धी यथेच्छ ऊणोदरी करके शरीर से प्रतिकूलता सहन करके कर्म निर्जरा, तप कर सकते है, अचेल एव करपात्री भी बन सकते है ।

प्रश्न–१२ : तेजोलब्धि आदि लब्धियाँ कैसे प्राप्त होती है ?

उत्तर– स यम-तप का निष्काम पालन करने अर्थात् मात्र मोक्ष की साधना हेतु स यम के साथ विकट तप करने से स्वत: अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो जाती है । प्रस्तुत में तेजोलब्धि की प्राप्ति के तीन कारण बताये हक्त– (१) चौविहार त्याग युक्त विकट तपस्या करने से (२) ठँडी-गर्मी की आतापना लेने से (३) कष्ट-उपसर्ग आदि स कट की हर घडी में समताभाव, शा ति भावों में रमण करने से; तेजोलब्धि पैदा होती है । उपलक्षण से इस प्रकार तीनों आचरण के स्वाभाविक रूप से निर तर दीर्घ काल पर्यंत चलते रहने पर अनेक लब्धियाँ-सिद्धियाँ स्वत: उपलब्ध हो जाती है ।

कभी किसी को कोई लब्धि की प्राप्ति के स कल्प पूर्वक उसकी समस्त साधना–विधि का पालन करने से भी वे-वे लब्धियाँ प्राप्त हो सकती है । चाहे वह व्यक्ति स यमवान हो या अस यमी मिथ्यादृष्टि हो तो भी कई लब्धियाँ प्राप्त की जा सकती है । जैसे–गोशालक ने मिथ्यात्वी होते हुए भी तप जप आतापना विधि के पालन से ६ महीने में तेजोलब्धि प्राप्त करी थी । लब्धियाँ २८ होती है **उनका वर्णन अन्यत्र किया जायेगा ।** तेजोलब्धि से व्यक्ति स कल्पित क्षेत्र में

इच्छित जीव-अजीव आदि समस्त पदार्थों को जलाकर भस्म कर सकता है । यथा– गोशालक द्वारा दो मुनि का भस्म किया जाना और सुम गल अणगार के द्वारा विमलवाहन राजा को रथ, घोडे, सारथी सहित भस्म किया जाना । ***भगवती सूत्र शतक–१५॥***

प्रश्न–१३ : व्यवसाय शब्द के द्वारा यहाँ क्या आशय प्रकट किया है?

उत्तर– व्यवसाय शब्द के विविध अर्थों की अपेक्षा तीन-तीन की स ख्या में निरूपण है– व्यवसाय के अर्थ–व्यवहार, अनुष्ठान, प्रवृत्ति, प्रमाण, निर्णय, आदेश-निर्देश-वचन इत्यादि । यथा– (१) धार्मिक, अधार्मिक एव उभय व्यवहार (२) प्रत्यक्ष ज्ञान निमित्तक, इन्द्रिय निमित्तक और अनुमान निमित्तक निर्णय–व्यवहार (३) इहलोकिक पारलोकिक एव उभयलोकिक दृष्टि से व्यवहार निर्णय (४) लोकिक पर परा, वैदिक एव स्वसिद्धा त व्यवहार (५) लोकिक में– अर्थ, धर्म एव काम स ब धी व्यवहार । वैदिक में– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद स ब धी विधान । स्वसिद्धा तिक में– ज्ञान, दर्शन, चारित्र स ब धी आचार व्यवहार । इतने प्रकार से प्रवर्तन-व्यवहार-निर्णय आदि किये जाते हक्त । यहाँ इन्हें तीन-तीन की स ख्या से व्यवसाय-व्यवहार अर्थ में कहा गया है ।

प्रश्न–१४ : अक्रिया, अविनय तथा अज्ञान मिथ्यात्व के विषय में यहाँ क्या समझाया गया है ?

उत्तर– जिनेश्वरों के वचनों से या सिद्धा तो से विपरीत समझ को मिथ्यात्व कहा जाता है । मोक्ष साधना से विपरीत या बाह्य प्रवृत्ति वह **मिथ्या** प्रवृत्ति है । पच्चीस मिथ्यात्व में प्रश्नोक्त तीनों मिथ्यात्व का स कलन किया जाता है । अक्रिया–कुत्सित क्रिया, अज्ञान–कुत्सित ज्ञान । अथवा क्रिया, ज्ञान और विनय का निषेध–अस्वीकार, ऐसा अर्थ किया जा सकता है । (१) मन,वचन,काया का मोक्ष के अयोग्य आचरण, यह **प्रयोग अक्रिया** मिथ्यात्व है । (२) योग प्रवृत्ति से कर्मों का आदान, यह **समुदान अक्रिया** मिथ्यात्व है । (३) तीन अज्ञान के द्वारा किया जाने वाला प्रवर्तन, वह **अज्ञान अक्रिया** मिथ्यात्व है । यह अक्रिया मिथ्यात्व का विस्तृत कथन है ।

अविनय मिथ्यात्व– स घ-समूह-सामुहिकता–गुढकुलवास की अपेक्षा अविनय प्रवृत्ति को यहाँ अविनय मिथ्यात्व कहा गया है। (१) समूह–गुढसा निध्य में रहते हुए एक स्थान या क्षेत्र से चल देना, यह

देशत्याग अविनय प्रवृत्ति रूप मिथ्यात्व है । (२) समूह–स घ का पूर्ण त्याग कर देना, यह निराल बनता अविनय प्रवृत्तिरूप मिथ्यात्व है । (३) स घ से अलग होने के बाद विविध प्रकार से रागद्वेष फैलाना, निंदा करना, यह तीसरे प्रकार का अविनय प्रवृत्तिरूप मिथ्यात्व है ।

अज्ञान मिथ्यात्व– (१) जानने योग्य वस्तु के एक अ श को नहीं जानना । (२) सर्वथा उस पदार्थ को ही नहीं जानना (३) उस पदार्थ की विभिन्न पर्यायों को नहीं जानना । यह ज्ञान के अभाव रूप या **अस्वीकार रूप** अज्ञान मिथ्यात्व है ।

स क्षेप में– (१) क्रिया का अस्वीकार तथा मोक्ष विपरीत क्रिया (२) विनय का अस्वीकार एव जिनशासन या गुढकुल स ब धी विनय विपरीत आचरण (३) ज्ञान का अस्वीकार एव अज्ञान अवस्था; ये तीनों क्रमशः अक्रिया, अविनय एव अज्ञान मिथ्यात्व स्वरूप हक्त ।

प्रश्न–१५ : अन्य भी किन-किन विषयों का स क्षिप्त सूचन है ?

उत्तर– इस उद्देशक में तीन की स ख्या में अन्य अनेक विषय इस प्रकार है– (१) साधु-साध्वी को ऊनी, सूती और सण(बारदान) के वस्त्र लेना कल्पता है । साधु-साध्वी को वस्त्र रखने के तीन उद्देश्य हक्त– १. स्वय की लज्जा निवारणार्थ २. दूसरों की घृणा–नफरत निवारणार्थ ३. शरीर की गर्मी सर्दी आदि से सुरक्षार्थ अर्थात् परीषह निवारणार्थ। साधु-साध्वी को लकडी, तु बा और मिट्टी ये तीन तरह के पात्र रखना कल्पता है । आचारा ग सूत्र में ६ प्रकार के वस्त्र और बृहत्कल्प सूत्र में पाँच प्रकार के वस्त्र रखना कहा है । यहाँ तीन की स ख्या की अपेक्षा अन्य का समावेश इन्हीं में कर दिया गया है तथा इन तीन के मिलने पर इन्हें प्राथमिकता देना यह भी फलित होता है । पात्र के लिये अनेक शास्त्रों में तीन तरह के पात्र ही कहे हक्त । किसी भी विकल्प से चौथे पात्र कहीं भी नहीं कहे हक्त । (२) समूह में रहने वाले श्रमण को तीन की **अनुज्ञा–समनुज्ञा** अर्थात् नैतृत्व में, आज्ञा में रहना होता है– आचार्य, उपाध्याय और गणि–स घ में सि घाडा प्रमुख या कुछ साधुसमुदाय की प्रमुखता करके विचरने वाला । इस अपेक्षा से गणि, गणधारक, सि घाडा पति, गणधर ये एक ही तात्पर्यार्थ वाले शब्द हक्त। उपरोक्त तीनों की विशिष्ट प्रयोजनार्थ अल्पकालीन अनुज्ञा–नेतृत्व स्वीकारना, **उपस पदा** कहलाता है । जिसे प्रयोजन

समाप्त होने पर छोडा जा सकता है; उस छोडने को **विप्पज्जहणा** कहते हक्त । विप्पज्जहणा भी तीन की कही गई है । यहाँ तीन स ख्या का प्रकरण होने से और तीन पदवी ही गच्छ में आवश्यक और मुख्य होने से तीन का कथन है । (३) अपेक्षा से वचन और मन के तीन+तीन = ६-६ प्रकार कहे हक्त- १.पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को कहने वाला **तद्वचन** । २. यथार्थ स्वरूप न कहने वाला **नोतद्वचन** । ३. विवक्षित वस्तु में अन्य वस्तु का कथन करना **तदन्यवचन** ४. विवक्षित वस्तु का तथा अन्य वस्तु का कथन भी नहीं करना-लक्ष्यहीन उटपटा ग कथन **नोतदन्यवचन** है। ५. वचन का सर्वथा अभाव भी नहीं हो वह **नोअवचन** है-अक्षर उच्चारण के बिना मात्र सा केतिक उच्चारण । ६. वचन निवृत्ति-**अवचन** । इसी प्रकार ६ मन के विकल्प कहे हक्त ।

(४) तीन की स ख्या को आधार करके तीन सुगति, तीन दुर्गति, तीन दुर्गतिवान और तीन सुगतिवान कहे हक्त । चौथे स्थान में आगे इसे ही ४ की स ख्या से कहा है । यहाँ तीन दुर्गति में देव नहीं लिये है और तीन सुगति में मनुष्य-देव और सिद्ध लिये हक्त । (५) भिक्षु को दिये जाने वाले खाद्यपदार्थ तीन प्रकार के होते हक्त- १. स स्कारित-स्वादु भोजन, २. अस स्कारित-ढक्ष भू गडा, खाखरा आदि, ३. सलेप(गीले) पदार्थ-खीचडी, राबडी आदि । गोचरी में सामने दिखते हुए खाद्यपदार्थ तीन अवस्था में होते हक्त- १. मुख्य बर्तन में से निकालते हुए २. कहीं ले जाते हुए ३. अन्य बर्तन में डालते हुए या परोसते हुए । (६) क्र दन, विलाप, आर्तध्यान ये तीनों साधु के लिये अयोग्य, अकृत्य है, अहितकर-अकल्याणकर है । इन तीनों से मुक्त रहना, प्रस ग आने पर भी ऐसा नहीं करना; वही श्रमणोचित्त है एव स यम में हितावह, कल्याणकर है; मोक्ष आराधना का रास्ता है ।

(७) परिणमन की अपेक्षा पुद्‌गल तीन प्रकार के होते हक्त- १. जीव से ग्रहित, जीव के प्रयोग से युक्त पुद्‌गल-**प्रयोगपरिणत** है, यथा- औदारिक शरीर वगेरे । २. जीव से त्यक्त पुद्‌गल जब तक अन्य जीव ग्रहण न करे या स्वाभाविक पूर्व अवस्था में, विश्रसा अवस्था में न आ जाय तब तक **मिश्रपरिणत** है । ३. जीव के प्रयोग बिना स्वाभाविक पुद्‌गल बनते बिखरते हक्त वे **विश्रसापरिणत** है, यथा-बादल, इन्द्र धनुष एव द्विप्रदेशी से अन तप्रदेशी स्क ध तक स्वत:

बनना बिछुडना; ये सब विश्रसा परिणत कहे गये हक्त । (८) धर्म के तीन प्रकार- श्रुतधर्म, चारित्रधर्म और अस्तिकायधर्म स्वभाव । यहाँ दो भेद मोक्ष साधक धर्म के और तीसरे भेद में पदार्थों के स्वभाव रूप धर्म की अपेक्षा कथन है । तीन प्रकार का **उपक्रम** अर्थात् प्रयास, प्रयत्न होता है, यथा- धार्मिक, अधार्मिक और मिश्र; इसमें स यम, अस यम और स यमास यम को भी समझ सकते हक्त अथवा स्वहेतुक, परहेतुक एव उभयहेतुक उपक्रम-प्रयत्न भी होता है ।

इसी प्रकार स्व-पर-उभय की सेवा, अनुग्रह-उपकार और अनुशासन तथा उपाल भ ये सभी तीन-तीन प्रकार के होते हक्त । स्व वैयावृत्य शरीर स ब धी, स्वअनुग्रह आत्महित स ब धी, स्वअनुशासन मन के स रक्षण रूप होता है । और स्वउपाल भ स्वदोष दर्शन, आत्म निंदा रूप, धिक्कार देने रूप होता है ।

(९) कथा-विचारणा तीन प्रकार की कही है- धर्म आचरण स ब धी, अर्थोपार्जन स ब धी और इन्द्रियविषयों के भोग स ब धी । इसी प्रकार निर्णय, जीवन लक्ष्य, विनिश्चय भी तीन प्रकार का है- जीवन को धर्म साधना में लगाने रूप, अर्थोपार्जन के लक्ष्ययुक्त पुढषार्थ, सुख भोगमय जीवन । इस प्रकार व्यक्ति के मानवजीवन की तीन लक्षित दिशाएँ हक्त । (१०) इन विषयों के अतिरिक्त कई विषय तीन की स ख्या के कारण यहाँ स ग्रहित है जिनकी विचारणा अन्य शास्त्रों में यथास्थान की जायेगी । यथा- ग्लान की औषध दत्ती, दृष्टि तीन, शल्य तीन, भिक्षुपडिमा, कर्मभूमि स ख्या, राजनीति-अर्थयोनि, श्रमण-माहण की पर्युपासना आदि ।

स्थान-३ : उद्देशक-४

प्रश्न-१ : इस उद्देशक में मुख्य किन-किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- इसमें तीन की स ख्या के आधार से मुख्य विषय इस प्रकार वर्णित है- स यम के उपघात और विशोधि, ज्ञानादि में अतिक्रम आदि और उनकी शुद्धि, क्षेत्र, पर्वत, नदी, भूमिक प, किल्विषी देव, देवपर्षद की स्थिति, प्रायश्चित्त, दीक्षा, अध्ययन, अनेकविध प्रत्यनीक, अ गोपा ग, मनोरथ, पुद्‌गल प्रतिघात, चक्षु, अवधिज्ञान, ऋद्धि, जिन,

केवली, लेश्या, मरण, स्थिर-अस्थिर चित्त के नुकशान लाभ, विग्रह गति, वलय, तीर्थंकर, ग्रैवेयक वगैरह विषयों का निरूपण है ।

प्रश्न–२ : स यम में एषणा समिति का महत्त्व किस प्रकार बताया है ?

उत्तर– यहाँ पर एषणा स ब धी दोषों के सेवन को स यम का उपघात–विराधना, विनाश करने वाला एव उन दोषों का सेवन नहीं करने को स यम की विशोधि–आराधना, श्रेष्ठता रूप कहा है । वैसे तो **पाँच ही समितियाँ स यम में महत्त्वपूर्ण है** तथापि एषणा समिति का विषय जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति निष्पाप वृत्ति से करने का है । इसके नियमोपनियम भी अनेक प्रकार के हक्त– (१) जिसमें गृहस्थ के भावों की तथा उनके अनुराग और विवेक-अविवेक की सूक्ष्मतम विचारणा होती है, वह **उद्गम के दोषों की** गवेषणा है (२) साधु की मानसिकता दूषित होकर आहार की लालसा में कर्तव्य च्युत न हो जाय इसकी भी एषणा समिति में विचारणा होती है, यह **उत्पादना** के दोषों से सुरक्षा रूप है (३) ग्रहण किये जाने वाले पदार्थ और दाता की वर्तमान स्थिति, प्रवृत्ति विराधनामय है या कैसी है इसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना यह **ग्रहणैषणा** है । यहाँ पर तीन की स ख्या के लक्ष्य से आहारादि की गवेषणा स ब धी उद्गम के १६ दोषों का, उत्पादना के १६ दोषों का तथा ग्रहणेषणा स ब धी १० दोषों का यों कुल ४२ दोषों का स केत है । इन दोषों का स्वरूप समझ कर जिनाज्ञानुसार उन दोषों से रहित आहार-पानी, मकान, वस्त्र, पात्र आदि की गवेषणा का पूर्ण लक्ष्य रखने वाला साधक अपने स यम को विशुद्ध बनाता है । लक्ष्य को गौण करके जो इन तीनों प्रकार के दोषों की पूर्ण विशुद्धि का ध्यान रखे बिना ज्यों त्यों आहार आदि प्राप्त कर लेता है, उसके स यम का विघात, नुकशान या विराधना का मार्ग खुल जाता है और वह साधक क्रमशः स यम विराधना का पथिक बनकर एक दिन स यम का विनाश करने वाला बन सकता है । अतः प्रत्येक साधक को जीवन के कदम-कदम में उपयोगी ऐसी इस एषणा समिति के समस्त नियमों का ढचि एव निष्ठापूर्वक आराधन करना चाहिये । तभी वह साधक, स यम विराधना से बचकर स यम की उच्च-उच्चतम विशोधि आराधना को प्राप्त कर सकता है ।४२ दोषों की विस्तृत चर्चा-विचारणा अन्य आगम में यथास्थान की जायेगी ।

प्रश्न–३ : अतिक्रम आदि दोष और उनकी शुद्धि के विषय में किस प्रकार समझना चाहिये ?

उत्तर– प्रस्तुत में तीन स ख्या का प्रकरण होने से ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीन स ब धी अतिचार आदि का कथन है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र के अनेक नियम उपनियम होते हक्त, उन समस्त नियमों की स्खलना में अतिक्रम आदि दोष स भव होते हक्त । अतिक्रम आदि दोष अवस्था के चार प्रकार है–(१) अतिक्रम– नियम विपरीत आचरण का मन में स कल्प । (२) व्यतिक्रम– दोष सेवन का प्रयास–प्रार भ की पूर्व तैयारी, वचन और काया से । (३) अतिचार– दोषाभिमुख प्रवृत्ति, एक देश से दोष सेवन या भूल अनजान से दोष सेवन । (४) अनाचार– मन, वचन और काया से नियम विपरीत आचरण की पूर्णता । छोटे मोटे प्रत्येक नियम स ब धी विविधता के कारण उनके अतिचार आदि की सामान्य विशेष अनेक अवस्थाएँ हो सकती है । उन्हें इस कहे गये स क्षिप्त अर्थ से विभाजित करके समझने समझाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

स यम नियमों में लगे हुए इन अतिचारों की शुद्धि भी आलोचना प्रतिक्रमण आदि से कर लेनी चाहिये । तत्स ब धी यहाँ आये शब्दों के अर्थ– **आलोचना**=अवलोकन, दोषों का निरीक्षण, स्वदोषदर्शन अथवा दोष का प्रगटीकरण । **प्रतिक्रमण**=भूल स्वीकार, मिच्छामि दुक्कड देना । **निंदेज्जा**=दोष के प्रति खेद होना, **गहरेज्जा**=गुढ आदि के समक्ष पश्चात्ताप युक्त, खेद युक्त प्रगटीकरण । **विउट्टेज्जा** = दोषों से अलग होना, उन्हें छोडना । **विसोहेज्जा**=पूर्ण रूप से दोष मुक्त हो जाना । **अकरणाए अब्भुट्ठेज्जा**=आगे भविष्य में नहीं करने का स कल्प, मानसिकता दृढ करना और अ त में इतनी विशुद्ध भूमिका के बाद यथायोग्य तपरूप प्रायश्चित्त स्वीकार करना । अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार तक के लिये तप रूप प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं होती है । उनकी शुद्धि आलोचना, प्रतिक्रमण एव निंदा-गर्हा से ही पूर्ण हो जाती है । अनाचार तक के दोषों के लिये यथायोग्य तप रूप प्रायश्चित्त गुढ आदि द्वारा दिया जाता है और स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनों के अतिक्रमादि और उनकी शुद्धि स ब धी निरूपण किया गया है ।

निर्दोष और आगमोक्त अपवाद परिस्थिति के आचरण की

मात्र आलोचना से शुद्धि होती है, यथा– आहार के लिये गुढ आज्ञा से गया हुआ भिक्षु स योगवशात् वस्त्र-पात्र आगमविधि से विवेक पूर्वक लाया हो या गोचरी करते हुए कहीं लघुनीत या बडीनीत परठने का प्रस ग कारणवश हुआ हो तो इन सब की आलोचना मात्र होती है । अतिचारों के लिये और अनायास जीव विराधना हो जाय उसके लिये आलोचना और मिच्छामि दुक्कड रूप प्रतिक्रमण यों उभय से शुद्धि हो जाती है ।

प्रश्न–४ : भूमिक प–भूकम्प क्यों और किस प्रकार होता है ?

उत्तर– जिस पृथ्वी पर चराचर जीव निवास करते हक्त उस आधारभूत पृथ्वी में क पन होना **भूकम्प** कहलाता है । वह भूकम्प दो प्रकार का कहा गया है– (१) चराचर जगत्पृथ्वी के किसी एक या अनेक विभागों में क पन होना यह एक देश भूकम्प है । (२) समस्त ज्ञात दुनिया में अर्थात् स पूर्ण विश्व में एक साथ क पन होना, सर्व भूक प कहलाता है । तीन की स ख्या का प्रकरण होने से दोनों प्रकार के भूक प के तीन-तीन कारण यहाँ दर्शाये गये हक्त ।

देश भूक प के तीन कारण– (१) पुद्गल परिणमन स ब धी–हमारी यह पृथ्वी रत्नप्रभा पृथ्वी है । **अहे रयणप्पभा** का अर्थ है– रत्नप्रभा पृथ्वी में । शास्त्रों में **अहे** शब्द अनेक जगह **'में'** अर्थ रूप में प्रयुक्त होता है । यथा– **अहे आराम सि वा**=बगीचे में । अत: इस रत्नप्रभा नामक हमारी पृथ्वी में स्वाभाविक पुद्गल परिणमन में विशाल पुद्गल स्क ध के क्षीण हो जाने से, नष्ट हो जाने से वहाँ भूमि के अ दर पोलार हो जाने से उथल-पुथल होता है, उसका असर पृथ्वी के उपरी भाग में रहे ग्राम, नगर आदि में दिखाई देता है । **(२) तिर्यंच स ब धी**– असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय में उरपरिसर्प जाति के महोरग नामक सर्प विशालकाय(अनेक योजन) के भी होते हक्त । वे जन्म धारण कर अ तर्मुहूर्त में ही मृत्यु को प्राप्त करते हक्त । तब उनके शरीर के पुद्गल तत्काल क्षीण हो जाते हक्त । जिससे भूमि में पोलार(स्पेश) बन जाता है । उपर रही पृथ्वी का वजन उस पोलार वाली भूमि पर आता है, जिससे उस क्षेत्र में उथल-पुथल होता है। इस तरह तिर्यंच उरपरिसर्प की क्षणिक जन्म मृत्यु और विनाश के निमित्त से हमें भूमिकम्प का अनुभव होता है । **(३) देवों से स ब धी**–नवनिकाय के देव असुरकुमार जाति के

देव हक्त, वे परस्पर किसी निमित्त से पृथ्वी को रणभूमि बनाकर स ग्राम करे और स ग्राम में बार बार भूमि पर प्रहार करे तो एक देश से पृथ्वी का क पन होता है । इस प्रकार यह देव निमित्तक देश भूक प है ।

सर्व भूक प के तीन कारण– (१) जिस तरह पाताल कलशों में वायु क्षुभित होने से लवण समुद्र में पानी ऊँचे उछलता है, वैसे ही रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे रही घनवाय के क्षुभित होने पर उसका असर क्रमश: घनोदधि में और फिर पृथ्वी में आता है जिससे स पूर्ण रत्नप्रभा पृथ्वी क पित होती है । उससे स पूर्ण विश्व में एक साथ भूक प आता है । (२) महर्द्धिक देव(चमरेंद्र सरीखे) यदि अपनी ऋद्धि शक्ति किसी श्रमण-माहण को दिखावे, उसमें वह पृथ्वी पर प्रहार आदि करे तो स पूर्ण पृथ्वी में क पन होता है वह भी सर्व भूकम्प है । (३) हमारी इस पृथ्वी पर असुरकुमार देवों या देवेन्द्रों का और वैमानिक देवों या इन्द्रों का परस्पर युद्ध हो जाय, जिसमें उनके पाँवों के प्रहार आदि से इस पृथ्वी में सर्वक पन होता है तब समस्त भूम डल पर एक साथ में भूक प होता है । देवों में परस्पर कभी भी विशाल युद्ध होता है तो वह तिरछा लोक में ढाई द्वीप के बाहर की भूमि पर होता है ।

यहाँ पर देश भूक प के कारणों में **'महोरग'** शब्द के साथ **'देव'** शब्द नहीं है फिर भी महोरग देव(व्य तर) अर्थ करने की पर परा है । कि तु वह अर्थ यहाँ समीचीन नहीं होता है ।क्यों कि देवों के स ग्राम से भूमिक प होना आगे कहा ही है । अत: यहाँ महोरग शब्द का उरपरि-सर्प जाति का महोरग अर्थ करना ही प्रास गिक है । ऐसे उरपरिसर्प भूमि में जन्मते-मरते ही रहते हक्त । जिसके कारण देश भूक प मानव लोक में आते ही रहते हक्त । ये उरपरिसर्प अनेक किलोमीटर प्रमाण ल बाई वाले भी हो जाते हक्त और मुहूर्त मात्र में ही मर भी जाते है ।

प्रश्न–५ : किस-किस अपेक्षा से प्रत्यनीक=विरोधी आचरण करने वाले कहे गये हक्त ?

उत्तर– साधु साध्वीओं के द्वारा अथवा व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला **विरोधी आचरण,** तीन-तीन की स ख्या से छ विभागों में कुल १८ प्रकार का बताया गया है, यथा– (१) गुढ-वडील की अपेक्षा तीन प्रकार के प्रत्यनीक–विरोधी आचरण करने वाले होते हक्त– आचार्य, उपाध्याय और स्थविर के । ये तीनों स घ में पूज्य स्थानीय एव अत्य त

सम्माननीय होते हक्त । जिनका पूर्ण आदरभाव रखते हुए सदा भक्तिभाव युक्त आचरण करना ही हितावह होता है क्यों कि गुढकृपा से ही साधक की साधना प्रगतिशील बनती है । इन तीनों की इच्छा, आशय, आदेश से विपरीत व्यवहार करने वाले गुढ प्रत्यनीक होते हक्त । (२) गति की अपेक्षा तीन प्रकार के प्रत्यनीक–विरोधी आचरण वाले होते हक्त– इहलोकप्रत्यनीक– इस भव में दुःखी होने योग्य अज्ञान तप, प चाग्नि तप आदि करने वाले, परलोक बिगडने के आचरण करने वाले तथा उभयलोक बिगडने के आचरण करने वाले गतिप्रत्यनीक होते हक्त । (३) समूह की अपेक्षा कुल, गण एव स घ के अवर्णवाद या विघटन रूप विरोधी आचरण करने वाले समूहप्रत्यनीक होते हक्त । (४) अनुक पा योग्य तपस्वी, बिमार एव नवदीक्षित इन तीन की अनुक पा– सेवा न करके विरोधी आचरण करने वाले अनुक पा प्रत्यनीक होते हक्त । (५) ज्ञान, दर्शन, चारित्र के विपरीत निरूपण, प्ररूपण करने वाले भाव प्रत्यनीक होते हक्त । (६) सूत्र, अर्थ एव तदुभय की आशातना करे, सम्यग् आराधना न करे, विपरीत व्याख्या करे वे श्रुत प्रत्यनीक होते हक्त । ये सभी प्रकार के प्रत्यनीक, जिनाज्ञा के विपरीत आचरण करने से धर्म की एव मोक्ष मार्ग की विराधना करने वाले होते हक्त । अतः मोक्षार्थी साधकों को इन प्रत्यनीक के स्वरूप को जानकर तथा हृदय गम करके उन-उन विषयों के जिनानुमत आचरण में ही अपनी आत्मा को उपस्थित रखने में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

प्रश्न–६ : साधु-श्रावक को जीवन में मनोरथ = मनोकामना, अभिलाषाएँ कैसी रखनी चाहिये ?

उत्तर– प्रस्तुत प्रकरण में तीन की स ख्या का कथन है अतः साधु-श्रावक के जीवन की समस्त मनोकामनाओं को यहाँ तीन-तीन श्रेष्ठ मनोरथों के माध्यम से कहा गया है और विशेषता यह बताई गई है कि जहाँ स सार की ढचि वाले मनोरथ–लालसाएँ निरर्थक कर्म ब ध और स सार बढाने वाली होती है, वहीं ये साधु-श्रावक के मनोरथ नित्य आत्मा में भावित करने से, आत्मा को स स्कारित करते रहने से वर्तमान में मात्र भावों से ही महान कर्मों की निर्जरा होती है और भावी जीवन में यथासमय ये पुष्ट किये गये स स्कार सहज ही कार्यान्वित हो जाते हक्त।

साधु के तीन मनोरथ :– श्रमण-निर्ग्रंथ इस भावना से आत्मा को भावित

करे कि– (१) वर्तमान में जितने भी शास्त्र–आगम उपलब्ध है, उनका स पूर्णतः अर्थ परमार्थ विवेचना युक्त अध्ययन कढँ ; अधिकतम श्रुत को क ठस्थ धारण कढँ; ऐसा स कल्प कर आत्म स स्कारों को पुष्ट करे । (२) श्रुत अध्ययन पूर्ण करके आत्मसाधना की विशेष प्रगति के लिये सामुहिक सगवडों से उपर उठकर एकल विहार चर्या से; स यम, तप, समिति, गुप्ति से आत्मा को अधिकतम पुष्ट कढँ । यह मनोरथ स पूर्ण स्वावल बी जीवन और एकत्व आत्म स्वरूप को तादात्म्य करने का है । (३) जब कभी भी इस मनुष्य जीवन में आयुष्य की अ तिम घडियों का आभास होने लगे; यह मानव शरीर, जीवन के आवश्यक कर्तव्यों में तथा स यम आचारों में उपयोगी न रहे, इन्द्रियाँ क्षीणता की तरफ प्रवाहित होने लगे; तब मक्त सावधानी पूर्वक एव पूर्ण उत्साह के साथ आलोचना-प्रतिक्रमण के द्वारा व्रत शुद्धि, कषाय विशुद्धि करते हुए स लेखना स थारा रूप आजीवन प डितमरण को स्वेच्छा से स्वीकार करके उसका जीवन के अ तिम श्वास तक यथार्थ पालन कढँ ।

ये तीन स यम जीवन के उत्तमोत्तम मनोरथ हक्त । इनका नित्य स्मरण करना स यम साधक का मुख्य और महान लाभप्रद कर्तव्य है, इस तरह के मनोरथ करने से आत्मा में स स्कार दृढ बनते हक्त । जिससे– (१) योग्यता स पन्न साधक एक दिन अवश्य श्रुतपार गत बनता है (२) एकाकी स्वावल बी जीवन में सफल बनता है तथा (३) जीवन के अ तिम समय में एव स कट की हर घडियों में शीघ्र अप्रमत्त योग से स लेखना स थारा ग्रहण करने के स योग को सुलभ कर सकता है। यहाँ श्रमण के कथन से साधु-साध्वी दोनों को ये मनोरथ आदरणीय है ऐसा समझना चाहिये । दूसरे मनोरथ में साध्वियाँ समूह त्याग रूप एकल विहार के स्थान पर एकत्व भावनामय पूर्ण स्वावल बी जीवन बनाते हुए समूह में रहकर भी स भोग प्रत्याख्यान, सहाय प्रत्याख्यान, आदि के द्वारा एकाकीपन में आत्मा को भावित करने का मनोरथ करे, ऐसा समझ लेना चाहिये । आगमों में साध्वी के लिये विविध तप, अभिग्रह, पडिमा का वर्णन आदि इसी हेतु की सिद्धि करने वाले हक्त । अ तगडसूत्र वर्णित भगवान महावीर स्वामी के शासन में साध्वियों ने अनेक तप, दत्ती परिमाण प्रतिज्ञा युक्त सप्त-सप्तमिका आदि भिक्षु प्रतिमा का आराधन किया था । अतः ये तीन मनोरथ सभी साधु-साध्वी

को नित्य स्मरण करके महानिर्जरा का लाभ प्राप्त करना चाहिये ।

श्रावक के तीन मनोरथ :– श्रमणोपासक आजीवन १२ व्रत धारण करता है, उसमें सामान्य-विशेष आर भ-परिग्रह की सीमा रखता है । क्यों कि गृहस्थ जीवन में और वर्तमान की उन परिस्थितियों में वह स पूर्ण त्याग नहीं कर सकता है, इसीलिये देशव्रती बनता है । तथापि श्रावक-श्राविकाओं को अपने नित्य-नियम के समय इन तीन मनोरथों का अवश्य चि तन करना चाहिये और आत्मा को उन भावनाओं से भावित करते रहना चाहिये । यथा– (१) पारिवारिक वारसदार पुत्र, पुत्रवधु आदि घर(कुटु ब)व्यापार की जिम्मेदारी स भालने के योग्य होने पर मक्त सा सारिक जिम्मेदारियों से मुक्त बनकर, निवृत्तिमय जीवन बनाकर अधिकतम समय स वर, पौषध, त्याग, व्रत, नियम, तपस्या आदि में व्यतीत करुँ और आत्मा को अधिकतम धर्मभावना में लगा करके, आश्रवद्वारों का अधिकतम त्याग करके, स वर निर्जरामय जीवन जीवूँ । हे भगवन् ! ऐसा शुभ स योग, शुभ अवसर, शुभ घडी मुझे यथा शीघ्र जीवन में प्राप्त होवे (२) शारीरिक शक्ति स्वास्थ्य के अनुकूल समय में सर्व स योगों को अनुकूल बनाने का प्रयत्न, अभ्यास करते हुए मानव जीवन में एक दिन सर्व विरति रूप मुनिधर्म अ गीकार करुँ, दीक्षा लेकर आत्म कल्याण साधना में पूर्णतया अवशेष जीवन को लगा दूँ । हे भगवन् ! ऐसा शुभ स योग मुझे शीघ्र प्राप्त होवे कि मक्त उत्कृष्ट वैराग्य से भावित होकर घर, कुटु ब, स पत्ति का मोह ममत्व छोडकर गुढ चरणों में जीवन अर्पित करके अणगारधर्म को स्वीकार करुँ (३) साधु के स लेखना स थारा ग्रहण करने के तीसरे मनोरथ के समान यहाँ श्रावक के लिये भी स लेखना स थारा युक्त प डितमरण की प्राप्ति का मनोरथ समझ लेना चाहिये ।

श का– श्रावक के द्वारा आजीवन–चौविहार स थारा कर लेने पर वह स पूर्ण पापों का और आहार का तीन करण, तीन योग से त्यागी हो जाता है तो उसे साधु ही क्यों नहीं समझा जाय ? **समाधान–** उसके स यम ग्रहण के परिणाम नहीं होते हक्त । उसकी लघुनीत, बडीनीत, वस्त्र परिवर्तन, शरीर की देखरेख-सारस भाल गृहस्थ करते हक्त।दीक्षा लेने पर या छट्ठा-सातवाँ गुणस्थान प्राप्त करने पर गृहत्याग, गुढनिश्रा ग्रहण, साधु-समुदाय की स्वीकृति, गृहस्थ परिचर्या का त्याग, रात्रि में

स्त्री प्रवेश निषेध आदि विशेष स यमचर्या आवश्यक बन जाती है । जब कि श्रमणोपासक स थारा करते हुए भी अपने को श्रावक मानता है एव उसके आसपास गृहस्थ जीवनमय वातावरण होता है । मकान, शय्या आदि भी निर्दोष गवेषणा वाला नहीं होता है कि तु उसके स्वय के लिये ही बनाया हुआ होता है । कपडे भी उसके अपने निमित्त से ही खरीदे होते हक्त, गवेषणा करके लाये हुए नहीं होते हक्त । इत्यादि सूक्ष्म-सूक्ष्म अनेक सामाचारिक भिन्नताएँ साधु जीवन की स थारा वाले गृहस्थ से समझ लेनी चाहिये । स थारा भी तीन प्रकार का है– भक्तप्रत्याख्यान, इ गिनीमरण और पादपोपगम । साधक अपनी क्षमता, क्षेत्र–काल अनुसार जघन्य भक्तप्रत्याख्यान उत्कृष्ट पादपोपगमन स थारा में से किसी भी स थारे का मनोरथ कर सकता है ।

वस्तु स्थिति– तीन मनोरथ को मन, वचन, काया से जीवन में आत्म परिणत करते रहने से कर्मों की सदा महान निर्जरा होती है और साधक शीघ्र ही इस भव, परभव में मोक्ष का अधिकारी बनता है । अ गशास्त्र में कथित यह प्रेरक विधान और सहज महान लाभकारी आचरण है और साधु श्रावक दोनों के लिये करने का यहाँ स्पष्ट स देश है । फिर भी आलस, स स्कार एव प्रेरणा के अभाव में या व्यक्तिगत प्रमाद के कारण प्राय: ९९ प्रतिशत श्रावक साधु इस लाभ से व चित रहते होंगे। अत: इस प्रेरणादायी प्रश्नोत्तर का स्वाध्यायी साधक आज से ही नियमित तीन मनोरथों का चि तन प्रार भ कर के अपने **कर्मक्षय के और मोक्षप्राप्ति के मुख्य उद्देश्य में** अधिकतम लाभान्वित बने ।

प्रश्न–७ : 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' इस उक्ति के विषय में इस शास्त्र में क्या कहा गया है ?

उत्तर– प्रस्तुत उद्देशक के ६२ वें सूत्र में उपदेश और उपदेष्टा की महिमा दर्शाते हुए कहा गया है कि उपदेष्टा बनने के पहले सम्यक् अध्ययन होना चाहिये, उसके बाद सम्यक् चि तन-मनन होना चाहिये फिर स यम-तप-त्याग आदि का सम्यग् आचरण भी होना चाहिये । इस प्रकार तीनों गुणों–साधनाओं से परिपूर्ण व्यक्ति के द्वारा कहा गया उपदेश सुआख्यात–सही वस्तु तत्त्व को बताने वाला सन्मार्गदायक होता है । तीर्थंकर भगवान ऐसा सुअधीत, सुध्यात और सुतपस्वित धर्म का सु दर आख्यान, कथन, विवेचन करते हक्त । तात्पर्य स्पष्ट है कि

उपदेशक का जीवन अध्ययन, चि तन-मनन युक्त एव तप-स यममय होना ही चाहिये । इस प्रकार इस सूत्र में सकारात्मक विधान के साथ प्रश्नगत उक्ति का समर्थन होता है कि 'दिया तले अ धेरा' के समान उपदेशक नहीं होना चाहिये । पहले स्वय के जीवन को पूर्ण आदर्श जीवन रूप में घडना चाहिये, फिर उपदेशक बनना चाहिये ।

प्रश्न-८ : स यम अ गीकार करने के बाद मुख्य किन विषयों में श्रद्धापूर्वक आगे बढने से आराधना, एव स देहशील होने से विराधना होती है ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक में श्रद्धानिष्ठ रहने के तीन स्थान इस प्रकार कहे हक्त- (१) गृहस्थवास का त्याग करके मु डित होकर प्रव्रजित होने वाले श्रमण को निर्ग्रंथप्रवचन के देशविरति-सर्वविरति धर्म या श्रुतधर्म और चारित्रधर्म तथा स यम समाचारी के समस्त छोटे-बडे नियमोपनियमों में श का आदि से रहित होकर **स्थिरचित्त से** श्रद्धा-निष्ठा रखकर आने वाले कष्ट उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हुए परीषहों पर विजय प्राप्त करना चाहिये । (२-३) यहाँ निर्ग्रंथ प्रवचन कहने से सभी श्रद्धेय विषय ग्रहण हो जाते हक्त तथापि तीन की स ख्या का प्रकरण होने से दूसरे बोल में पाँच महाव्रत और तीसरे बोल में ६ काया के जीवों की श्रद्धा-निष्ठा का कथन कर उन दोनों विषयों की श्रद्धा का स यम जीवन से महत्वपूर्ण स ब ध दर्शाया गया है अर्थात् स यम साधक **पाँच महाव्रत** का पूर्ण श्रद्धा-निष्ठा के साथ समग्र रूप से पालन करे तथा **छकाय जीवों** की रक्षा करने के लक्ष्य में और इन जीवों के प्रति अनुक पापूर्ण आचरण में सतत श्रद्धानिष्ठ रहकर तत्स ब धी ईर्या आदि समितियों का सम्यक् पालन करे । इन तीनों विषयों में **स्थिरचित्त** रहने वाला अणगार परीषह उपसर्गों को जीतकर श्रेष्ठ आराधना करता है ।

इसके विपरीत जो अणगार स यम स्वीकार करने के बाद इन **तीन विषयों में** श का, का क्षा युक्त होकर **अस्थिरचित्त वाला** बन जाता है, जिससे तद्विषयक कष्ट उपसर्गों से वह घबरा जाता है, एव परीषहों से पराभूत हो जाता है अर्थात् हार जाता है और स यम विराधना करते हुए आत्मकल्याण से व चित रह जाता है ।

अतः स यम स्वीकार करके अणगारधर्म में उपस्थित निर्ग्रंथों को सदा (१) निर्ग्रंथ-प्रवचन (२) पाँच महाव्रत और (३) छकाय जीव; इनके स ब ध में सम्यग् ज्ञान, श्रद्धान को निर तर पुष्ट करते हुए, सम्यक् स यम,

तप तथा जिनाज्ञा में आत्मा को, सम्यक् श्रुत अध्ययन और गुढकुलवास के माध्यम से भावित करते रहना चाहिये । तभी उनका गृहवास त्याग और स यम अ गीकार करना सफल-सार्थक बन सकता है ।

प्रश्न-९ : अन्य किन-किन विषयों का इस उद्देशक में निरूपण किया है ?

उत्तर- उपर कहे गये मुख्य विषयों के अतिरिक्त यहाँ अनेक विषयों का निरूपण इस प्रकार है- (१) ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये ही सम्यक् मोक्षमार्ग रूप है, इनका ही सम्यक् निरूपण, प्ररूपण, प्रतिपादन करना चाहिये । साधकों को अन्य निरूपण-प्ररूपण आवश्यक नहीं होते हक्त । ज्ञानादि के प्रतिपादन में सावधानी नहीं रखने वाले साधक मलिनता को और सावधान रहने वाले साधक पवित्रता को प्राप्त करते हक्त ।

(२) शक्रेन्द्र की बाह्य पर्षद के देवों की, आभ्य तर पर्षद की देवियों की और ईशानेन्द्र के बाह्य पर्षद की देवियों की स्थिति तीन-तीन पल्योपम की होती है । (३) लोक में तीन पर्वत गोल चूडी के आकार वाले हक्त- मानुषोत्तर, कु डलवर और ढचक । (४) तीन सबसे बडे हक्त- पर्वतो में ज बूद्वीप का मेढ पर्वत, समुद्रों में स्वय भूरमण समुद्र और देवलोकों में ब्रह्मदेवलोक(पाँचवाँ देवलोक) विस्तार की अपेक्षा से । (५) शरीर में माता के अ ग- मस्तक, खून, मा स; पिता के अ ग- हड्डी, हड्डी की मज्जा, केश-दाढी-मूँछ-रोम-नख ।

(६) पुद्गलों की स्वाभाविक गति में अवरोध तीन प्रकार से होता है- परमाणु का परमाणु से, वातावरण में ढक्षता अधिक होने से और लोका त में अर्थात् अलोक से, क्यों कि वहाँ धर्मास्तिकाय का अभाव होता है । (७) छद्मस्थ मनुष्यों को एक चक्षु कहा है उनके केवल चर्म-चक्षु(आँखें) ही होती हक्त । अवधिज्ञानी होने से देव द्विचक्षु कहे गये हक्त-चर्मचक्षु और अवधिज्ञान । सर्वज्ञ भगवान तीन चक्षु वाले कहे गये हक्त-केवलज्ञान, केवलदर्शन और चर्मचक्षु ।

(८) **देवों की ऋद्धि-** विमान की, विकुर्वणा की(रूप बनाने की) और परिचारणा-गमनागमन की । क्यों कि देवों में विशेष ऋद्धि वालों की गति भी विशिष्ट होती है । **राजा की ऋद्धि-** युद्ध या यात्रार्थ जाने के समय की, नगर प्रवेश की, राज्य विस्तार, सेना, कोश-प्रकोष्ट की । **गणी की ऋद्धि-** आचार्य आदि की ऋद्धि ज्ञान, दर्शन,चारित्र की होती है । तथा इन सभी की सचित्त, अचित्त या मिश्र यों भी तीन-तीन

प्रकार की ऋद्धि होती है । (९) पापों से निवृत्ति तीन प्रकार से होती है– ज्ञानपूर्वक, अज्ञान से अर्थात् देखा-देखी और स देह युक्त । इसी प्रकार पाप में प्रवृत्ति और आसक्ति भी तीन-तीन प्रकार की होती है । (१०) अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी तीनों ही जिन कहे जाते हक्त । ये तीनों केवली और अर्हन्त भी कहे जाते हक्त । जिन– रागद्वेष के विजेता, केवली– सर्वज्ञ, अर्हत्– जिनसे कुछ छुपा नहीं हो । (११) **बालमरण** प्राप्त करने वाले जीव की लेश्या–स्थित परिणामी, हायमान परिणामी और विशिष्ट हायमान परिणामी होती है । **प डितमरण** प्राप्त करने वाले की लेश्या–स्थित परिणामी, विशुद्ध्यमान परिणामी, अत्य त विशुद्ध्यमान परिणामी होती है । **बालप डितमरण** प्राप्त करने वाले की लेश्या–स्थित और विशुद्ध्यमान होती है, अत्य त विशुद्ध्यमान नहीं होती है । (१२) सातों नरकों के पृथ्वीपि ड के चौतरफ तीन वलय होते हक्त– घनोदधि वलय, घनवाय वलय और तनुवाय वलय । उन पृथ्वीयों के उपर आकाश और नीचे घनोदधि–ठोस जल होता है । तीनों वलय एक के बाद एक यों क्रम से चोतरफ होते हक्त । (१३) मोहनीय कर्म के क्षय होने पर अ तर्मुहूर्त में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अ तराय ये तीन कर्म एक साथ क्षय हो जाते हक्त । (१४) त्रस जीवों की वाटेवहेता गति अर्थात् विग्रहगति तीन समय की होती है । यहाँ से स्पष्ट (सिद्ध)होता है कि एकेन्द्रिय जीवों की ४-५ समय की वाटे वहेता गति–विग्रहगति भी हो सकती है ।

(१५) **तीर्थंकर विषयक–** प द्रहवें धर्मनाथ तीर्थंकर का शासन कुछ कम तीन सागरोपम(पोण पल्योपम न्यून) तक रहा था । महावीर स्वामी के तीन पाट केवली होकर मोक्ष गये, यथा–गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी और ज बूस्वामी । इन तीनों में एक के बाद दूसरे को केवलज्ञान हुआ था । मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ भगवान के साथ ३००-३०० पुढषों ने दीक्षा ली थी । भगवान महावीर स्वामी के ३०० चौदह पूर्वी की उत्कृष्ट स पदा थी । चौदहपूर्वी श्रमण जिन नहीं पण जिन सरीखे होते हक्त, स पूर्ण प्रतिपाद्य विषय के ज्ञाता–सर्वाक्षर सन्निपाती होते हक्त और जिनेश्वरों के समान यथार्थ निरूपण करने वाले होते हक्त, जब उनका श्रुतज्ञान में उपयोग हो तो ही ऐसा समझना चाहिये, उपयोग न हो तो उनसे भी स्खलना होना स भव है । शा तिनाथ, कु थुनाथ और अरनाथ

ये तीन तीर्थंकर उस भव में चक्रवर्ती भी थे । (१६) इसके अतिरिक्त कई विषय तीन की स ख्या के कारण यहाँ स ग्रहित है । जिनकी विचारणा अन्य शास्त्रों में यथास्थान की जायेगी । यथा– तीन काल, तीन वचन, भिक्षुपडिमा, आराधना, क्षेत्र, पर्वत, द्रह, नदी; किल्विषी देव, प्रायश्चित्त, दीक्षा, एव वाचनादि के योग्य– अयोग्य, छ कल्पस्थिति, शरीर तीन, गर्व, करण, नक्षत्र, नवग्रैवेयक तथा पुद्गल परिणमन आदि ।

स्थान–४ : उद्देशक–१

प्रश्न–१ : इस चौथे स्थान का क्या परिचय है ?

उत्तर– इस स्थान में चार की स ख्या को लेकर उसमें समाविष्ट होने वाले तत्त्वों का कथन है तथापि इसमें एक दो गुणों को, बोलों को, लक्षणों को, उपमाओं को लेकर चौभ गियाँ बनाई गई है और उन चौभ गियों के माध्यम से साधकों को, जिज्ञासुओं को, मोक्षार्थियों को आत्मबोध एव मानव जीवन स स्कारित सुवासित करने का बोध दिया गया है । चौभ गियों का, उपदेशक विषयों का, उपमाओं का कोई क्रम नहीं रखा गया है कि तु जहाँ तहाँ कहीं तत्त्वज्ञान, कहीं चौभ गी, कहीं उपमाएँ, कहीं जीवन शिक्षाएँ तो कहीं मोक्षमार्ग में प्रगतिकारक गूढ शब्दों में उपदेश निहित किया गया है । इस स्थान के विभाजन रूप चार उद्देशक हक्त । उनमें भी विषय का कोई विभाजन नियत नहीं करते हुए अक्रमिक बिखरे मोतियों की तरह सैकडों विषयों का निरूपण ४०० से अधिक सूत्रों में किया गया है ।

प्रश्न–२ : इस उद्देशक में मुख्य कौन कौन से तत्त्व एव चौभ गियाँ है ?

उत्तर– इस प्रथम उद्देशक में चार की स ख्या वाले **तत्त्व विषय** इस प्रकार है– अ तक्रिया, भाषा, पुत्र, वनस्पति के ४ भेद, नारकी, साध्वी की चादर, ध्यान, देवों के पद, देवों आदि के स वास(मैथुन), कषाय भेद, कर्म, पडिमा, अस्तिकाय, प्रणिधान, १२० लोकपालों के नाम, पाताल कलश, देवजाति, प्रमाण, दिशाकुमारियाँ, पर्षदा की देवियों की स्थिति, स सार, दृष्टिवाद, प्रायश्चित्त, पुद्गल परिणाम, चातुर्याम, सुगति–दुर्गति, केवली, हास्यउत्पत्ति, नौकर, अग्रमहिषी, विगय-महाविगय, अवगाहना, प्रज्ञप्तिसूत्र आदि ।

चौभ गियाँ– वृक्ष और मनुष्य स ब धी, वस्त्र और मनुष्य स ब धी, सत्य-असत्य पुढष स ब धी, फलस्वाद और पुढष स ब धी, मेलाप-स वास और पुढष स ब धी, पाप स ब धी, विनय व दन स ब धी, सूत्र तथा अर्थ स ब धी, कूटागार शाला और पुढष स ब धी चौभ गियाँ कही गई है ।

उपमा– मनुष्य को कलिका की उपमा, भिक्षु-तप को काष्टकीट की उपमा, स्त्रीपुढष को काष्ठादि की भिन्नता की उपमा । इस प्रकार ४ की स ख्या से विषय कहे गये हक्त । इनमें से कोईक विषय तीन स ख्या से तीसरे स्थान में वर्णित है उसी में १ बोल और जोडकर चार में कथन किया गया है ।

प्रश्न–३ : मोक्ष प्राप्ति के लिये क्रिया या तप का कोई मापद ड निर्धारित है कि इतनी क्रिया या तप करने से मुक्ति होती है ?

उत्तर– जिस तरह स सार व्यवहार में **करोडपति शेठ** बनने के लिये किसी व्यापार या वर्ष आदि समय का अथवा परिश्रम का कोई मापद ड निर्धारित नहीं किया जा सकता है । क्यों कि कोई व्यक्ति अल्प प्रयत्न और अल्प समय में मालो-माल हो जाता है और कोई अत्यधिक प्रयत्न, रात दिन करने पर भी वर्षों तक करोडपति शेठ नहीं बन सकता है। इसके पीछे अनेक कारण रहे हुए होते हक्त । उनमें मुख्य कारण ये है– पूर्वभव के कर्मस ग्रह तथा वर्तमान सुस योग और समय पर योग्य पुढषार्थ ।

ठीक इसी तरह मोक्ष साधना में भी प्रत्येक व्यक्ति के लिये तप और स यम की मात्रा का कोई निर्धारण नहीं कहा जा सकता । जीव के अपने पूर्वभवों की पर परा और कर्मस्टोक विभिन्न तरह के होते हक्त । इसी बात को स्पष्ट करते हुए यहाँ पर चार प्रकार के मोक्षाराधक साधकों के दृष्टा त के साथ मोक्षसाधना के तप स यम की भिन्नता स्पष्ट की गई है– (१) कम समय और कम तप-स यम से मुक्ति । यथा–मढदेवी माता । भगवान ऋषभदेव की माता मढदेवी को अल्प समय में स यम तप की उग्र साधना के बिना अ तर्मुहूर्त की ध्यान पराकाष्टा से ही मुक्ति प्राप्त हो गई । (२) ल बे समय से कि तु उग्र तपश्चर्या के बिना मुक्ति । यथा– भरत चक्रवर्ती को अ तर्मुहूर्त के चि तन ध्यान मात्र से केवलज्ञान की प्राप्ति और फिर दीर्घ स यम पर्याय में(१लाख पूर्व =१लाख×८४०००००×८४०००००वर्ष पर्यंत स यम पालन करते हुए मानव देह में) विचरण करने के बाद सुखपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति

हुई । (३) अल्प समय और अधिक कष्ट से मुक्ति । यथा–गजसुकुमाल मुनि । कृष्ण वासुदेव के छोटे सगे भाई गजसुकुमाल मुनि को एक दिन की दीक्षापर्याय, १६ वर्ष की मात्र उम्र में भय कर तीव्र दाढण वेदना सहन करते हुए अ तर्मुहूर्त के कायोत्सर्ग में मुक्ति की प्राप्ति। (४) ल बे समय और कष्टमय स योग के साथ घोर तप-स यम साधना से मुक्ति । यथा– सनत्कुमार चक्रवर्ती । उन्होंने ७०० वर्ष की महान तपस यम साधना और १६ महारोगों की तीव्रतम वेदना को सहन करके मुक्ति प्राप्त करी थी ।

तात्पर्य यह है कि मोक्षमार्ग सिद्धा त की एव सभी के चलने योग्य राजमार्ग की रूपरेखा निश्चित्त की जा सकती है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप ये चारों की सुमेल युक्त साधना, यह मोक्ष मार्ग है ।– ***उत्तराध्यन सूत्र अध्ययन–२८॥*** पर तु किस आत्मा को द्रव्यसाधना कितनी और किस साधक को भाव–परिणामों की कितनी साधना के बाद सफलता होगी यह निर्णय उस प्रत्येक व्यक्ति के पूर्व के कर्मस ग्रह की अवस्थाओं पर और वर्तमान स योगो तथा योग्य प्रास गिक पुढषार्थ पर निर्भर होता है । जो उपर दिये गये चार दृष्टा तो से समझा जा सकता है । ऐसा सब कुछ होते हुए भी छद्मस्थ साधक को, उक्त दृष्टा त को ध्यान में रखकर राजमार्ग से स यम तप में, श्रावकधर्म–साधुधर्म में यथायोग्य पराक्रम करना ही श्रेष्ठ–सच्चा और एक दिन सफलता प्राप्त कराने वाला निश्चित्त मोक्ष मार्ग है । उसी में सही लक्ष्य के साथ, तल्लीनता पूर्वक पुढषार्थ, सभी के लिये, सदा-सर्वदा उपादेय है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–४ : नारकी जीवों के पास वैक्रियशक्ति, वैक्रिय शरीर और अवधिज्ञान होता है तो क्या वे नरक दु:ख से छूटकर मनुष्य लोक में आ सकते हक्त या कोई मित्र देव उन्हें यहाँ लाकर रख सकता है?

उत्तर– नारकी जीव वहाँ उत्पन्न होते ही– (१) क्षेत्रवेदना सहन नहीं हो सके वैसी होने से मनुष्य लोक में आना चाहते हक्त । (२) परमाधामी देवों के क्रूर व्यवहार से पीडित होने पर मनुष्य लोक में आना चाहते हक्त । (३) दु:ख भोगते-भोगते ल बा समय हो जाने पर भी दुख का अ त नहीं आने से मनुष्य लोक में आना चाहते हक्त । (४) हजारों लाखों करोडों या अस ख्य वर्ष बीत जाने पर भी वहाँ की सागरोपम पल्योपम की

उम्र समाप्त नहीं होती देखकर मनुष्य लोक में आने की इच्छा करते हक्त कि तु उन नैरयिकों की वैक्रिय शक्ति अत्य त अल्प होती है, अत: वे अपने नरकावास की अमुक सीमा से बाहर भी निकल नहीं सकते । इस प्रकार कर्मों से पराधीन बने वे नारकी जीव महादु:खानुभूति करते हुए भी वहाँ से निकल कर मनुष्यलोक में नहीं आ सकते । कदाचित् कोई शक्तिशाली मित्रदेव वहाँ पहुँचकर अपने मित्र नारकी जीव को उठाकर, लेकर वहाँ से निकालने का प्रयत्न भी करे तो क्षेत्र स्वभाव से वह नारकी जीव देव के पास से छूटकर वहीं नरक क्षेत्र में पड जाता है अर्थात् महाशक्तिशाली १२ वें देवलोक का देव भी किसी मित्र नारकी जीव को वहाँ से उबार नहीं सकता है ।

आजीवन जेल की सजा के बाद २० वर्ष तक सजाप्राप्त व्यक्ति को जेल में अनिच्छा से भी रहना ही पडता है और वहाँ की यातनाएँ सहनी पडती है, उसी तरह नारकी जीव ने वहाँ का जितना आयुष्य ब ध किया है उसे पूर्ण भोगने पर ही उन्हें छुटकारा हो सकता है ।

प्रश्न–५ : यहाँ क्रोधादि चार कषायों का स्वरूप किस-किस प्रकार समझाया गया है ?

उत्तर– क्रोध, मान, माया तथा लोभ चारों कषाय चारों गति में और २४ ही द डक के जीवों में होते हक्त । कहीं सूक्ष्म रूप में और कहीं प्रगट रूप में होते हक्त । एकेन्द्रियों में स स्कार और अस्तित्व रूप में चारों कषाय होते हक्त । उदय की अपेक्षा ये चारों कषाय अ तर्मुहूर्त में बदलते रहते हक्त। अणुत्तरविमान के देवों में भी अस्तित्व के रूप में और सूक्ष्म उदय रूप में अ तर्मुहूर्त के परिवर्तन से चारों कषाय पाये जाते हक्त । अपेक्षा से कषायों की तरतमता होती है यथा– देवों में लोभ, नारकी में क्रोध, तिर्यंच में माया और मनुष्य में मान कषाय की बहुलता होती है ।

कषायों की उत्पत्ति का आधार– (१) खुद पर–स्वय से स ब धित (२) अन्य से स ब धित (३) उभय से स ब धित (४) अनाधार से यों ही कषाय हो सकते हक्त । **कषायों के होने में कारण–** (१) जमीन (२) मकान आदि (३) उपधि, उपकरण, सामग्री (४) शरीर । इन कारणों से स्वार्थ आदि की भावना से कषाय उत्तेजित होते हक्त ।

कषायों का स्वरूप विभाग– तीव्रता, म दता की अपेक्षा या दीर्घकालीन अल्पकालीन पकड की अपेक्षा तथा आत्मगुणों की क्षति में म दता-

तीव्रता की अपेक्षा चारों कषायों के चार विभाग हक्त–

(१) अन तानुब धी कषाय– यह कषाय तीव्रतम दर्जे का होता है । इस कषाय की पकड ल बी स्थिति की होती है । इस कषाय परिणति में, उदय भाव में जीव प्राय: प्रथम गुणस्थान में होता है । इस कषाय के उदय में समकित या व्रत-प्रत्याख्यान की प्राप्ति जीव को नहीं होती है । समकित आदि हो तो भी इस कषाय के उदय में आने पर व्रत या समकित गुण का विनाश होता है तब जीव अनायास मिथ्यात्व अव्रत को प्राप्त कर लेता है । इस अन तानुब धी कषाय में आयुब ध हो तो नरक का ब ध पडता है । यह कषाय उत्कृष्ट रहे तो जीवन भर भी रहे जैसा स्वभाव का होता है । भवितव्यता और काल लब्धि का जोर हो तो कभी इस कषाय वाला जीव भी पलटी खाकर उसी भव में मोक्ष जा सकता है तथापि व्यवहार स्वभाव की अपेक्षा यह कषाय छूटना कठिनाई वाला कहा गया है।

इस को दृष्टा त से समझाया गया है कि– पत्थर में पडी तिराड–दरार का मिटना मुश्किल होता है वैसे ही अन तानुब धी क्रोध कषाय से टूटे दिल जुडना मुश्किल होता है । पत्थर के स्त भ का नम जाना मुश्किल होता है वैसे ही अन तानुब धी मान का नम्रता में पलटना मुश्किल होता है । बा स की जड का वा कापन मिटना कठिन होता है वैसे ही अन तानुब धी की माया वाले स्वभाव का सरल बनना मुश्किल होता है और वस्त्र में लगे किरमची र ग का निकलना कठिन होता है वैसे ही अन तानुब धी लोभ का मानस पलटना मुश्किल होता है । इस प्रकार यह अन तानुब धी कषाय आत्मा का अधिकतम अहित करने वाला एव आत्मउत्थान–कल्याण में अधिकतम बाधक होता है।

(२) अप्रत्याख्यानी कषाय– यह कषाय अन तानुब धी से कुछ कम तीव्र दर्जे का होता है । इस कषाय में पकड उत्कृष्ट १ वर्ष की होती है । इस कषाय के उदय में जीव के चार गुणस्थान हो सकते हक्त, पाँचवाँ गुणस्थान नहीं होता है । इस कषाय के उदय में जीव व्रत-प्रत्याख्यान नहीं कर सकता और कभी पाँचवाँ गुणस्थान या व्रत-प्रत्याख्यान हो तो भी इस कषाय के उदय में वे छूट जाते हक्त । इस कषाय में आयुब ध हो तो तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है । यह कषाय उत्कृष्ट रहे तो स वत्सरी तक रह सकता है । कदाचित् इसमें परिवर्तन आवे तो इस कषाय वाला

जीव भी आगे बढता हुआ उसी भव में मुक्त हो सकता है तो भी व्यवहार स्वभाव की अपेक्षा इसका छूटना कुछ मुश्किल जरूर होता है ।

इसको दृष्टा त से इस प्रकार समझाया है कि– तालाब में कीचड पानी सूखने पर जो तिराड मिट्टी में पडी होती है वह पुनः बारिस आने के पूर्व मिटना मुश्किल होती है। वैसे ही इस कषाय वाले का क्रोध सम्यग् दृष्टि हो तो स वत्सरी आने पर वह उस कषाय का वमन कर देता है। अन्यथा वह कषाय अन तानुब धी में परिणत हो जाता है। हड्डी के स्त भ के समान इस अप्रत्याख्यानी कषायोदय के मान वाला कभी कि चित् नम सकता है अधिक नहीं । भेड के सि ग की वक्रता प्रयत्न विशेष से कदाचित् कि चित् मिट सकती है वैसे इस अप्रत्याख्यानी कषाय की माया वाले में कि चित् सरलता हो सकती है । कीचड से भरे वस्त्र का र ग धोने पर कि चित् साफ हो सकता है उसी प्रकार इस कषाय के उदय वाले का लोभमानस कुछ पलट सकता है। इस प्रकार यह कषाय, अन तानुब धी से कम दर्जे का होते हुए भी आत्मा का अहित करने वाला एव मोक्षमार्ग में आगे बढने में अवरोधक होता है ।

उच्चारण की अशुद्धता से इसे अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह दिया जाता है कि तु समझने पर ध्यान में आ सकता है कि अप्रत्याख्यान का आवरण नहीं होता है । इसलिये इसके साथ आवरण शब्द नहीं जोडना चाहिये कि तु **अप्रत्याख्यानी कषाय** इतना ही बोलना चाहिये ।

(३) प्रत्याख्यानावरण कषाय– पूर्व के दो कषायों से इस कषाय की तीव्रता कम होती है । इस कषाय में पकड १५ दिन से ज्यादा नहीं होती है । इस कषाय के उदय में जीव को पाँच गुणस्थान हो सकते हक्त । यह कषाय सर्वविरति रूप स यम का बाधक है । कि तु देशविरति के प्रत्याख्यान इस कषाय के उदय में प्राप्त हो सकते हक्त । इसलिये यह कषाय सर्वप्रत्याख्यान का आवरण करता है, देश प्रत्याख्यान का नहीं । इस कषाय का उदय होने पर उपर के छट्ठे आदि गुणस्थान हो तो भी छूट जाते हक्त और वह जीव पाँचवें आदि नीचे के गुणस्थानों में आ जाता है । इस कषाय में आयुब ध हो तो मनुष्य गति की प्राप्ति होती है । परिणामों में परिवर्तन आकर प्रगति करे तो इस कषाय वाला जीव भी मोक्ष प्राप्त कर सकता है । तथापि स्वभाव से इस कषाय की स्थिति उत्कृष्ट १५ दिन की हो सकती है ।

इसको दृष्टा त से इस प्रकार समझाया है– बालु रेत में पडी लकीर हवा आदि से दो-चार दिन में समाप्त हो जाती है वेसे ही इस प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्रोध २-४ दिन यावत् उत्कृष्ट १५ दिन में समाप्त हो जाता है। समाप्त न होवे तो उपर के अन्य किसी कषाय में परिणत हो जाता है । लकडी को मोडने पर थोडा सा बल लगाने पर भी वह मुड जाती है वैसे ही इस कषाय के मान वाले में कुछ समय व्यतीत होने पर नम्रता हो जाती है । बैल चलते–चलते मूत्र करता है तब भूमि पर उसके मूत्र का आकार वक्रता वाला होता है, वह भी थोडे समय बाद सूखने पर या अन्य गमनागमन आदि से समाप्त हो जाता है; वैसे ही इस प्रत्याख्यानावरण कषाय वाले की माया भी अल्प समय से सरलता में परिवर्तित हो जाती है । अ जन या काजल का र ग शीघ्र साफ हो जाता है वैसे ही इस कषायोदय का लोभ मानस भी सरलता से परिवर्तित हो जाता है । यह कषाय दुर्गतिदायक नहीं है, फिर भी मोक्ष मार्ग की प्रगति में स यम प्राप्ति में बाधक बनता है ।

(४) स ज्वलन कषाय– यह कषाय म दतम होता है इसमें पकड का अभाव सा होता है अर्थात् यह कषाय क्षणिक होता है । इस कषाय के रहते जीव १० वें गुणस्थान तक बढ सकता है । यह कषाय आत्मगुणों में खास अवरोधक नहीं बनता है । मात्र वीतरागता या केवली अवस्था प्राप्त होने में बाधक होता है तथापि कई हलुकर्मी जीव इस कषाय को दसवें गुणस्थान में पूर्ण क्षय करके वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन जाते हक्त । इस कषाय के उदय में आयुब ध होवे तो देवगति की प्राप्ति होती है । यह कषाय दिखने मात्र का या सिर्फ अस्तित्व रूप होता है कि तु अ तर ग में तीव्र परिणामी नहीं होता है । स्वार्थ परायणता या परसुखभ जक वृत्ति इस कषाय के उदय वाले में नहीं होती है । तथापि कषाय रूप अस्तित्व वाला होने से आत्मा के वीतराग गुण का घातक होता है । इसकी स्थिति नहींवत् होती है अर्थात् १ दिन या अहोरात्र की भी स्थिति नहीं होती है अर्थात् अल्प समय में ही इस कषाय के परिणाम सहज भाव में परिवर्तित हो जाते हक्त ।

इसको दृष्टा त से इस प्रकार समझाया है– पानी के अ दर खींची गई पतली या मोटी लकीर तत्काल मिट जाती है वैसे ही इस कषाय वाले का क्रोध दिखने में छोटा या बडा कैसा भी हो, ज्यादा नहीं

रहता है; तत्काल या उसी दिन समाप्त हो जाता है । घास का तिनका या वेंत शीघ्र नम जाता है वैसे ही इस कषाय के मान वाले में नम्रता भी स्वाभाविक होती है । बा स, काष्ट वगेरे के छीलन में जो मोड होता है वह सहज सीधा हो सकता है वैसे ही इस कषाय के माया के साथ सरलता स्वाभाविक होती है । जिस तरह हल्दी का र ग धूप में रखने पर शीघ्र उड जाता है वैसे ही इस कषाय वाले का लोभ मानस भी शीघ्र पलट जाता है ।

इस प्रकार अन तानुब धी आदि चारों प्रकार के क्रोध मान माया लोभ आदि के कुल १६ भेद होते हक्त । ये सभी कषाय एक ही व्यक्ति में पाये जा सकते हक्त, क्रम अक्रम से इनका परिवर्तन होता रहता है । तथापि प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान वाले के १६ कषाय, चौथे सम्यग्दृष्टि गुणस्थान वाले में १२ कषाय(अन तानुब धी नहीं), पाँचवें श्रावक गुण-स्थान में ८ कषाय(अप्रत्याख्यानी भी नहीं) और स यम के छट्ठे गुण-स्थान से नवमे गुणस्थान तक ४ स ज्वलन के कषाय ही होते हक्त । दसवें गुणस्थान में स ज्वलन का एक लोभ मात्र रहता है, क्रोध, मान, माया वहाँ नहीं रहते हक्त । उसके बाद ११ से १४ गुणस्थान में कषायोदय होता ही नहीं है, वे वीतराग कहलाते हक्त। स क्षेप में अन तानुब धी कषाय समकित घातक, अप्रत्याख्यानी कषाय देशविरति में बाधक, प्रत्या-ख्यानावरण कषाय सर्वविरति रूप स यम का अवरोधक तथा स ज्वलन कषाय वीतरागता में बाधक होता है । ज्ञान एव अभ्यासपूर्वक वैराग्य भावों की वृद्धि करते हुए सभी कषायों से मुक्ति प्राप्त करना ही मोक्ष साधना का मुख्य अ ग है ।

कषाय स ब धी यह समस्त वर्णन इस चौथे स्थान में है कि तु अलग-अलग उद्देशक या स्थलों में प्रकीर्ण रूप से उपलब्ध होता है । यहाँ उन सभी का विवरण एक साथ कर दिया गया है ।

प्रश्न–६ : इस उद्देशक में चौभ गियों के द्वारा क्या क्या समझाया है ?

उत्तर– चौभ गियों में तात्त्विक दृष्टि से अनेका तिक विचारों का पोषण किया गया है । पदार्थ, व्यक्ति एक ही प्रकार के खराब या अच्छे नहीं होते हक्त, उनमें अच्छाई खराबी सापेक्ष न्यूनाधिक होती है। इसके लिये चौभ गियों में प्रत्येक तत्त्व को चारों विकल्पों से स्वीकारा गया है ।

उपदेश और प्रेरणा दृष्टि भी इन चौभ गियों में प्राय: रही हुई है ।

चार भ गों में से एक भ ग सर्व श्रेष्ठ होता है तदनुसार बनने की, अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने की प्रेरणा लेकर, मानव को या साधक को उस अपेक्षा वाले श्रेष्ठ गुण से अपने जीवन को उन्नत बनाने का लक्ष्य निश्चित्त कर, स स्कार और अभ्यास से वैसा गुणवान बनकर मानवभव को सार्थक करना चाहिये ।

सूत्र २,३,४ में– (१) ऊँचे और छायादार, (२) ऊँचे और गुणयुक्त (फल फूल और अनेक प्रकार से उपयोगी) तथा (३) ऊँचे और रूप सु दर वृक्षों की उपमा देकर उसी प्रकार मानव भी–(१) ऐश्वर्य युक्त और अन्यों के आश्रयभूत (२) ऐश्वर्य स पन्न और दान शील आदि अनेक गुणों से स पन्न तथा (३) ऐश्वर्य स पन्न और रूप स पन्न होते हक्त । इन तीन+तीन चौभ गियों में एक-एक श्रेष्ठ भ ग–विकल्प हक्त । इसके अतिरिक्त प्रतिपक्षी और मिश्र गुण वाले तीन तीन विकल्प और कहे हक्त यों ६ चौभ गियों से १२ प्रकार वृक्षों के और १२ प्रकार मनुष्यों के स्वीकार किये गये हक्त । अर्थात् उन्नत-प्रणत(अवनत) सभी प्रकार के मानव होते है पर तु महत्व श्रेष्ठ भ ग वाले पुढषों का होता है ।

वृक्ष के साथ तुलनात्मक छ चौभ गियों के अन तर सूत्र–५ में सात चौभ गियाँ केवल पुढष की कही गई है, यथा– (१) ऐश्वर्ययुक्त के साथ मनयुक्त (दिलवाला) (२) इसी प्रकार ऐश्वर्य के साथ श्रेष्ठ स कल्प (३) प्रज्ञा (४) दृष्टि (५) शीलाचार (६) व्यवहार (७) और श्रेष्ठ पराक्रम की चौभ गी से पुढष को उदारदिला, सु दर विचार वाला, प्रज्ञा स पन्न, दृष्टि स पन्न, शील-व्रतनियम सदाचरण युक्त, व्यवहार कुशल एव पुढषार्थी-पराक्रमी(तप स यम में पराक्रमी) बनने की प्रेरणा दी गई है एव अनेका तिक विचारों के स स्कार भी दिये गये हक्त कि जगत में क जूस दिलवाले कुविचारवाले, बुद्धिहीन, शीलरहित आदि पुढष भी होते हक्त । कुछ भी नास्ति या अनहोनी नहीं है । ऐसा सर्व सापेक्ष ज्ञान आत्मा को कुतुहल, च चलता और रागद्वेष से बचाकर ग भीर, तटस्थ एव समभावी बनने में बहुत सहायक बनता है ।

इन १३ चौभ गियों के समान ही ऋजु और वक्र से स ब धित १३ चौभ गियाँ सूत्र–६ में कही है । वहाँ ऊँचे वृक्ष और ऐश्वर्य युक्त मनुष्य की जगह सीधे वृक्ष और सरल पुढष को लेकर प्रतिपक्ष में टेढे वृक्ष और वक्र पुढष के कथन से १३ चौभ गियाँ बनाकर यह

सद्प्रेरणा की गई है कि जैसे पूर्व सूत्रों में मौलिक ऐश्वर्य स पन्नता के साथ दिलावरता, बुद्धिमत्ता, व्यवहारकुशलता आदि होना श्रेष्ठ कहा है । वैसे ही यहाँ पर सरलता युक्त पुढष के साथ दिलावरता आदि गुणों से स पन्न व्यक्ति को श्रेष्ठ कहा है और मानव को तथा साधकों को सरल निष्कपट होकर अनेक गुणों से आत्मा को भावित करने की प्रेरणा दी गई है ।

इसके बाद सूत्र-९ में शुद्ध अशुद्ध आदि वस्त्र की चौभ गी के साथ मनुष्य की तुलनात्मक चौभ गी है । वे भी उपरोक्त वृक्ष के कथन के समान है । इसमें सरलता की जगह वस्त्र की शुद्धता को लेकर पुढष को शुद्ध हृदयी कहते हुए १३ चौभ गियाँ समझना । पुढष इन चौभ गियों अनुसार १३×४=५२ प्रकार के शुद्ध-अशुद्ध हो सकते हक्त । कि तु अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लक्ष्य वाले पुढषों-साधकों को शुद्ध-पवित्र हृदय वाले उत्तमोत्तम १३ भ गों के समान श्रेष्ठ गुणयुक्त बनना चाहिये । इस प्रकार ऐश्वर्य, सरलता, शुद्धता यों तीन मूल गुणों की प्रेरणात्मक १३×३=३९ चौभ गियाँ कही गई है ।

सूत्र-११ में सत्य और असत्य से चौभ गी करते हुए फिर परिणत आदि पराक्रम तक १० चौभ गियाँ पुढष की कही है । यहाँ प्रथम चौभ गी में पहले सत्य में भूतकाल और दूसरे सत्य में वर्तमान काल को ग्रहण किया गया है । यथा- **सच्चे णाम एगे सच्चे**- कोई पुढष पहले सत्य आराधक था और बाद में भी सत्य आराधक है । इसके बाद की नव चौभ गियों में **सच्चे णाम एगे सच्चपरक्कमे**- कोई सत्याराधक भी है और सत्य में पराक्रम करने वाला भी है । इसी तरह शेष सभी चौभ गियाँ समझनी चाहिये ।

शुद्ध-अशुद्ध वस्त्र में त तुओं और मेल की अपेक्षा है वैसे ही सूत्र-१२ में वस्त्र की १३ चौभ गियाँ और भी कही है वे स स्कार की अपेक्षा शुचि-अशुचि अर्थात् पवित्र-अपवित्र वर्ण-ग ध की अपेक्षा कही है । वैसे ही पुढष के शरीर उत्तम वर्ण, ग ध, रस वाले या उसके कुल, जाति आदि उत्तम होवे; इस प्रकार के मूल गुण के साथ दिलावरता आदि समझकर १३ चौभ गियाँ समझ लेनी चाहिये ।

सूत्र ४४ में फल की एक चौभ गी से तुलनात्मक पुढष की एक चौभ गी कही है । उसमें कच्चे फलों के अम्ल और मधुर होना

तथा पक्के फलों का भी अम्ल या मधुर होना स्वीकार किया गया है । पुढष में वय और ज्ञान से परिपक्वता-अपरिपक्वता बताकर गुणों के अविकास-विकास का कथन किया गया है । पुढष की इस चौभ गी में गुणों के विकास वाले दोनों भ ग श्रेष्ठ होते हक्त । वय या ज्ञान अल्प हो तो भी गुणों का विकास व्यक्ति को महत्त्वशील बना देता है । इसलिये हर स्थिति में मानव को अपने गुणों के विकास में ही प्रयत्नशील एव अभ्यासरत होना चाहिये ।

सूत्र ४९ में पुढष की एक चौभ गी से बताया है कि पुढषों के अपने विभिन्न स्वभाव के कारण किसी का मिलन तो सुखप्रद या मधुर होता है कि तु साथ में विशेष रहना अमधुर या दुःखमय हो जाता है । इस प्रकार इस चौभ गी में जिसका मिलन भी और सहवास भी सुखप्रद हो ऐसी प्रकृति या विवेक आदि गुणस पन्न व्यक्ति श्रेष्ठ होते है । इस चौभ गी से यह प्रेरणा दी गई है कि व्यक्ति अपना स्वभाव और व्यवहार इतना सु दर सुघड बनावे कि किसी के साथ क्षणिक मिलन हो अथवा दीर्घकाल रहना भी हो तो परस्पर उभय को सदा सुखदायी वातावरण बना रहे ।

सूत्र-५०,५१,५२ की तीन चौभ गियाँ में- (१) अपने या पराये पाप-दोष को देखना (२) अपने-पराये दोषों की चर्चा करना अथवा बढावा देना (३) अपने-पराये दोषों का उपशमन करना या उपेक्षित करना । प्रतिपक्ष में दोष नहीं देखना, बढावा नहीं देना, उपशमन नहीं करना आदि के द्वारा पुढषों के विकल्प कहे हक्त । इस प्रकार प्रथम चौभ गी में अपने दोष देखने वाला और पराये दोष नहीं देखने वाला पुढष श्रेष्ठ है । दूसरी चौभ गी में अपने पराये किसी के दोषों को बढावा नहीं देने वाला श्रेष्ठ है । तीसरी चौभ गी में स्व-पर दोनों के दोषों को विवेकपूर्वक उपशा त-न्यून-न्यूनतम करने वाला श्रेष्ठ है ।

सूत्र ५३ में विनयपूर्वक खडे होने एव दूसरे को प्रेरणा देने स ब धी चौभ गी है । इसी प्रकार व दना, सत्कार, सन्मान, पूजा आदि करना, वाचना देना, वाचना लेना, प्रश्नचर्चा करना, सूत्रार्थ विवेचना; ये कार्य करने कराने स ब धी कुल नव चौभ गियाँ कही है । ये सब विनय तथा ज्ञान से स ब धित श्रेष्ठ गुण हक्त । इन्हें स्वय करने वाला या अन्य को कराने वाला पुढष श्रेष्ठ होता है । ऐसा समझकर मोक्ष

साधक को अपनी योग्यता, क्षयोपशम अनुसार इन गुणों का उभयात्मक दृष्टि से धारक बनने का प्रयत्न करना चाहिये अर्थात् स्वय भी विनय, ज्ञान गुणों से स पन्न बने तथा अन्यों को भी विनय, ज्ञान गुणों से स पन्न बनने का प्रेरक एव सहायक बनना चाहिये । विवेक युक्त ये समस्त कर्तव्य स्व-पर-उभय के जीवन विकास के लिये एव कर्म निर्जरा के लिये होते हक्त ।

सूत्र ५४ में मूलसूत्रधारक और अर्थधारक की अपेक्षा चौभ गी कही है। उसमें उभय धारक श्रेष्ठ है और उभय से हीन, ज्ञान की अपेक्षा अनुत्तम होता है । बुद्धिमान, प्रज्ञाशील, सु दर क्षयोपशम वालों को सूत्र-अर्थ उभय धारक बनने में प्रयत्नशील एव कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिये । दीक्षा के बाद साधक को अध्ययनकाल तक अन्य लक्ष्यों को प्रमुखता न देते हुए योग्य श्रुत-अर्थ का धारक बन जाना चाहिये ।

सूत्र–८१ में चौडे या छाने अर्थात् प्रगट एव गुप्त रीति से दोष सेवन करने या नहीं करने वालों की चौभ गी कही है। उसमें दोनों तरह से दोष सेवन नहीं करने वाले श्रेष्ठ हक्त, बाकी तीनों ही दोष सेवन के कारण हीनाधिक दोषी बनते हक्त ।

सूत्र–१०१, १०२ में कूटाकार गृह से पुढष की और कूटाकार शाला से स्त्री की तुलना युक्त कुल चार चौभ गियों का कथन है । यहाँ कूटाकार गृहशाला को परकोटा एव द्वार से गुप्त अगुप्त कहा है । स्त्री-पुढष को वस्त्राच्छादित या मर्यादाशील होने के साथ गुप्तेन्द्रिय-जितेन्द्रिय होना कहा गया है । इन चौभ गियों में स्त्री-पुढषों के लिये मर्यादाशील और जितेन्द्रिय होना श्रेष्ठ बताया गया है ।

प्रश्न–७ : इस उद्देशक में उपमा द्वारा पुढष या साधक को किस प्रकार उपमित किया गया है ?

उत्तर– सूत्र–१३ में म जरी और उसके फल का कथन किया है कि– (१) आम्रफल की म जरी सीमित काल या दीर्घकाल सुरक्षा करने पर सु दर फलदायी होती है । (२) ताड फल की म जरी ल बे समय के बाद भी कठिनाई से सामान्य फलदायी होती है । (३) लताफल की म जरी अल्प समय में इच्छित सामान्य या विशेष फलदायी होती है । (४) मेंढ विषाण नामक वनस्पति की म जरी ल बे समय के बाद भी अखाद्य फल को देती है । वैसे ही मनुष्य भी सेवा करने वाले को भिन्न-भिन्न

तरह से उपकारक बनते हक्त अर्थात् १.कोई उचित समय में वेतन ईनाम वगैरह देते हक्त २.कोई देर से देते हक्त, ३.कोई मीठी बाते ही बनाते हक्त, ४.कोई सेवा की तुलना में अल्प मेहनताना–ईनाम देते हक्त । इस प्रकार जो मनुष्य सेवक को सद्व्यवहार के साथ उचित समय स तोषकारक मेहनताना देने रूप फलदायी होते है, वे सर्वश्रेष्ठ मानव होते हक्त ।

सूत्र–१४ में लकडी खाने वाले घुण चार प्रकार के कहकर वैसे चार भिक्षाचर(श्रमण) कहे हक्त– (१) छाल खाने वाले (२) छाल का अ तरभाग(गिर) खाने वाले (३) काष्ट(उपर से) खाने वाले (४) काष्टसार(लकडी का अ तरदल) खाने वाले । इसी तरह भिक्षु भी गृहस्थ के घर से सामान्य–विशेष विविध प्रकार के आहार ग्रहण करने वाले होते हक्त ।

इसके बाद यह उपमित किया गया है कि छाल, अ तरछाल, काष्ट और काष्टसार खाने वाले भिक्षु का तप कर्मक्षय करने में छाल, अ तरछाल, काष्ट या काष्ठसार के समान होता है । इस प्रकार भिक्षु के आहार के साथ उसके तप से कर्मक्षय को उपमित किया गया है, यथा– (१) कोई भिक्षु काष्ट सार के समान षट्रस स्वादुभोजन खाकर म द तप करने वाला होता है, कोई उग्र तप करने वाला होता है । (२) कोई भिक्षु छाल समान रूक्ष आय बिल का भोजन करके म द तप करने वाला होता है और कोई उग्र तप करने वाला होता है । इस प्रकार सभी विकल्प समझ लेने चाहिये । यहाँ भिक्षु के लिये छाल= आय बिल भोजन । अ तरछाल = नीवी । काष्ट = धार विगय त्याग । काष्ट सार = विगय युक्त भोजन । छाल जैसा आहार करने वाले की कर्मभेदन शक्ति सार खाने वाले घुण के समान अधिक होती है । सार जैसा विगय युक्त आहार करने वाले की कर्मभेदन शक्ति छाल खाने वाले घुण के समान अल्प होती है । इसी प्रकार शेष दोनों प्रकार के खाने वाले की कर्म भेदन शक्ति तदनुसार मध्यम होती है ।

इस उपमा का सार यह है कि सामान्य आहार करने वाला कर्म क्षय करने की अधिक क्षमता रखता है, सरस स्वादु भोजन करने वाले की कर्म भेदन शक्ति म द होती है । अतः कर्म क्षय करने की साधना में उपस्थित भिक्षु को अच्छा अच्छा खाने मात्र की ढचि वाला न बनकर नीरसाहारी, तुच्छाहारी बनने का प्रयत्न भी रखना चाहिये ।

सूत्र ७९ में लकडी, त तु, लोहा और पत्थर में अनेक प्रकार की हीनाधिकता-विविधता होती है, वैसे ही पुढष भी श्रेष्ठ, कनिष्ट अनेक प्रकार के होते हक्त । (१) काष्ट = बावलिया, सागौन, सीसम, च दन की लकडी इनके मूल्य में कितना ही अ तर होता है । (२) रू या कपडा= सूती, ऊनी, रेशमी, ढाका की मलमल आदि की मुलायमता में और कीमत में अ तर होता है । (३) लोहा = सामान्य लोहा, तलवार का लोहा, सूक्ष्म स शोधित तार में विविध अ तर होते हक्त । (४) पत्थर = सामान्य पत्थर, गुलगुचा पत्थर, खनिज धातु के पत्थर और रत्नों के पत्थर, इनमें परस्पर बहुत अ तर होता है । इसी प्रकार स्त्रियों और पुढषों में अनेक विविध अ तर होते है । (१) काष्टवत्= उदारता आदि गुणयुक्त पदवीयुक्त पुढष च दन काष्ट समान है और दूसरों को दुःख-पीडा देने वाला बावलिये के समान है । (२) त तु वस्त्रवत्= कढणायुक्त हृदयवाला कौमल वचनवाला पुढष रेशमत तु वस्त्र सम है और कठोर पुढष ऊँट के रेशे सम है । (३) लोहवत्= कष्ट उपसर्ग सहने में समर्थ पुढष तलवार या तार के लोह समान है और कष्ट सहने में असमर्थ पुढष सामान्य काटयुक्त लोह सम है । (४) पत्थरवत्= लब्धिस पन्न व्यक्ति पारसमणि सम है और दीन-दरिद्र व्यक्ति सामान्य पत्थर के समान है । यहाँ पुढष के समान स्त्री के अ तर भी समझ लेना ।

प्रश्न-८ : इस उद्देशक में अन्य भी क्या-क्या विषय कहे गये हक्त ?

उत्तर– उपरोक्त प्रश्नों में कहे गये विषयों के अतिरिक्त विषय इस प्रकार है- (१) चार प्रकार के पुत्र- पिता से गुण, यश में आगे नीकलने वाले, पिता के समान, पिता से न्यून और कुल को कल कित करने वाले । (२) देवों की स्थिति-दर्जा चार प्रकार का है- सामान्य देव, इन्द्र-सामानिक देव, त्रायस्त्रि सक-पुरोहित देव, आभियोगिक-सेवक देव (३) देव-देवी, मनुष्य-मनुष्याणी, तिर्यंच-तिर्यंचाणी ये कोई भी आपस में स वास-कुशील सेवन कर सकते हक्त । अर्थात् देव मनुष्याणी के साथ एव मनुष्य देवी के साथ भी स वास हो सकता है अर्थात् मोहकर्म के उदय की विचित्रता से कुछ भी स भव हो सकता है । यहाँ इस विषय की चौभ गियाँ कही है । (४) क्रोध मान माया लोभ, ये चार के निमित्त से जीव कर्मस चय आदि यावत् उदित कर्म की निर्जरा भी करता है ।

यहाँ तीनों काल और २४ द डक से भी वर्णन किया गया है अर्थात् चोवीस द डक के जीवों ने कर्म बा धे थे, बा धते हक्त और बा धेंगे । इसी प्रकार चय-उपचय आदि सभी क्रिया समझ लेना । (५) काया, भाषा और भाव की सरलता, यह सत्य रूप है और उनकी वक्रता वह असत्य रूप है । वैसे ही अविवाद यह सत्य रूप है और विवाद असत्य रूप है । (६) लोकपाल देव भवनपति में ८० और वैमानिक में ४० कुल १२० हक्त । एक-एक इन्द्र के ४-४ लोकपाल होते हक्त । व्य तर-ज्योतिषी में लोकपाल नहीं होते । (७) चार पाताल कलशों के स्वामी देवों को वायुकुमार जाति का बताया है । (८) ढचक द्वीप में चार विदिशाओं में रहने वाली दिशाकुमारी देवियों को यहाँ विद्युत्कुमारी देवियाँ कहा है । वे प्रभु के जन्मोत्सव समय पर हाथ में दीपक लेकर खडी रहती है । ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में इन्हें दिशाओं से स ब धित होने से दिशाकुमारी महत्तरिकाएँ कहा गया है । (९) शक्रेन्द्र के मध्यम परिषद के देवों की और ईशानेन्द्र के मध्यम परिषद की देवियों की ४-४ पल्योपम की स्थिति है । (१०) प्रायश्चित्त चार-ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा समाचारी स ब धी प्रायश्चित्त । अथवा- प्रत्येक दोष का, अनेक स युक्त दोष का, चालु प्रायश्चित्त के ऊपर आरोपित चढाया जाने वाला और कपट युक्त आलोचना का विशेष प्रायश्चित्त ।

(११) महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर तथा भरत एरावत क्षेत्र के मध्यम २२ तीर्थंकर चातुर्याम धर्म का कथन करते हक्त । जिसमें चौथा बहिद्धादान वेरमण=स यम मर्यादा से बाह्य वस्तु ग्रहण त्याग का होता है, जिसमें स्त्री-परिग्रह आदि समस्त स यम के अयोग्य पदार्थग्रहण का त्याग किया जाता है । (१२) जिन-केवली के प्रथम समय से ही ज्ञानावरणीय आदि ४ कर्म क्षीण होते हक्त और वेदनीय आदि ४ कर्म उदय में होते हक्त, वे चारों कर्म सिद्ध होने के प्रथम समय में एक साथ क्षीण हो जाते हक्त । (१३) हास्य के योग्य वस्तु देखने से, वैसी भाषा बोलने से, वैसे शब्द सुनने से और वैसी घटनाओं के स्मरण से हास्य पैदा होता है । (१४) चार प्रकार के नौकर- दैनिक वेतन वाले, यात्रा का पूर्ण वेतन वाले, मासिक आदि वेतन वाले तथा कार्य के ठेके से मेहनताना वाले । (१५) १८ इन्द्र(व्य तर के १६ तथा च द्र और सूर्य),

८८ लोकपाल(भवनपति के २० इन्द्रों के ८० तथा वैमानिक दो इन्द्रों के ४+४=८ लोकपाल)और ८८ ग्रह, इन सब के ४-४ अग्रमहिषी देवियाँ है । कुल-१८+८०+८+८८ = १९४×४=७७६ अग्रमहिषीयों के नाम यहाँ सूत्र में कहे गये है । (१६) गो रस स ब धी ४ विगय-दूध, दहीं, घी, मक्खन । चिकनी विगयचार-तेल, घी, चर्बी, मक्खन । महा-विगय चार- शहद, मक्खन, मद्य, मा स । (१७) अ गबाह्य ४ प्रज्ञप्ति सूत्र- च द, सूर्य, ज बूद्वीप और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति । द्वीपसागर प्रज्ञप्ति ३२ सूत्र में नहीं गिनी है । इसका नाम न दी सूत्र में भी है और यहाँ भी है तथा यह शास्त्र प्रकाशित उपलब्ध भी है । उसका वर्णन जीवाभिगम सूत्र में समाविष्ट हो जाता है क्यों कि जीवाभिगम सूत्र में समस्त द्वीपसमुद्रों का वर्णन तीसरी प्रतिपत्ति में है ।

इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों के विषयों का तथा इस शास्त्र के पूर्व अध्यायों में आये विषयों का तीन में १ मिलाकर ४ की स ख्या से कथन है । इन विषयों का विवरण उन उन स्थानों में, आगमों में देखना चाहिये । ये विषय इस प्रकार है- भाषा, पडिमा, वनस्पति, ध्यान वर्णन, अस्तिकाय, प्रणिधान, दृष्टिवाद, काल, द्रव्यादि स सार, पुद्‌गल परिणाम, दुर्गति-सुगति, द्रव्यादि अवगाहना ।

सूत्र-१ और ५३ में आये विशिष्ट शब्दों के अर्थ- **स जमबहुले**= छकाय रक्षा आदि रूप १७ प्रकार का स यम । **स वरबहुले**= मिथ्यात्वादि आश्रव त्याग । **समाहिबहुले**=रागद्वेष के प्रस गों में मन-वचन-काया से समभाव, समाधि भावों की प्रचुरता । **लूहे**=काम आदि विकारों से, मोहभावों से रहित(स सार स्नेह रहित), स यमवान । **तीरट्ठी**=भवसागर तिरने का आका क्षी, मोक्षार्थी । **उवहाणव** =आय बिल आदि तप पूर्वक सूत्र अध्ययन करने वाला । **दुक्खक्खवे**=दु:ख का मूल कर्म है उस का क्षय करने वाला । **तहप्पगारे तवे**=बाह्य-आभ्य तर घोर तप । **तहप्पगारा वेयणा**=घोर उपसर्ग या रोगजन्य वेदना । **अब्भुट्‌ठेइ**=हाथ जोडकर विनयपूर्वक खडे होना(गुढ आदि के समीप आने पर) । **व दइ**=बारह आवर्तनयुक्त अथवा तीन आवर्तनयुक्त व दन करना । **सक्कारेइ**=वचन से सम्मान देना । **सम्माणेइ**=बहुमान प्रकट करना, गुणस्तुति करना । **पूएइ**=आहारादि, वस्त्रादि अर्पण करना ।

स्थान-४ : उद्देशक-२

प्रश्न-१ : इस उद्देशक में मुख्य किन-किन विषयों का प्रतिपादन है ?

उत्तर- इसमें चार की स ख्या को लेकर प्रथम उद्देशक के समान ही अनेक विषयों का अक्रमिक स ग्रह किया गया है, यथा- प्रतिस लीनता, हस्ती, विकथा, धर्मकथा, अतिशय ज्ञानोत्पत्ति-अनुत्पत्ति, स्वाध्याय-अस्वाध्याय, लोक स स्थिति, गर्हा, निर्ग्रंथ, तमस्काय, कषाय स्वरूप, स सार-आयु-भव, आहार, कर्मब ध, जीव उपक्रम एक-अनेक, सर्व, पर्वत, कूट, क्षेत्र, जघन्यपदे अरिह त आदि, मेढ पर्वत के वन, अभिषेकशिला, चूलिका, अ तरद्वीप, पातालकलश, आवासपर्वत, वेल धर-अणुवेल धर, लवणसमुद्र, धातकीख ड, भरतक्षेत्रादि, न दीश्वरद्वीप, सत्य, आजीविक-तप, स यम, त्याग, अकि चनता इत्यादि ४ की स ख्या वाले विषयों का कहीं विस्तृत वर्णन कहीं नाम मात्र कथन है । इसके सिवाय पूर्ववत् अनेक चौभ गियों, उपमाओं द्वारा पुढष के गुणों, प्रकारों का वर्णन है।

प्रश्न-२ : स्त्रीकथा आदि विकथाओं की विशद् व्याख्या क्या है ?

उत्तर- मोक्षसाधना में अर्थात् धर्मकरणी में जो कथा-वार्ता नहीं की जाती उसे विकथा कहते हक्त । जो आत्महित में अनुपयोगी वार्ता होती है वे विकथा है, जिससे आत्मा में राग या द्वेष की परिणति होती है वैसी वार्ता-वार्तालाप विकथा है । विकथा के मुख्य ४ प्रकार हक्त- (१) स्त्री स ब धी(पुढष स ब धी)(२)भोजन स ब धी(खान-पान स ब धी)(३) देश स ब धी (४) राजा स ब धी ।

(१) स्त्री कथा- स्त्रियों के विभिन्न स्वभावों की, आदतों की, उनके कुल-व श की, चाल-चलन की, अल कारो की, आभूषणों की, शरीर के अच्छे खराब की, अ गोपा गों की, रूप-र ग की, इन्द्रियों की, सजावट की, वेशभूषा की, वस्त्रों की, बालों की इत्यादि विषयों की चर्चा, निंदा, प्रश स, वाद-विवाद वगेरे ये सभी वार्ता विकथा रूप है, आत्म साधना में इन चर्चा से कोई लाभ नहीं है ।

(२) भोजन-भक्त कथा- साधु को जीवन निर्वाह के लिये, आयुष्य चलाने के लिये आहार करना जरूरी है । इसलिये यथासमय भिक्षा के नियमों के पालन के साथ आहार पानी लाकर उदरपूर्ति करना जरूरी

होता है उतना करना ही पडता है तथा स्वय के और अन्य साथी साधुओं के स्वास्थ्य, स यम, ब्रह्मचर्य समाधि का ध्यान रखने हेतु आहार के गुणधर्म का ज्ञान अनुभव स्वय को रखना होता है और आवश्यक होने पर अन्य योग्य साधु को अनुभव ज्ञान देना होता है ।

भोजन स ब धी विकथा इस प्रकार है– खाद्यसामग्री के अच्छे-खराब की चर्चा, पकाने की विधि-अविधि की कुविधि की चर्चा, अपने पस द-नापस द की रागद्वेषात्मक चर्चा, खुद के स सार अवस्था के खान-पान की चर्चा, क जूसों के, धनवानों के, गरीबों के खान पान की चर्चा, खाद्यपदार्थों के मूल्य की चर्चा एव उनके स्वादिष्ट होने की चर्चा । इस प्रकार की चर्चाओं में साधना का समय व्यर्थ खर्च होता है एव रागद्वेष, आर्तरौद्र ध्यान के प्रस ग से कर्मब ध होता है ।

(३) देशकथा– देश विदेश, ग्राम नगरों के वशावट, रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, व्यवस्थाओं, कुव्यवस्थाओं, दर्शनीय स्थानों, प्रथाओं, भाषाओं की चर्चा, निंदा, प्रश सा, राग-द्वेषमय वाद-विवाद, यह सब देश कथा रूप है एव कर्म ब धनकारी है ।

(४) राजकथा– राजाओं के गुणों-अवगुणों की, राज्य स चालन के अच्छे-खराब होने की, कायरता-शूरवीरता की, ठाठ-माठ की, ऐश्वर्य की, राजभ डार की, सैना-युद्ध की, हार-जीत की इत्यादि चर्चाएँ, निंदा-विकथा, वाद-विवाद, ये परस्पर रागद्वेष वर्धक होते हक्त । ऐसी कथाओं मे कभी किसी का मनदु:ख होता है, कभी क्लेश, बोलचाल, झगडे भी होते ह्क्ष। ये सभी विकथाएँ धर्माचरण साधना में पूर्णत: वर्जन करने योग्य होती है । इन विकथाओं स ब धी विषयों की चर्चा के अतिरिक्त इन्हें अपने चि तन-मनन का विषयभूत बनाना अर्थात् इन विषयों में व्यक्तिगत चि तन विचारणा करना भी आत्मसाधक के लिये वर्ज्य समझना चाहिये । जिसका स केत प्रश्नव्याकरण सूत्र के चौथे स वर द्वार में मिलता है ।

प्रश्न–३ : धर्मकथाएँ कौन सी होती है और उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर– मोक्ष साधना में एव आत्मगुणों के विकास में सहायक, स्व-पर हितकारक, वार्ता-चर्चा, उपदेश, विचारणा, प्रेरणा ये सभी धर्मकथाएँ कही जाती है । इसके मुख्य ४ प्रकार है– (१) जिनमत में स्वमत में स्व आत्मा को तथा अन्यों को आकर्षित करने वाली चर्चा, उपदेश,

निरूपण, प्ररूपण; वह **आक्षेपिणी** धर्मकथा कही जाती है। (२) अन्य मिथ्याधर्मों से, मिथ्या सिद्धा तों से, पर पराओं से, अ धविश्वासों से, भ्रमणाओं से आत्मा को हटाना, चित्त को उसमें से चलित करना, सत्यासत्य का भेदज्ञान होकर असत्य से हटने को तत्पर कराने वाली कथा-वार्ता चर्चा-विचारणा; यह **विक्षेपिणी** धर्मकथा कही जाती है। (३) जीवन में वैराग्य भावों को पैदा करने वाली, स सार से अढचि, मोक्ष में लगन पैदा करने वाली कथा-वार्ता, चर्चा, प्रेरणा, उपदेश, अनित्य आदि चार भावना वर्णन; यह **स वेगिनी** धर्मकथा कही जाती है ।(४) शरीर के प्रति, सुख-भोगों के प्रति उदासीनता पैदा करने वाली, पुण्य-पाप के परिणाम की चर्चा द्वारा स यम, व्रत-प्रत्याख्यान की ढचि की वृद्धि करने वाली, कष्ट-उपसर्गों के समय सहिष्णुता पैदा करने वाली कथा-वार्ता, चर्चा, प्रेरणा, उपदेश, अशुचि भावना आदि; ये **निर्वेदिनी** धर्मकथा कही जाती है।

प्रस्तुत शास्त्र में (१) **आक्षेपिणी** धर्मकथा के ४ प्रकार कहे हक्त– १.आचार की चर्चा से अथवा आचार स ब धी विवेचना से, २. व्यवहार कुशलता से, व्यवहार की शुद्धि से, श्रेष्ठ व्यवहार से, ३. व्यक्ति के स शयों के स तोषकारक समाधान से, ४.अनेक अपेक्षाओं से दृष्टा तों से एव शास्त्रों के उद्धरणों से वस्तु तत्त्व के स्पष्टीकरण से व्यक्ति को या पर्षदा को शुद्ध–धर्म के प्रति आकृष्ट करने वाला वक्तव्य-उपदेश आक्षेपिणी धर्मकथा है ।

(२) **विक्षेपिणी** धर्मकथा के ४ प्रकार कहे हक्त– १. श्रोता या पर्षदा के समक्ष स्वसिद्धा त, सत्यदृष्टि, सत्य विचारणा की सम्यक् विवेचना के साथ अशुद्ध दृष्टि-विचारणा की असम्यकता के स्पष्टी करण से, २. अशुद्ध दृष्टि, विचारणा, अन्य सिद्धा त का कथन करके सत्य तत्त्व के स्पष्टीकरण पूर्वक उसकी महत्ता दर्शावे । ३.वाद-प्रतिवाद के प्रस ग में कभी सम्यक्वाद का क्रमबद्ध कथन करके मिथ्यावाद से तुलना दर्शावे, ४. कभी मिथ्यावाद का पहले कथन करके फिर उस कथन के तत्त्वों से सम्यक्वाद के तत्त्वों की तुलना दर्शाकर सम्यक्वाद की स्थापना करे । इस प्रकार से कथा, वक्तव्य, उपदेश एव सम्यक्वाद-चर्चा करने से परिषद, श्रोता या वादी अपनी असम्यक्दृष्टि, विचारणा से चलित होकर सम्यक् विचारणा के अभिमुख बनता है । इस प्रकार

विवेक और बुद्धि के साथ निरूपण करना यह विक्षेपिणी कथा है ।

(३) **स वेगिनी** धर्मकथा के ४ प्रकार हत्त– १. इहलौकिक पदार्थों, साधनों, स योगों की असारता–विड बना का निरूपण । २. पारलौकिक(तीन गति स ब धी) असारता–विड बना का निरूपण । ३. शरीर की असारता–विडंबनाओं का निरूपण । ४. अन्य पदार्थों स योगों की विनश्वरता का निरूपण । इस प्रकार की कथा-वार्ता स्व-पर में वैराग्य वासित करने वाली होने से स वेगिनी कथा कही गई है ।

(४) **निर्वेदिनी** धर्मकथा के ४ प्रकार हत्त– इस कथा में पाप के दारूण परिणामों का दिग्दर्शन करवाकर स सार एव स सार के सुखों तथा शरीर के प्रति आसक्ति हटाकर उदासीनता पैदा की जाती है । १. इस भव में जेल की यातना, मारपीट प्राप्त करने वाले चोर, परदारगवेषी मानवों के दृष्टा तो का कथन । २. शिकार, प चेन्द्रियवध, मा साहार करने वाले, महापरिग्रही–धनस पत्ति राज्य के स्वामी मरकर नरक के अति दाढण दु:खों को भोगते हत्त, ऐसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, रावण, क स आदि के जीवन का एव दु:खविपाक सूत्रानुसारी कथाओं का निरूपण । ३. पूर्वभवों के पापफल द्वारा गर्भ से लेकर जीवनपर्यंत दु:ख दरिद्रता भोगने वालों के जीवन का दिग्दर्शन । ४. पूर्वभवों के पापोदय से कौवे, कुत्ते, गीध तथा मद्य-मा साहारी बनकर पुन: नरकादि भवों में दुर्गतियों की पर परा में दु:खी होने का निरूपण ।

इसी प्रकार पुण्य, सत्कर्म, धर्माचरण के फल का प्रतिपादन करके त्याग-तपस्या में पराक्रम भाव जागृत किये जाते हत्त, यथा–१. तीर्थंकरों को सुपात्रदान देने वाले इस भव में यशोकीर्ति, स्वर्ण मुद्राओं की वृष्टि का अपार धन प्राप्त करते हत्त । २. स यम साधना करने वाले श्रमण-निर्ग्रंथ तपस्वी साधक स सार परित्त करके आगामी भवों में भी शीघ्र मुक्तिगामी बनते हत्त। ३. पूर्व भवों में स चित पुण्यफल से जीव तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि की सुखसाहिबी और आत्मउत्थान के सुस योग को प्राप्त करता है । ४. च डकौशिक, न दमणियार का जीव मेढक तथा बलदेव मुनि को आहार की दलाली करके हिरण वगैरह तिर्यंच भव में पुण्योपार्जन कर देवगति के सुख सुविधामय जीवन को प्राप्त कर आगे भी आत्मकल्याण का मार्ग सुलभ करते हत्त ।

ये सभी दृष्टा त निर्वेदभाव को पैदा करके धर्मसाधना में, तप तथा

स यम साधना में बलवृद्धि एव उत्साहवृद्धि करते हत्त; स सार और शरीर की आसक्ति से उपर उठने की प्रेरणा देते हत्त । ये दोनों प्रकार के चार-चार भ ग निर्वेदिनी कथा रूप है । तत्त्व यह है कि– साधक पूर्व प्रश्न में कथित विकथाओं से सदा निवृत्त रहे और इस प्रश्नोक्त धर्मकथाओं में तल्लीन रहे । विकथाओ से अढचि नफरत रखे और धर्मकथाओं में रस-ढचि सेवे; यही आत्मगुण विकास का, आत्मकल्याण साधना का निष्क टक मार्ग है ।

प्रश्न–४ : स यम साधना में अतिशय ज्ञान की प्राप्ति किसे होती है और किसे नहीं होती है ?

उत्तर– १. जो चार प्रकार की विकथाओं में स यम जीवन के अमूल्य समय को व्यतीत नहीं करते हत्त । २. जो विवेक–व्युत्सर्ग से आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करते हत्त । यहाँ स यम समाचारी, समिति-गुप्ति में सजगता–सावधानी का कथन **विवेक** शब्द से किया गया है तथा शरीर के ममत्व का त्याग करके तपस्या की वृद्धि करना; कषायों का, अवगुणों का त्याग और मन वचन काया के व्यापार(प्रवृत्ति) को न्यून-न्यूनतम करना आदि का स ग्रह **व्युत्सर्ग** शब्द से किया गया है। स क्षेप में जो स यम-तप में आत्मा को जो भावित करते हत्त। ३. जो पूर्वरात्रि में अर्थात् सोने के समय और अपररात्रि में अर्थात् उठने के समय धर्म जागरण करके आत्मा में धर्म स स्कारों की वृद्धि एव दृढता की स पुष्टि करते हत्त । ४. स यम साधना के आधारभूत इस शरीर को जीवनपर्यंत टिकाने के लिये आहारादि की प्राप्ति करना आवश्यक बनता है । उन पदार्थों की प्राप्ति में जो साधक गवेषणा के सभी आगमिक नियमों का तहदिल से निष्ठापूर्वक पालन करते हुए अचित्त–निर्जीव, निर्दोष, सामान्य वस्तु; अनेक घरों से, सामान्य मध्यम उच्च का भेद-भाव नहीं करते हुए सामुदानिक भिक्षावृत्ति से यथाप्राप्त आहारादि में स तुष्ट रहने की वृत्ति रखते हत्त ।

इस प्रकार इन चार गुणों से स पन्न जीवन बनाने वाले निर्ग्रंथ-निर्ग्रंथियों को अतिशयज्ञान की उपलब्धि होती है । यहाँ अतिशय ज्ञान में–(१) अलौकिक अनुपम मति-श्रुतज्ञान एव अनुभव-अनुमान ज्ञान (२) अवधिज्ञान (३) मन:पर्यवज्ञान (४) केवलज्ञान, इनमें से कोई भी समझना चाहिये ।

इसके विपरीत-१. जो बार बार विकथाओं में समय व्यतीत करते हक्त । २. विवेक-व्युत्सर्ग से आत्मा को भावित नहीं करते हक्त, स यम लक्ष्य में सुस्त हो जाते हक्त । ३. सोते समय और उठते समय आलस-वृत्ति में रह जाते हक्त; आत्मजागरणा से एव धर्म भावनाओं से अ तःकरण को सुवासित, अभ्यस्त करने का लक्ष्य नहीं रखते हक्त । ४. शरीर के प्रति अति लगाव या आशक्ति से अर्थात् शरीरलक्षी दृष्टिकोण मुख्य हो जाने से एव आत्मा में गवेषणा(एषणा समिति) के सम्यक् स स्कारों की पुष्टी नहीं हो पाने से या साथी सहयोगी के प्रभाव से जो एषणा समिति के नियम-उपनियम का सम्यग् पालन न करके ज्यों त्यों इच्छित वस्तु की उपलब्धि में स तुष्ट रहते हक्त अथवा कुछ नियमों में उपेक्षा और कुछ नियमों की प्रतिपालना रूप यथेच्छ वृत्ति से चलने वाले होते हक्त । ऐसे श्रमण-निर्ग्रंथ महाव्रतों में और स यमधर्म में उपस्थित रहते हुए भी अतिशय ज्ञान, दर्शन की प्राप्ति नहीं कर पाते हक्त । तात्पर्य यह है कि इन चार असम्यग् आचरणों वाले साधक को अधिक पुढषार्थ करने पर भी अल्प परिणाम स्वरूप अल्प ज्ञान दर्शन ही उपलब्ध हो पाते हक्त ।

सूत्र का आशय यह है- १. अनेकों को नहीं होने वाले ज्ञान-दर्शन उन योग्य साधकों को पैदा हो जाते हक्त । २. और कईयों को होने वाले ज्ञान-दर्शन भी सूत्रोक्त विपरीत लक्षण वालों को प्राप्त नहीं होते हक्त । यह **समुप्पज्जिउकामे** और **असमुप्पज्जिउकामे** शब्दों का तात्पर्य है ।

प्रश्न-५ : चार प्रकार के आहार कौन-कौन से हक्त ?

उत्तर- समस्त आहार के ४ प्रकार तथा भोज्य पदार्थ के ४ प्रकार यों दो प्रकार से यहाँ ४-४ भेद कहे हक्त । **भोज्यपदार्थ** के चार प्रकार- (१) घी, तेल, मिर्चमसाले आदि से स स्कारित खाद्य पदार्थ, (२) अस स्कारित एव रा धे हुए खीचडी, चावल आदि पदार्थ (३) स्वाभाविक पक्व फल, मेवा आदि (४) कई दिनों रखकर तैयार किये जाने वाले आचार, अथाणा, मुरब्बा आदि पदार्थ । इन चार में सभी खाद्यपदार्थों का समावेश समझ लेना चाहिये ।

समस्त आहार के ४ प्रकार- अशन, पान, खादिम और स्वादिम । इनके अर्थ दो प्रकार से किये जाने की पर परा प्राप्त होती है । **प्रथम अर्थ**- (१) अशन = भोजन स ब धी खाद्यसामग्री । (२) पान = पीने योग्य पानी, शरबत आदि समस्त पदार्थ । (३) खादिम = फल, मेवा, मिठाई ।

(४) स्वादिम = मुखवास । **दूसरे प्रकार का अर्थ**- (१) अशन = पानी के सिवाय खाने पीने की सभी खाद्य-पेय सामग्री । (२) पान = मात्र पानी । (३) खादिम = फल और मेवा । (४) स्वादिम = मुखवास-ताबोल ।

विशेष- दूसरे अर्थ में मिठाई और छाछ वगैरह पेय पदार्थों को **अशन** में समाविष्ट किया जाता है । **पान** में पानी के सिवाय कुछ भी नहीं लिया जाता है क्यों कि तिविहार उपवास के प्रत्याख्यान के पाठ में असन, खाइम, साइम का त्याग किया जाता है । **पान** का त्याग नहीं होता है, तो भी उपवास में मात्र पानी ही लिया जाता है, शरबत आदि पेय पदार्थ नहीं लिये जाते हक्त । **खादिम** में भोजन के पदार्थ के अलावा जो खाद्यरूप होते हक्त उन फल-मेवे आदि को गिना गया है । मिठाई भोजन के पदार्थों में होने से उसे **अशन** में समाविष्ट किया गया है ।

यों दूसरा अर्थ आगम आशय के ज्यादा निकटतम है यथा- **असन**-पानी के सिवाय भोजन स ब धी खाद्य और पेय पदार्थ । **पान**-पानी मात्र, **खाइम**-फल, मेवे, **साइम**-मुखवास ।

प्रश्न-६ : इस उद्देशक के सूत्र ७१-७२ आदि में कर्मप्रकृति के साथ उपक्रम शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर- कर्म की विभिन्न अवस्थाओं, प्रक्रियाओं में जीव के पुढषार्थ को अर्थात् कार्य को यहाँ उपक्रम कहा गया है । यथा- (१) कर्म का ब ध जीव के पुढषार्थ से होता है उसी तरह (२) कर्म की उदीरणा (३) उपशमन (४) विपरिणमन जीव के प्रयत्न से होता है । (५) कर्मों का स क्रमण (६) कर्मों का निधत्तिकरण (७) निकाचित्तकरण भी जीव के प्रयत्न से होता है । चौथे विपरिणमन में उद्वर्तनाकरण और अपवर्तनाकरण दोनों का समावेश किया होने से यहाँ ८ उपक्रम = जीव के करण कहे गये हक्त । कर्मशास्त्र में कर्म की दस अवस्थाएँ कही हक्त उसमें उदय और सत्ता दो अवस्थाएँ अधिक है उन दोनों में जीव का उपक्रम विशेष नहीं होता है । यथासमय स्वत: कर्मप्रकृति का उदय होता है एव सत्ता बनती है । इन दोनों के लिये जीव को कुछ प्रयत्न करना नहीं होता है।

उपरोक्त आठ उपक्रम-करण के चार-चार प्रकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश की अपेक्षा कहे गये हक्त । क्यों कि ब ध आदि निकाचित पर्यंत सभी का(आठों का) प्रकृति आदि चारों से स ब ध होता है।

इन उपक्रमों के वर्णन के साथ **अल्पबहुत्व** भी प्रकृति आदि चारों का कहा गया है, जिसका अर्थ इस प्रकार है- (१) प्रकृति ब ध अल्पबहुत्व- गुणस्थानों में किसमें कर्मब ध कम और किसमें ज्यादा वह आठ कर्म की अपेक्षा समझना (२) स्थितिब ध अल्पबहुत्व-सब से कम स्थितिब ध स यत जीवों को, उससे एकेन्द्रियों को अधिक, फिर क्रमश: स ज्ञी प चेन्द्रियों को अधिक स्थितिब ध होता है (३) इसी प्रकार अनुभागब ध का समझना (४) प्रदेशब ध अल्पबहुत्व-जब आठ कर्मों का ब ध होता है तब सबसे कम प्रदेश आयुष्य कर्म को मिलते हक्त । फिर क्रमश: नाम-गौत्र, ज्ञानावरणीयादि तीन, फिर मोहकर्म और फिर वेदनीय कर्म को सबसे अधिक प्रदेश मिलते हक्त । अमुक-अमुक अपेक्षा से यह अल्पबहुत्व कही है ।

प्रश्न-७ : चौभ गियों के द्वारा इस उद्देशक में क्या बताया है ?

उत्तर- इस उद्देशक में कुल ८६ चौभ गियाँ है । जिसमें मात्र पुढष की ४२ चौभ गी है । बैल आदि की उपमा से युक्त पुढष की ३८ चौभ गी है और स्त्री की ६ चौभ गी है । इस तरह इस उद्देशक में तीन प्रकार की चौभ गियाँ है ।

(१) मात्र पुढष की ४२ चौभ गी- (१) दीन(दरिद्र)-अदीन की = इसमें प्रथम शब्द जन्म से या देखाव से दीनता-अदीनता का है और दूसरे शब्द में गुणों से दीन-अदीन का कथन है । अथवा पहले-पीछे की अपेक्षा भी समझ सकते हक्त । यथा- १. जन्म से दीन कि तु बाद में धन कमाने से अदीन-४ भ ग, २. दिखने में दीन कि तु गुणों से अदीन (गुण युक्त)-४ भ ग । प्रथम चौभ गी का यह दो प्रकार से अर्थ होता है । इसके बाद (२) दीन और दीन परिणत(हिंसादि में प्रवृत्त) (३) दीन और दीन रूप(वस्त्रादि से) (४) दीन और दीन मन(स कीर्ण-उदार) । (५) दीन और दीन स कल्प । इसी तरह (६) दीनप्रज्ञ (७) दीन दृष्टि (८) दीन शीलाचार (९) दीन व्यवहार (१०) दीन पराक्रम (११) दीन वृत्ति (१२) दीन जाति (१३) दीन भाषी (१४) दीन अवभाषी(दीन हो और दीन ही दिखे, चेहरे से) (१५) दीन सेवी(दीन की सेवा करने वाला या उसके आश्रय में रहने वाला सेवक) (१६) दीनपर्याय (दीन अवस्था-उदासी) (१७) दीन परिवार । **ये कुल १७ चौभ गियाँ दीन पुढष की** सूत्र-३,४,५ में हक्त ।

इसी प्रकार आर्य-अनार्य पुढष की १७ चौभ गियाँ है । यहाँ पहली चौभ गी में प्रथम शब्द जाति से और द्वितीय शब्द गुण से समझना अथवा पहले-पीछे समझना । यथा- (१) कोई जाति से आर्य है गुण से भी आर्य है-४ भ ग (२) कोई पहले आर्य है पीछे भी आर्य रहता है-४ भ ग । यह १ चौभ गी है कि तु अर्थ दो प्रकार से बनता है । इसके बाद **२ से १७ तक** दीन की चौभ गियों के समान आर्य परिणत आदि यावत् आर्य परिवार तक समझना-**१७** ॥ यहाँ अठारहवी चौभ गी इस प्रकार है-जाति से आर्य-अनार्य एव भाव से (रत्नत्रय से) आर्य-अनार्य की १ चौभ गी । ये कुल **१८ चौभ गियाँ आर्य पुढष की** सूत्र-६,७ में है।

कृश-दृढ पुढष की **तीन चौभ गियाँ** सूत्र-३१,३२,३३ में कही है (१) जन्म से कृश और बाद में भी कृश-४ भ ग । (२) शरीर से कृश और मन से कृश-४ भ ग । (३) कभी कहीं कृश शरीर वाले को केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हक्त दृढ शरीर वाले को नहीं । २.कभी कहीं दृढ शरीरी को केवलज्ञान-दर्शन होते हक्त कृश शरीरी को नहीं ३. कभी कहीं दोनों को होवे ४. कभी कहीं दोनों को नहीं होवे। यहाँ यह समझना कि आसक्ति या अनासक्ति के कारण ऐसा बनता है ।

स्व-पर की ४ चौभ गियाँ सूत्र ४१,४२,४३ और ४५ में कही है । (१) कोई अपने कर्मों का अ त करता है कि तु दूसरों का प्रेरक नहीं होता-४भ ग । (२) कोई अपने को क्रोधित करता है, दूसरों को क्रोधित नहीं करता-४ भ ग । (३) कोई अपना आत्मदमन करता है, परदमन नहीं करता-४ भ ग (४) कोई स्वनिग्रह करने में समर्थ-सफल होता है, अन्य के लिये समर्थ नहीं होता-४ भ ग ।

इस प्रकार १७+१८+३+४=४२ चौभ गियों में चार-चार प्रकार के पुढषों का स्वरूप कथन है । इन चौभ गियों में दोनों ही श्रेष्ठ वाले एक भ ग के समान जो पुढष होता है वह सर्वोत्तम होता है । ये सभी चौभ गिया स्वरूपदर्शक कही गई है तथापि इनमें श्रेष्ठ लक्षण वाले पुढष के समान अपने को बनाने की प्रेरणा ली जा सकती है ।

(२) बैल आदि की उपमा से ३८ पुढष की, ६ स्त्री की कुल-४४ चौभ गियाँ- सूत्र ७ से १४ तक **बैल की उपमा** से युक्त पुढष की ७+७=१४ चौभ गियाँ कही है। (१-२) जाति, कुल, वचन और रूप स पन्न चार प्रकार के बैल होते हक्त वैसे ही पुढष भी चार प्रकार के होते हक्त ।

(३-४) जातिस पन्न और कुलस पन्न इन दो बोलों से बैल की और पुढष की चौभ गी । यथा– कोई बैल जातिस पन्न होता है, कुलस पन्न नहीं होता वगैरह ४ भ ग । वैसे ही पुढष के चार भ ग।(५-६) जाति स पन्न और बलस पन्न से बैल और पुढष की २ चौभ गियाँ । (७-८) जाति और रूपस पन्न की ।(९-१०) कुल और बलस पन्न की ।(११-१२) कुल और रूपस पन्न की ।(१३-१४) बल और रूपस पन्न की ।

सूत्र १५ से १९ तक में हाथी की उपमायुक्त पुढष की **दस चौभ गियाँ** कही है ।(१-२) हाथी चार प्रकार के होते है– भद्र, म द, मृग और स कीर्ण । वैसे ही पुढष के भी चार प्रकार । यहाँ भद्र = धैर्य शौर्य आदि गुणस पन्न । म द = अल्प गुण स पन्न । मृग = डरपोक और दुर्बल । स कीर्ण = अत्य त अल्प गुण और शील स्वभाव विचित्र । (३-४) भद्र और भद्र मन,भद्र और म द मन, भद्र और मृगमन, भद्र और स कीर्ण मन । यहाँ प्रथम शब्द आकृति से और दूसरा शब्द प्रकृति से है ऐसा समझना । (५-६) भद्र के साथ कहे जैसे म द के साथ ४ भ ग कहना। यथा– म द और भद्र मन, म द और म द मन, म द और मृगमन, म द और स कीर्ण मन वाले हाथी और पुढष की दो चौभ गियाँ। इसी प्रकार (७-८) मृग के साथ भद्र आदि की दो चौभ गियाँ हाथी और पुढष की तथा (९-१०) स कीर्ण के साथ भद्र आदि हाथी और पुढष की दो चौभ गियाँ बनती है ।

भद्र आदि हाथी के लक्षण इस प्रकार कहे गये हक्त– (१) **भद्र हाथी**– नैत्र मधु की गोली जैसे पिंगलवर्णी, अनुक्रम से मोटी-पतली-ल बी पू छ वाला, अग्र भाग उन्नत, सर्वांग सप्रमाण सुव्यवस्थित ।(२) **म द हाथी**– सलयुक्त विषम चमडी वाला, मस्तक और पू छ स्थूल, दा त-नख-बाल भी स्थूल और नैत्र सि ह जैसे पिंगलवर्णी होते हक्त ।(३) **मृग हाथी**– शरीर, गर्दन, चर्म, द त, नख, बाल पतला, डरपोक, सदा घबराया जैसा उद्विग्न स्वभावी, दूसरों को त्रासजनक।(४) **स कीर्ण हाथी**– उपरोक्त तीनों के थोडे थोडे लक्षण वाला, शरीराकृति और शील स्वभाव से स कीर्ण–विचित्र । बैल और हाथी की ये समस्त चौभ गियाँ अनेका तिक हृष्टि के निरूपण की अपेक्षा से है । अत: इसमें स्वरूप समझने मात्र की अपेक्षा है । हेय–उपादेय या शिक्षा प्रेरणा की इसमें अपेक्षा नहीं है ।

सूत्र– ४६,४७,४८ में मार्ग की उपमा से पुढष की **३+३=६ चौभ गियाँ** कही है । (१-२) सरलमार्ग और वक्रमार्ग । कोई मार्ग प्रार भ से सीधा बाद में टेडा, कोई पहले टेडा फिर सीधा, कोई प्रार भ से अ त तक सीधा और कोई प्रार भ से अ त तक टेडा । इसी तरह पुढष दिखने में सरल और अ दर में वक्र होवे– यों ४ भ ग । अथवा प्रार भ में सरलता का व्यवहार करते और बाद में वक्रता का– यों ४ भ ग । ये दो तरह से अर्थ है कि तु पुढष की चौभ गी एक ही है । (३-४) कोई प्रार भ में क्षेमकारी–उपद्रव रहित मार्ग और बाद में उपद्रव युक्त हो– यों ४ भ ग । वैसे ही पुढष भी पहले कषाय रहित व्यवहार वाले हो और बाद में कषाय युक्त व्यवहार वाले हो जाय– यों ४ भ ग । (५-६) क्षेम मार्ग और क्षेमरूप मार्ग । कोई मार्ग क्षेमकारी हो पर तु दिखने में सूनसान–निर्जन होवे– यों ४ भ ग । इसी तरह कोई पुढष दिखने में या पहले कषाय रहित होवे और पीछे से या व्यवहार में कषाय युक्त हो– यों ४ भ ग समझना ।

सूत्र–४९ और ५३ में स ख और वनख ड की उपमा से पुढष की **२+२=४ चौभ गी** कही है । स ख में– वाम और दक्षिण दो प्रकार के लक्षण स्वभाव होते हक्त । उनमें भी वामावर्त और दक्षिणावर्त यों पुन: दो-दो प्रकार होते हक्त । मनुष्य में वाम = अवगुणी, खराब स्वभाव वाले, दक्षिणी = गुणवान और अच्छे स्वभाव वाले । वामावर्त= विपरीत व्यवहार आचरण वाले, दक्षिणावर्त = अनुकूल–सही आचरण करने वाले । चौभ गी– कोई स्वभाव से वाम(विषम) और आचरण से वामावर्त (प्रतिकूल) । कोई स्वभाव से दक्षिणी(सुलक्षणी) और आचरण से दक्षिणावर्त–अनुकूल व्यवहार वाला, यों चारो भ ग स ख और मनुष्य में बनते हक्त ।

सूत्र– ५०,५१,५२ में धूमशिखा, अग्निशिखा और वातम डलिका से स्त्री की उपमा कही गई है । इसमें धूएं की सीधी-वक्र गति, अग्नि शिखा की सीधी-वक्र गति और म डलिक वायु की सीधी-वक्र गति के समान स्त्री स्वभाव और गुणों का कथन किया गया है । ये स्त्री के साथ वाली **६ चौभ गियाँ** है ।

सूत्र–६०,६१ में सेना से पुढष की उपमा युक्त **४ चौभ गियाँ** कही है । (१) सदा जीतने वाले (२) सदा हारने वाले (३) कभी जीते

कभी हारे (४) हारे भी नहीं जीते भी नहीं । दूसरी चौभ गी- (१) प्रार भ में जीते फिर हारे, (२) प्रार भ में हारे फिर जीते, (३) प्रार भ से अ त तक जीते ही, (४) प्रार भ से अ त तक हारे ही । इसी प्रकार स यम साधक पुढष के लिये स यम-तप, कष्ट-उपसर्गों से जीतना हारना समझना चाहिये ।

सेना में चौथे भ ग वाले स ग्राम में जावे ही नहीं । वैसे ही पुढष की चौभ गी में चौथे भ ग में साधक स यम ग्रहण करके कर्म स ग्राम में आवे ही नहीं । अत: इस भ ग में हारना जीतना दोनों का निषेध है । इस प्रकार- उपमा में बैल की १४+ हाथी की १०+ मार्ग की ६ + स ख, वन की ४+ सेना की ४+ स्त्री स ब धी ६ =४४ चौभ गियाँ उपमा की +४२ मात्र पुढष की, यों कुल = ८६ चौभ गियाँ इस उद्देशक में हक्त।

प्रश्न-८ : इस उद्देशक में अन्य भी क्या-क्या विषय कहे गये हक्त ?

उत्तर- उपरोक्त प्रश्नों में आये विषयों के सिवाय भी ४ की स ख्या से अनेक विषय यहाँ स कलित किये गये हक्त । यथा-**(१)** चार प्रकार के पुढष-आज्ञाकारी सेवक, आज्ञा नहीं स्वीकारने वाले सेवक, स्तुति करने वाले सेवक और प्रधान पुढष=स्वामी या राजा । **(२)** गर्हा चार प्रकार की है- दोष निवेदन के लिये गुढ के पास जाना, अपना दोष स्वीकारना, मिच्छामि दुक्कड देना, आप कहते हक्त तो वही ठीक है, आगे से ऐसा ही कढ गा । इस प्रकार आत्म आलोचना प्रायश्चित्त करने की सभी क्रमिक प्रक्रिया को यहाँ **गर्हा** = दोष स्वीकृति कहा गया है, यह सापेक्ष कथन है । **(३)** विहार आदि में कहीं साधु-साध्वी आमने-सामने मिल जाय तो चार कारणों से परस्पर वार्तालाप कर सकते-१. मार्ग पूछने २. मार्ग बताने ३. आहार-पानी देने ४. आहार-पानी दिलाने के लिये । बिना कारण मार्ग में वातचीत परस्पर करना योग्य नहीं होता है । उपाश्रय में साधु-साध्वी इन कारणों के बिना भी स्वाध्याय आदि के लिये बातचीत करे तो उसमें कोई निषेध नहीं समझना । **(४)** अयोग्य साधकों के ४ स्थान- १. कोई प्रकट दोष सेवे २. कोई गुप्त रूप से दोष सेवे ३. कोई सदा सुखशील बना रहे ४. कोई घूमने-फिरने में बाते करने में मस्त रहे, आन द माने ।

(५) नय दृष्टि से ४ पदार्थों को एक भी कहा है और अनेक भी कहा है- १. द्रव्य अन त भी है अपेक्षा से द्रव्य सामान्य एक है । २. मातृका

पद ४६ है और अमुक नय सामान्य की अपेक्षा एक है । ३. पर्याय सामान्य एक है, वास्तव में अन त है । ४. समस्त पदार्थों का समूह सामान्य से एक है और विविधता, अवा तर भेदों की अपेक्षा अनेक है । **(६)** सर्व के प्रकार- १. नामसर्व २. स्थापना सर्व ३. अपेक्षा से कुछ न्यून को सर्व ४. समस्त सर्व **(७)** गोशालक प थ आजीविक मत में ४ प्रकार का तप होता है- १. उग्रतप-बेला, तेला, मासखमण आदि । २. घोर तप-उपवास आदि के साथ सूर्य आतापना । ३. रस निर्यूहण-नीवी तप । ४. जिह्वेन्द्रिय प्रतिस लीनता = आय बिल तप । **(८)** मन, वचन, काया और उपकरण ये चार प्रकार का स यम, चार प्रकार का त्याग और चार प्रकार की अकि चनता कही गई है । स यम = यतना, विवेक । त्याग = निग्रह । अकि चनता = आसक्ति त्याग ।

इसके अतिरिक्त अनेक विषय अन्य आगमों में या पूर्व स्थानों में आये हुए हक्त । उनकी चर्चा यथास्थान देखनी चाहिये ।

स्थान-४ : उद्देशक-३

प्रश्न-१ : इस उद्देशक में मुख्य किन-किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- चार की स ख्या को लेकर उस उद्देशक में ९३ चौभ गियाँ पुढष की अपेक्षा कही गई हक्त जिसमें ५० चौभ गियाँ पक्षी, वृक्ष आदि की तुलनापूर्वक कही गई है और ४३ चौभ गियाँ मात्र पुढष की ही कही गई है । उसके अतिरिक्त चार की स ख्या के आधार से अनेक विषय हक्त, यथा- उदक, भारवाहक, शूरवीर, निर्ग्रंथ-निर्ग्रंथी, श्रावक-श्राविका, श्रमणोपासक, दु:खसेज्जा, सुखसेज्जा, दीक्षा, दृष्टा त के भेद-प्रभेद, हेतु, अ धकार, उद्योत इत्यादि । तथा अन्य शास्त्रों में आने वाले चार की स ख्या वाले विषयों को भी स कलित किया गया है ।

प्रश्न-२ : भावों की निर्मलता का महत्त्व किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर- इस उद्देशक के प्रथम सूत्र में ग दे पानी और निर्मल पानी की तुलना से भावों की पवित्रता-अपवित्रता के क्रमिक चार दर्जे बताकर उन भावों में काल करने का परिणाम भी बताया गया है, यथा- (१) कीचड युक्त गुदले हुए अतिमलिन पानी के समान जिसकी विचारधारा हिंसादि क्रूरताओं से युक्त, छल-प्रप चमय, स्वार्थपरायण, दूसरों के सुख

की घातक, विषयकषायों से स सक्त, मोह-माया में तल्लीन, अज्ञान मिथ्यात्व के अ धकार में ज्ञाना ध बनी रहती है; ऐसे भावों में मरने वाले की नरकगति होती है। (२) स्वार्थपूर्ण मोह माया युक्त जीवन, परोपकार से शून्य, परसुख भ जक छल-कपट की वृत्ति, पापों में, कषायों में क्लेश–कदाग्रह प्रप चमय परिणाम, कीचडयुक्त जल की मलिनता से न्यून एव ख जन की मलिनता के समान कहे गये हक्त । ख जन पानी को कीचड जितना एक-मेक गुदला न बनाकर कम ग दा करता है और अपने विशेष भार के कारण कुछ-कुछ पानी के नीचे जम जाता है । इस प्रकार के ख जनोदक जैसे भावों में काल करने वाला जीव तिर्यंच गति, पशुयोनि को प्राप्त करता है । (३) विषय कषाय के या पापों के परिणाम आते हक्त और निकल जाते हक्त अर्थात् व्यक्ति कभी पापों के परिणामों में बह जाता है और कभी अनुक पा, परोपकार के परिणाम में आ जाता है । बालु रेत का पानी क्षणिक ग दा दिखता है और स्वत: शीघ्र निर्मल दिखने लग जाता है । बालु रेत शीघ्र नीचे जम जाती है पानी उपर स्वच्छ होता है जरा सा आवागमन हुआ तो पुन: ग दा हो जाता है । इस प्रकार मिश्र स्वभाव के भद्रिक परिणामी जीव गुण-अवगुण के मिश्र भावों में काल करने से मनुष्य गति को प्राप्त करता है । (४) पर्वतीय जल स्वाभाविक ही निर्मल निर्मलतर होता है वैसे ही जिसके भाव–परिणाम सदा स्वाभाविक ही पवित्र पवित्रतम होते हक्त । स सार के आवश्यक आचरण में रहते हुए कहीं भी कलुषितता जीवन में प्रविष्ट नहीं होकर जिनका जीवन सहज परोपकारमय तथा मर्यादाओं से युक्त होता है, आगे बढकर ज्ञान-धर्ममय भावों से आत्म विकास में भी स लग्न बनता है, ऐसे पवित्र परिणामों–भावों में मरने वाला देवगति को प्राप्त करता है । चार की स ख्या का प्रकरण होने से यहाँ चार गति के योग्य भाव बताये हक्त तथापि जीव निर्मल परिणामों के साथ स यम,स वर, तपोमय मोक्ष साधना में परिणामों को निर तर शुद्ध शुद्धतम बनाता हुआ कर्मक्षय करके चारों गति के अलावा प चमी मोक्षगति को प्राप्त करने वाला भी बन सकता है ।

इन दृष्टा तो और परिणामों का विचार कर साधक अपने भावों, परिणामों, वृत्तियों का सूक्ष्मतम निरीक्षण करके उसमें प्रविष्ट कलुषता को निकाल कर, ज्ञान, वैराग्य और कर्तव्यनिष्ठता से पूर्ण परिमार्जन

करते हुए भावों को पूर्ण पवित्र बनाते रहना चाहिये । ऐसा करते रहने से ही साधनाओं की श्रेष्ठ सफलता स भव होती है ।

प्रश्न–३ : गृहस्थ जीवन तो स सार की अनेक खटपटों से, ज जालों से परेशानी वाला होता है, उसमें फिर धर्म के नाम से त्याग, नियम, व्रत की जिम्मेदारियाँ डाल कर विशेष भारी बनना होता है तो शास्त्र में इन व्रतों को गृहस्थ के विश्राम स्थान क्यों बताये हक्त ?

उत्तर– जिस तरह भार वहन करने वाले की बहुत ल बी म जिल है वह चलते-चलते एक हाथ से दूसरे हाथ में भार को पलटता है या एक क धे से दूसरे क धे पर उस वजन को उठाकर रखता है, तब सीधे-सीधे चलते रहने की प्रवृत्ति में यह बदलने की प्रवृत्ति भले बढती हुई दिखाई देती है फिर भी इस प्रवृत्ति में विश्राम समाविष्ट है। आगे बढते हुए भारवाहक शारीरिक श का(मलमूत्र की बाधा) होने पर कोई योग्य स्थान की गवेषणा करता है । फिर सामान को क धे पर से उतारता है, ठीक से जमाकर भूमि पर रखता है, बाधा निवृत्ति के लिये आसपास जाता है । पुन: आकर भार को उठाकर क धे पर जमाता है फिर चलता है तो सीधे चलते रहने में बीच में ये सारी प्रवृत्ति बढी तो भी उसकी थकान में विश्रा ति अवश्य मिलती है ।

ठीक इसी तरह स सार के मोहमाया भरे कर्तव्यों, आर भ-समार भ की प्रवृत्तियों से आत्मा निर तर कर्मब ध के भार से श्रमित होती रहती है, उसमें स तदर्शन, गुढसा निध्य, वीतरागवाणी श्रवण, व्रतप्रत्याख्यान द्वारा कर्माश्रव निरोध, तप-व्रत-स यम आचरणों के द्वारा कर्मों की कमी से आत्मा को द्रव्यभाव दोनों प्रकार से विश्रा ति मिलती है, मानसिक और शारीरिक दोनों ही सुखसमाधि प्राप्त होती है । इसी दृष्टिकोण से शास्त्र में श्रमणोपासक के जीवन में अपेक्षा से चार विश्रा तिस्थान कहे हक्त, जिसमें क्रमश: विश्रा ति की अधिकता रही हुई है ।

जैसे–(१) भारवाहक भार को हाथ या क धों में परिवर्तित करता है (२) थोडी देर के लिये कहीं रखकर शारीरिक मल-मूत्र की बाधा से निवृत्त होता है (३) बीच में म दिर या धर्मशाला आदि स्थान में रात्रि निवास या दुपहर की विश्रा ति करता है (४) घर पर या ग तव्य स्थान में पहुँचकर भार से मुक्त हो जाता है । उसी प्रकार श्रमणोपासक भी सा सारिक जीवन जीते हुए–(१) स त समागम, धर्मश्रवण तथा अनेक

त्याग प्रत्याख्यान रूप कुव्यसन त्याग, रात्रिभोजन त्याग या मर्यादा, नवकारसी, पोरसी एव दयादान प्रवृत्ति आदि धारण करता है, जीवन को सुस स्कारित करता है तो यह भारवाहक की प्रथम विश्रा ति हाथ, क धे परिवर्तन जैसी कर्मस ग्रह में विश्रा तिकारक है ।(२) कुछ समय निकाल कर सामायिक करना, दैनिक प्रवृत्तिओं, आवश्यकताओं की सीमा रखकर मर्यादा करना यह भारवाहक की दूसरी विश्रा ति भार नीचे रखने के समान है । (३) रात्रिभर या दिवसभर के लिये स वर-पौषधमय प्रवृत्ति युक्त उपाश्रय या पौषधशाला में व्रती जीवन से रहना यह भारवाहक की तीसरी विश्रा ति–रात्रि निवास के समान है। (४) जीवन का पिछला समय जानकर स सार के कार्यों से निवृत्तिमय जीवन बनाकर, पौषधशाला में ही भिक्षा लाकर जीवन निर्वाह करना या फिर अ तिम समय यावज्जीवन का स लेखना स थारा ग्रहण करना, यह भारवाहक की चौथी विश्रा ति ग तव्य स्थान में पहुँच कर सदा के लिये भार त्याग के समान १८ पापों के त्यागमय स थारा ग्रहण रूप विश्रा ति है ।

यह जानकर श्रमणोपासक को सा सारिक जीवन में भी हलुकर्मी, भारमुक्ति रूप विश्रा ति, आत्मसमाधि, आत्मउन्नति के लिये जिनाज्ञा अनुसार व्रत-प्रत्याख्यानों की एव स वर, सामायिक, पौषध आदि तथा निवृत्तिमय जीवन को स्वीकारने की भावनाओं को एव स स्कारों को बढाते रहना चाहिये । तो वह स सार भार का भारवाहक होते हुए भी विश्रा ति प्राप्त करता हुआ कभी हैरान परेशान न होकर अनुपम आत्म-समाधि को प्राप्त करने वाला बन सकता है ।

प्रश्न–४ : दीक्षा पर्याय या व्रत पर्याय के साथ आराधना-अनाराधना की अनेका तिकता किस प्रकार कही गई है ?

उत्तर– यद्यपि मानव भव में स यम पर्याय और श्रावक व्रत जितने-जितने दीर्घकाल के होते हक्त तदनुसार अधिकतम त्याग-तप आदि से आत्मा के अनादि स चित अन त कर्मों की निर्जरा होती रहती है । कहा भी है कि अज्ञानी जीव करोडों वर्षों में भुगतकर जितने कर्मों का क्षय करता है ज्ञानी आत्मा मुहूर्तमात्र में अर्थात् क्षणभर में उतने कर्मों को कर्मांशो को क्षय कर सकता है । व्रती श्रावक या महाव्रती श्रमण की आत्मा तो ज्ञान भावित होती ही है, उसके क्षण-क्षण अनुपम कर्म निर्जरा होती

रहती है ।अतः दीर्घ व्रत पर्याय वाले के स वर, स यम और कर्म निर्जरा बढती जाती है । तथापि यहाँ सूत्र–४१ से ४४ तक में यह दर्शाया गया है कि साधकों की पर्याय अल्प हो तो भी उसकी आराधना-अनाराधना (विराधना) दोनों स भव होती है तथा दीर्घ व्रतस यम पर्याय हो तो भी आराधना विराधना दोनों स भव होती है । इस अनेका तिकता में जो मुख्य हेतु है उसे भी स्पष्ट किया गया है । यद्यपि दीर्घ पर्याय से कर्म क्षय की निर तर वृद्धि होती है फिर भी आराधना-विराधना का विषय या कारण कुछ भिन्न बनता है । जिस प्रकार किसी नोकरी के इ टरव्यू में या कोई भी ग्रेड की फाइनल बोर्ड की परीक्षा में पास होना कक्षा की उपस्थिति या मासिक, त्रिमासिक परीक्षाओं से कुछ भिन्न होता है । इ टरव्यू में कभी सामान्य सा दिखता व्यक्ति आगे निकल जाता है । इसी प्रकार साधना की तल्लीनता एकाग्रता सावधानियाँ और अ तर्मुखी अवस्था, बाह्यद्दष्टि की न्यूनता, वर्तमान सुख सुविधाओं में निःस्पृहता आदि गुण अल्प दीक्षापर्याय या अधिक दीक्षा–व्रत पर्याय के साथ हो तो व्यक्ति आराधक बन सकता है ।

ये उपरोक्त गुण न हो तथा साधक साधना में उत्साह वृद्धि के स्थान पर उत्साह हीन बनता जाता हो, जिधर-किधर भी लक्ष्य चूक जाता हो, परीषह-उपसर्गों में ग्लानिभाव की अनुभूति करता हो तो उसे अधिक या अल्पकालीन दीक्षा में आराधना की जगह विराधना ही हाथ लगती है । इस प्रकार यहाँ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चारों के आराधना-विराधना की अनेका तिकता स्पष्ट की गई है ।

प्रश्न–५ : क्या गृहस्थ श्रावक-श्राविकाएँ अपने गुढओं, त्यागी महात्माओं पर, खुद उनके माता-पिता होने का अधिकार जमा सकते हक्त ?

उत्तर– साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चारों ही मोक्षमार्ग के पथिक हक्त, आत्मसाधना के साधक हक्त, परस्पर साधर्मिक छोटे बडे भाई के समान हक्त । साधु महाव्रतधारी है और श्रावक अणुव्रतधारी है अतः कोई किसी पर अधिकार जमावे या किसी का तिरस्कार करे ऐसा कुछ भी किसी को भी योग्य नहीं है । साधक-साधक परस्पर एक दूसरे के सहयोगी बन सकते हक्त, एक दूसरे के सहयोग से अपनी साधना को बलवती बना सकते हक्त । कदाचित् किसी की साधना अल्प बलवती या हीन सत्व वाली दिखे तो अत्य त आत्मीयता पूर्वक, परम भक्ति एव विवेक के

साथ, उसकी साधना बलवती बने वैसा सहायक बनने का प्रयत्न कोई भी कर सकता है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि– ***मार्ग भुलेला जीवन पथिकने, मार्ग चींधवा उभो रहुँ । करे उपेक्षा ए मारगनी, तो ये समता चित्त धढँ ॥*** शैलक राजर्षि की और पार्श्वनाथ भगवान की अनेक साध्वियों की मार्गभूलित अवस्था शास्त्र में वर्णित है तथापि वहाँ कोई साधु-श्रावक के द्वारा अधिकार जमाने की बात नहीं की गई हक्त । ५०० साधुओं के स्वामी गर्गाचार्य ने और उस समय के श्रावको ने एक-एक साधु को अधिकार जमाकर मार-मारकर सीधा नहीं किया । अपने आपको तीर्थंकर कहते हुए भी तथा अपने को साधु मानकर भी भगवान के सामने अनर्गल प्रलाप करने वाले एव दो साधु के हत्यारे गोशालक के उपर भी किसी ने अधिकार जमाने की या माँ-बाप होने का वादा करने की कोशीश नहीं की थी । गोशालक का भक्त अय पुल श्रावक भी गोशालक को मर्यादाहीन प्रवृत्ति में देख कर उस पर कुछ भी अधिकार नहीं जमाते हुए स्वय वापस घर लौटने लगा । इसलिये धर्म मार्ग में धर्मसभा में या गुढ-शिष्य के व्यवहार में भी कोई किसी पर अधिकार ठस्सा जमाने की बात नहीं समझनी चाहिये अपितु एक दूसरे साधक की साधना में हो सके जितना सहयोगी बनना चाहिये । शक्य न हो तो उपेक्षा या आत्मसुरक्षा करनी चाहिये । कि तु घृणा, निंदा, तिरस्कार, स घ बहिस्कृति, हीन भावना, किसी के भी जीवन के साथ खिलवाड आदि प्रवृत्ति किसी भी धर्मिष्ट को करना योग्य नहीं कहा जा सकता । ऐसी प्रवृत्तियाँ जो भी साधक करते हक्त वह उनकी खुद की मानस ज्ञा, स कीर्णता, स्वार्थपरायणता एव स्व-जमावट, पर-गिरावट आदि हीन भावनाओं का परिणाम हक्त । गिरते हुए को उठाना कर्तव्य है कि तु नहीं उठे तो ठोकरें मारना, यह कोई भी धर्मी का तो क्या, सज्जन का भी कर्तव्य नहीं है। यहाँ अनेक प्रकार के लक्षणों वाले श्रावकों को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकार ने चार प्रकार के स्वभाव, व्यवहार करने वाले श्रावक बतलाये हक्त–

(१) माता-पिता जैसी हार्दिक लगन युक्त आत्मीयता का व्यवहार करने वाले, सदा विकास में सहयोगी बनने वाले श्रावक । जिस प्रकार योग्य शिक्षित माता-पिता बच्चे को गलती करने पर थोडी उपेक्षा, थोडी शिक्षा, थोडा समझाना, थोडा स रक्षण करके प्रेम से उसे

अवगुणों से बचाने का और गुणों में प्रगति कराने का प्रयत्न करते हक्त। वैसे ही कोई श्रमण साधक गुढ सा निध्य के अभाव में या सही स स्कारों के अभाव से कहीं भी मार्ग च्युत हो तो श्रावक अपनी शक्ति स जोकर, अपने समभावों की दृढता का ख्याल रखकर, गुढभक्ति को सुरक्षित रखते हुए, विनय–विवेक और गुढ सम्मान निभाते हुए विचक्षणता से श्रमण को सन्मार्ग की प्रेरणा करे, सन्मार्ग में जोडे, तो वैसी योग्यता वाले, विवेक वाले श्रमणोपासक इस शास्त्रकथन के अनुसार माता-पिता के समान कहे जाने के योग्य होते हक्त । (२-३) उसी प्रकार भाई-भाई जैसे एक दूसरे के हितैषी सहयोगी होते हक्त; मित्र-मित्र भी एक दूसरे के सहयोगी होते हक्त, वैसा भ्रातृत्व का या मित्रता का सहयोगी व्यवहार करने वाले श्रावकों को यहाँ सूत्र में २. भाई समान और ३. मित्र समान श्रमणोपासक होना कहा है। (४) जिस तरह एक व्यक्ति की अनेक अयोग्य पत्नियाँ परस्पर शोक्य वृत्ति से रहती है उसी प्रकार जो श्रावक राग-द्वेष, मेरा-तेरा वाली वृत्ति रखते हक्त, अपने अनुराग वाले साधुओं के बडे-बडे दोष भी पेट में समा लेते हक्त, भले वहाँ बार-बार बडे बडे ओपरेशन हो; नित-नये लडाई-झगडे, ट टे फसाद होते हों; फूट-फजीति, भागना, गच्छ छोडना, गुढ वडील की अवहेलना होती हो; उन सब गलत प्रकृतियों, दूषित प्रवृत्तियों को पेट में पचा जाते हक्त और जिन्हें पराया समझे उनके छोटे-छोटे दोष को भी अति शिखर पर चढाने का, निंदा घृणा का और हीन भावना का वातावरण बनाने का मानस रखकर व्यवहार करते हो; ऐसे श्रावकों को यहाँ शास्त्र में शोक्यवृत्ति वाले या सौत समान श्रावक की कोटी में कहा गया है ।

इस प्रकार यहाँ श्रावकों को मात्र माता-पिता के समान ही नहीं कहा गया है या मात्र माता-पिता का ठस्सा जमाने वाला ही नहीं कहा है, अपितु जैसा व्यवहार विवेक करने वाले हों उसके अनुसार चार दर्जे के श्रावक इस स सार में पाये जा सकते हक्त, ऐसा बताया गया है।

प्रस्तुत सूत्र का सही आशय समजकर श्रावक को अपने आप को कैसा बनना, यह सब कुछ शास्त्रकार की अनेका तिकता को समझकर, खुद की योग्यता और दर्जा हाँसिल कर, हो सके जितना स्व-पर की भलाई की साधना करनी चाहिये । बुरा किसी का भी नहीं करना, तिरस्कार-निंदा-घृणा का व्यवहार शास्त्र के नाम से किसी भी पामर

प्राणी के साथ भी नहीं करना चाहिये । तब जिनवाणी के रसिक भूल पात्र साधकों के साथ वैसा व्यवहार कदापि न करते हुए, पूर्वोक्त कवि की कविता जो आगम के मर्म से भरी हुई है, उसी को स्मृति में रखना चाहिये कि– ***'मार्ग भुलेला जीवन पथिकने मार्ग चींधवा उभो रहुँ । करे उपेक्षा ए मारगनी तो ये समता चित्त धढँ ॥*** आगम के इस पाठ का सार भी यही है ।

यहाँ पर श्रमणोपासक के दूसरे ४ प्रकार भी कहे है । सूत्र ४५ में कहे गये श्रावक के पूर्वोक्त चार प्रकारों में बाह्य व्यवहारों की प्रधानता है और सूत्र–४६ में आगे कहे जाने वाले ४ प्रकार, व्यक्ति की अपनी आ तरिक योग्यता की अपेक्षा कहे गये हक्त । वे इस प्रकार हक्त-**(१) काच(आयना)समान श्रावक**– साधु-साध्वी द्वारा निढपित उत्सर्ग या अपवाद परिस्थिति के आचार को, गहन तत्त्वों को, प्रवचन के यथार्थ भावों को समझने वाला श्रावक **काच के समान** कहा गया है । काच में जैसी वस्तु है वैसी ही दिखती है ।उसी तरह वह श्रावक जैसा जिस तत्त्व का, गुढ का या आगम का आशय है उसे वैसा ही यथार्थ समझता है । **(२) ध्वजापताका समान श्रावक**– जिस दिशा की हवा हो, ध्वजा पताका उसी तरफ लहराती है, वैसे ही जो श्रावक अपने ज्ञान में स्थिर न रहे, जैसी देशना चले उसके अनुसार ही अपनी चित्तवृत्ति बना लेते हक्त, जहाँ कहीं भी झुक जाते हक्त । उन्हें यहाँ ध्वजा पताका के समान कहा गया है । **(३) खाणु–खेत के ठू ठे के समान श्रावक**– जो श्रावक कोई भी पूर्वाग्रह में, हठाग्रह में या पर परा की पकड में जकडे रहते हक्त, ज्ञानी गीतार्थ बहुश्रुत के द्वारा सत्य तत्त्व समझाने पर भी नहीं स्वीकारते हक्त । खुद को विशाल ज्ञान है नहीं और ज्ञानी की बात माने नहीं, खोटी पकड छोडे नहीं, वैसे श्रावकों को यहाँ पर पका हुआ अनाज काट लेने पर खेत में खडे छोटे छोटे ठू ठे (डींटिये) समान कहा गया है । वैसे श्रावक नम्रता रहित स्वभाव वाले होते हक्त। (४) **खरक टक के समान श्रावक**– जो दुराग्रही श्रावक समझाने वाले गुढ के साथ भी दुर्वचनों का व्यवहार करे, खुद की मूर्खता को समझे बिना गुढ पर दोषारोपण करे; जिस प्रकार क टकाकीर्ण बाड के का टे एक तरफ से निकाले जाय तो दूसरी तरफ चुभते रहते हक्त ऐसे क टक समान पीडाकारी व्यवहार करने वाले श्रावकों को यहाँ

पर खर(तीक्ष्ण) क टक समान कहा गया है । इस तरह अपनी-अपनी मानसिकता और क्षयोपशम अनुसार कोई श्रावक काच समान और कोई क टक समान भी होते हक्त । यह जानकर श्रावकों को किस कोटि में आना है उसका निर्णय स्वय करके सु दर क्षयोपशम प्राप्त कर और सु दर प्रकृति एव मानस बनाकर काच के सद्दश उत्तम श्रावक बनने का प्रयत्न करना चाहिये ।

प्रश्न–६ : दीक्षा लेने के बाद साधु-साध्वियों की दु:ख रूप या सुख रूप अवस्था कब, किस-किस तरह बनती है ?

उत्तर– प्रस्तुत उद्देशक के सूत्र–५३,५४ में इस विषयक स्पष्टीकरण किया गया है । यद्यपि स यम स्थान स यमियों को एका त शाश्वत सुख प्राप्त कराने वाला है तथापि कई साधक अपनी च चलता, अस्थिरता एव असम्यग् मनोवृत्ति के कारण चार अवस्थाओं में स यम जीवन को दु:खमय समझने लगते हक्त; दु:ख रूप में दु:खानुभूति में व्यतीत करते हक्त और कितने ही साधक सुस योग सुस स्कार एव स्थिर चित्तवृत्ति के कारण जीवनभर स यम की प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल अवस्थाओं में सुखी-परमसुखी रहते हक्त; प्रत्येक क्षण परमान द की अनुभूति करते हक्त। इस प्रकार की अवस्थाएँ बनने में यहाँ मुख्य चार-चार कारण दु:खशय्या और सुखशय्या के नाम से कहे हक्त–

दु:ख शय्या– स यम के दु:खभूत होने के ४ कारण– (१) जिनमत में, निर्ग्रंथ प्रवचन में, साध्वाचार में या जीव आदि सूक्ष्म तत्त्वों में श्रद्धा, प्रतीति, ढचि घट जाने से; तत्त्वों, सिद्धा तो में श का, का क्षा आदि चित्त में प्रविष्ट हो जाने से; आत्म परिणामों में, स यम उत्साह में, मन की चल-विचलता आ जाने से स यम का आन द ख डित हो जाता है । तब समय-समय पर आत्मा स यम से खिन्न होकर दु:खानुभूति करने लगती है । इस प्रकार यह प्रथम दु:खस्थान है । (२) जो अपने लाभ में स तुष्ट नहीं रहता है, कि तु दूसरों के आहार, शिष्यादि लाभ, मान-सन्मान, ज्ञान, यशकीर्ति आदि देखकर ईर्ष्या करता है, उनकी आका क्षा करता है उस आका क्षा की खुद को अनुपलब्धि होने पर रातदिन दु:खानुभूति करता है । यह दूसरी दु:खशय्या है । (३) दैविक या मानुषिक सुखों की एव कामभोगों की सुषुप्त कामनाएँ जिसकी जागृत हो जावे और वह उसी के स कल्प-विकल्पों में फ स जावे तो उसे स यम जीवन दु:खकारी,

महादु:खकारी लगता है, यह तीसरी दु:खशय्या है । (४) शरीर के सुखैषीपन की सा सारिक प्रवृत्तियों में पुन: मन लुभावित हो जाने से, च चल हो जाने से; इच्छित खान-पान, स्नान, मर्दन, मालिस, विलेपन आदि ऐसो-आराम की आका क्षा चित्त में प्रविष्ट होकर घर कर जाने से; वह साधक स यम समाचारी को दु:खमय, कष्टप्रद समझने लगता है और रात-दिन उसी की घाटघड–स कल्पों में लगा रहता है, यह चौथी दु:खशय्या है ।

सुखशय्या– स यम में सदा आन दित रहने में कारणभूत चार स्थान– (१) स यम स्वीकारने के बाद सम्यग् गुढ सा निध्य एव सुस स्कारों की क्रमश: वृद्धि का अवसर प्राप्त साधक वीतराग वचनों में, जिनागम के तत्त्व या आचार स ब धी सिद्धा तों में पूर्ण नि:श क एव दृढ आस्थावान रहता है, वह निर तर स यम में रमण करता हुआ सदा सुखानुभूति और परम आन द की अनुभूति करता है । श्रमणों की यह प्रथम सुखशय्या है । (२) जो निर्ग्रंथ स यम पर्याय में पुढषार्थ करते हुए सदा अपने को उपलब्ध होने वाले लाभ में, आहार, पानी, उपकरण, शिष्य, ज्ञान, मान-सन्मान, पद-प्रतिष्ठा में स तुष्ट, परम स तुष्ट रहता है । दूसरों के लाभ को देखकर उनके प्रति अहोभाव धारण करता है कि तु खुद उनकी अपेक्षा चाहना नहीं करता है तथा उनकी ईर्ष्या जलन भी नहीं करता है और अपने पुढषार्थ को निर तर तप-स यम में बढाने का लक्ष्य रखकर अपनी समस्त यथायोग्य उपलब्धियों में स तुष्ट रहते हुए आन द, परम आन दमय जीवन की अनुभूति करता है, यह निर्ग्रंथों की दूसरी सुखशय्या(सुखों में ही निवास) है । (३) स यम स्वीकार करने के बाद सदा गुढ या आगम निर्देशों के अनुसार स यम-तप में लीन रहते हुए अपनी इन्द्रियों को सदा ज्ञान-वैराग्यपूर्वक स्व वश में रखता है, इन्द्रिय विषयों के प्रति आत्मनिग्रह रखता है, मन की स पूर्ण लगाम ज्ञाना कुश रूप से अपने हाथ में रखकर सदा परिपूर्ण इन्द्रिय स यम में रहता है, इन्द्रियेच्छाओं या विषयेच्छाओं के वशीभूत नहीं होकर सदा जिनाज्ञा अनुसार स यम समाधि में, ब्रह्मचर्य की बाढ रूप सर्व समाचारी नियमों में सतर्क सावधान रहते हुए स यम भावों में परम आन दित रहता है । कभी दैविक, मानुषिक, पौद्गलिक सुखों की कामभोगों की चाहना-भावना भी नहीं करता है । यह मुनियों की तीसरी सुखशय्या है ।

(४) जो स यम ग्रहण करने के बाद शूरवीर योद्धा के समान कर्मस ग्राम में अपने को सन्नद्ध–बद्ध रखता है । यह आदर्श सन्मुख रखता है कि तीर्थंकर आदि महापुढष भी राजसी वैभव का त्याग करके स यम ग्रहण करने के बाद समस्त सुख सुविधाओं की उपेक्षा करते हुए उत्कृष्ट पराक्रम के साथ स यम-तप में लीन रहकर कर्मों को क्षय करने मात्र के एक ही लक्ष से सहर्ष आगे बढते हुए केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त करते हक्त; तो मक्त भी क्यों नहीं उत्साहपूर्वक शारीरिक कष्टों को, स यम के परीषह उपसर्गों को सहन कढँ ? अर्थात् मुझे भी ऐसे महापुढषों का आदर्श सन्मुख रखते हुए कर्म स ग्राम में आने वाले समस्त कष्टों को बहुत ही प्रसन्नता के साथ, मस्ती और अ तर आन द के साथ सहन करके, अपने ग्रहण किये स यम की स ुदर-अनुपम आराधना करनी चाहिये । इस प्रकार की समझ एव ज्ञान-वैराग्य वासित उत्साहपूर्वक वे साधक स यम में परम आन द की अनुभूति करते हक्त । यह श्रमण-निर्ग्रंथों की चौथी सुखशय्या कही गई है ।

इस दु:खशय्या और सुखशय्या के ५३, ५४ सूत्र के बाद सूत्र ६८ में यह स्पष्ट किया गया है कि दीक्षा लेने वाले सभी सरीखे नहीं होते हक्त, सरीखे नहीं बनते हक्त । उनके भी अनेक विकल्प स्व-स्वपुढषार्थ एव कर्मोदय निमित्तक होते हक्त जिन्हे वहाँ चार विकल्पों में दर्शाया गया है– (१) सि ह की तरह दीक्षा लेने वाले और सि ह की तरह पालने वाले अर्थात् जिस उत्कृट वैराग्य, ज्ञान पूर्वक स यम ग्रहण करते हक्त उसी लगन के साथ अ त तक सफलता प्राप्त करने वाले होते हक्त । (२) सिंह की तरह दीक्षा लेकर सियाल की तरह स यम पालन करने वाले । उत्कृष्ट वैराग्य से दीक्षा लेने वाले भी कभी कोई स योग, स स्कार वृद्धि के अभाव में या कुस योग या कर्मोदय के आधीन होकर सियाल की तरह मानसिक, शारीरिक कायरता के वशीभूत होकर स यम में शिथिल बन जाते हक्त; अनेक स यम-नियमों के पालन में उत्साह हीन बन जाते हक्त और कोई सम्यक् श्रद्धा-प्ररूपणा से भी नीचे उतर जाते हक्त । (३) कोई सियाल की तरह दीक्षा लेकर सि ह की तरह स यम पालन करते हक्त । अर्थात् कोई किसी के दबाव में, वचन बद्धता में या असहाय होने से गरीबी, दु:खी अवस्था से, परेशानी से दीक्षा लेकर सुस योगवशात् ज्ञान-वैराग्य की वृद्धि करके उत्कृष्ट परिणामों से शूरवीरता पूर्वक स यम-तप

में लीन बन जाते हक्त और जीवन के अ त तक भी सफल आराधक बन जाते हक्त । (४) सियाल की तरह स यम लेकर सियाल की तरह स यम पालन करने वाले । कोई लाचारी से परिस्थिति या स योगवशात् दीक्षा ले लेते हक्त और बाद में भी सामान्य परिणामों से, सामान्य वैराग्य से या सुस्तीपूर्वक स यम पालन करते हक्त और कभी सुपरिणमन सुस योग न होने पर शिथिल मानस वाले बनकर निम्नस्तरीय स यम का पालन करते हक्त और अ त में भी स यम में असफल–विराधक बन जाते हक्त ।

इस प्रकार स यम ग्रहण करने वालों की विविध अवस्थाओं को सम्यग् प्रकार से हृदय गम करके अपनी आत्मा का, स यम का हित चि तन करके सम्यग् पुढषार्थ के द्वारा स यम तप में आराधक बनने का प्रयत्न प्रत्येक साधक को करना चाहिये । जिस प्रकार प्रत्येक समझदार विद्यार्थी का परीक्षा में पास होने का ही मनोरथ एव प्रयत्न होता है वैसा ही लक्ष्य मोक्ष हेतुक इस स यम साधनाकी परीक्षा में उत्तीर्ण होने का होना चाहिये, तभी स्वीकार किया हुआ समस्त तप-स यम का परिश्रम सफलता को प्राप्त कर सकेगा ।

इसी विषय के अनुढप सूत्र–८२ में निरूपण करते हुए बताया गया है कि– **(१) ह्री सत्त्व–** जो साधक लोक लाज से या अपयश कीर्ति के चि तन से या गुढ वडील पारिवारिक तथा अनुरागी भक्त वर्ग की लाज-शरम से मानसिक अधैर्य को या अपने अ दर उठने वाले असत्त्वमय विचारों को प्रवृत्ति या शरीर से कि चित् भी प्रगट नहीं होने देते हक्त, वैसा करने से ढक जाते हक्त, स भल जाते हक्त उन्हें लज्जावश सत्त्व-शील बने रहने वाले **ह्री सत्त्व** साधक कहा गया है । **(२) ह्री मन सत्त्व–** जो उपरोक्त अनुसार लज्जा से प्रवृत्ति एव शरीर से सत्त्वशील बने रहने के साथ अपने मन की असत्त्वता को भी परिवर्तित कर लेते हक्त अर्थात् स यम में उत्पन्न अधैर्य के परिणामों को लज्जावश भी धैर्य में परिणत कर प्रवृत्ति के साथ मन में भी पूर्ण सत्त्वशील, उत्साह युक्त बनकर साधना में लगे रहते हक्त वे साधक **ह्रीमन सत्त्व** पुढष कहे गये हक्त। **(३) चल सत्त्व–** जो साधक प्रस ग-प्रस ग पर स यम साधना के मध्य मानसिक, शारीरिक शिथिलता धारण कर लेते हक्त, प्रवृत्ति में भी दीनतापूर्वक विचलित हो जाते हक्त, किसी भी उपाय से धैर्य को धारण किये नहीं रह सकते और अपने लक्ष्य से अस्थिर बन जाते हक्त, साधना

में शिथिल, दीन बन जाते हक्त, तब फिर उनके लिये लोकलाज, यश-अपयश आदि सभी उपेक्षित बन जाते हक्त, वैसे साधक को यहाँ **चलसत्त्व** साधक कहा गया है । **(४) स्थिर सत्त्व–** जो साधक प्रार भ से अ त तक स्वत: वैराग्य, सुस योग, सुस स्कार आदि पुण्य प्रभाव से स यम में मेढ के समान अडोल, अक प, उत्साह एव धैर्य स पन्न रहकर शुद्ध आराधना करते हक्त वे **स्थिर सत्त्व** साधक कहे गये हक्त । ऐसे साधक ही सर्व श्रेष्ठ होते हक्त और जिनशासन में वरिष्टता प्राप्त कर स्व-पर-उभय कल्याणकारी बनते हक्त और निर्ग्रंथ प्रवचन की अनुपम प्रभावना करते हुए अपने जीवन को पूर्ण सफल एव धन्य-धन्य बना लेते हक्त ।

इन विविध अनेका तिक स यम स ब धी शास्त्रकारों के निरूपण की सम्यग् समीक्षा, विचारणा करके प्रत्येक साधक अपना सर्वोच्च विकास साधे तथा जन्म-मरण के अन त दु:खों के मूलभूत अष्टकर्मों से आत्मा को हलुकर्मी यावत् पूर्ण कर्म मुक्त बनाने में पुढषार्थशील बने ।

प्रश्न–७ : शास्त्र में द्दष्टा तो के स ब ध में विस्तृत वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– किसी भी वस्तु तत्त्व को समझाने में या कठिन तत्त्वों को सरलता से बुद्धिगम्य कराने में एव अल्पमति क्षयोपशम वालों को भी सूक्ष्म या गहन तत्त्व को सहजता से, सरलता से समझाने में द्दष्टा त बहुत ही उपयोगी–उपकारक सिद्ध होते हक्त । इसी उपकारकता को लक्ष्य में रखकर यहाँ सूत्र ९२ से ९६ तक में उदाहरणों की विविधता को भेद प्रभेदों के द्वारा समझाया गया है । जिसे जानकर ज्ञानी साधक द्दष्टा त देने में और द्दष्टा त के द्वारा समझाने में कुशल बने, द्दष्टा तों के दूषणों से मुक्त रहकर अपने उद्देश्य में, श्रोता को वस्तुतत्त्व समझाने में सफल बने ।

प्रस्तुत सूत्रों में द्दष्टा त के लिये **ज्ञात** शब्द का प्रयोग किया गया है । जिसके माध्यम से श्रोता या प्रतिवादी को सरलता से सम्यग् बोध हो जावे वह **ज्ञात** है । अथवा श्रोता एव प्रतिवादी जिस बात को जानते हो, जो उन्हें अनुभूत हो, वैसा कथन करते हुए, द्दष्टा त देते हुए अपने आशय को समझाया जाता है । वह द्दष्टा त भी ज्ञात होने से उसकी **ज्ञात** स ज्ञा होती है । अत: यहाँ द्दष्टा त के पर्यायवाची शब्द रूप **ज्ञात** शब्द का प्रयोग करके द्दष्टा तों–उदाहरणों के भेद–विभाजन किये गये हक्त।

व्याख्याकार ने द्दष्टा त के मौलिक सरल चार प्रकार कहे हक्त–

(१) सामान्य ज्ञात-दृष्टा त– साध्य को सिद्ध करने के लिये प्रचलित, सर्व साधारण को समझ में आवे वैसे तर्क युक्त दृष्टा त का कथन करना । यथा– यहाँ पर अग्नि है क्यों कि धुआँ निकल रहा है, जैसे कि रसोईघर । जहाँ धूआँ होता है तो अग्नि भी होती है और तालाब में धूआँ नहीं होता तो वहाँ अग्नि भी नहीं होती । इस तर्क युक्त दृष्टा त को सामान्य व्यक्ति भी जानता है । **(२)आख्यानक ज्ञात**– इसमें घटित घटना या अघटित रूपक का कथन करके अपने आशय को समझाया जाता है । यथा– निदान का फल अहितकारी होता है जैसे कि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती । वह निदान करके चक्रवर्ती तो बना पर तु धर्म प्राप्त नहीं कर सका और मरकर सातवीं नरक में गया । यह घटित दृष्टा त है । कल्पित आख्यान– वृक्ष पर से पत्ते को खिरते हुए देखकर नई कोंपलें हास्य करती है तो पत्ता बोलता है कि– **मुझ बीती तुज बीतसे धीरी बापुडिया ।** तात्पर्य यह है कि यह शरीर सभी का नाशवान है, किसी का गर्व यहाँ रहने वाला नहीं है; एक दिन मिट्टी में मिलजाने का न बर सभी का आने वाला ही है । **(३) उपमान ज्ञात**– उपमा रूप में दृष्टा त देकर तुलना युक्त कथन करना । यथा– इसका हाथ कमल जैसा है, इसका शरीर गर्मीसे मक्खन जैसा पिगलता है, दुबले-पतले को देखकर कहना कि इसका शरीर तो लकडी जैसा है । **(४) उत्पति ज्ञात**– कोई पूछे कि तुम धर्म क्यों करते हो ? तो उसका उत्तर देना कि धर्म किये बिना कर्मों से मुक्ति-मोक्ष नहीं मिल सकता । कोई पूछे कि तुम इस दुकानदार को इतने सारे हजारों ढपये क्यों दे रहे हो ? उत्तर दिया कि रकम चुकाये बिना नवलखा हार प्राप्त नहीं हो सकता । तो यह उपलब्धि–उत्पतिमूलक हेतु दृष्टा त है ।

प्रस्तुत सूत्र में वस्तु तत्त्व को समझाने में दिये जाने शुद्ध-अशुद्ध की अपेक्षा ४ प्रकार के दृष्टा त कहे हक्त– (१) पाप का फल दुःखदायी होता है, जैसे कि कालसौकरिक कसाई(मच्छीमार) नरक दुखों को प्राप्त करता है । यह स पूर्ण और सही भावों को कहने वाला दृष्टा त है । इसे **आहरण ज्ञात** कहा है । (२) एक देश से तत्त्व को कहने वाला दृष्टा त– जैसे कि इसका मुख च द्र के समान है । यहाँ च द्र की का ति और सौम्यता शीतलता मात्र की ही विवक्षा है कि तु च द्र की गोलाई आदि अपेक्षित नहीं है, इसे **आहरण तदेश ज्ञात** कहा है ।

(३) जो दृष्टा त अपने लक्ष्य विरोधी का कथन करने वाला होवे– जैसे कि शब्द अरूपी है अतः शाश्वत है जैसे कि घट । यहाँ **घट** का दृष्टा त शाश्वतता सिद्ध करने में दिया गया है जब कि घट स्वय शाश्वत नहीं है, वह तो पुढष कृत और विनाशी पदार्थ है । इसे **आहरण तद्दोषी ज्ञात** कहा गया हक्त । (४) जो दृष्टा त अपने लक्ष्य की सिद्धि करने के साथ लक्ष्य से अतिरिक्त की भी सिद्धि करे– जैसे कि आत्मा अकर्ता है क्यों कि अरूपी है । जैसे कि आकाश । यहाँ आकाश का दृष्टा त लक्ष्य को सिद्ध करता है साथ ही अन्य अमान्य तत्त्व की सिद्धि करता है कि आकाश तो अकर्ता के साथ अभोक्ता भी है तो आत्मा भी **अभोक्ता** है, ऐसे अमान्य तत्त्व की सिद्धि भी करता है । यह दृष्टा त भी तीसरे दृष्टा त के समान दूषित है कि तु उससे कम दूषित है । इसे **उपन्यासोपनय** ज्ञात कहा गया है ।

ये मौलिक चार प्रकार दृष्टा त के हक्त । इन चारों के पुनः ४-४ भेद शास्त्रकार ने किये हक्त, उन सभी को व्याख्याकार ने दृष्टा त देकर समझाये हक्त । वे सभी दृष्टा त भिन्न-भिन्न गुणों की पुष्टी करने वाले हक्त । उनमें कई दृष्टा त मोक्ष हेतु की पुष्टी करने वाले और कई दृष्टा त श्रोता या प्रतिवादी को अपना सही आशय समझाने में उपयोगी मात्र होते हक्त । यहाँ सूत्र में चार की स ख्या में सुमेल हो जाने से ये मूल-४ और उत्तर भेद १६ नाम निर्देश मात्र से कहे गये हक्त ।

जिनवाणी का कुशलतापूर्वक निरूपण करने की योग्यता में वे सभी दृष्टा त और उनके प्रकार तथा तरीके साधक को अनुभव वृद्ध बनाने वाले हक्त । अतः इन सभी की ज्ञेयता एव उपादेयता स्वतः सिद्ध है ऐसा समझना चाहिये ।

इन प्रभेदों में १६ वाँ भेद **हेतु** कहा गया है ।जिसके भी अन तर ९७ वें सूत्र में ४-४ करके कुल–१२ भेद बताये गये हक्त । साध्य को सिद्ध करने के लिये हेतु दिये जाते हक्त उनके भेद– (१) सहज-सरल हेतु (२) अनेक विशेषणों युक्त विस्तृत हेतु (३) साध्य को सिद्ध करे और अन्य को भी सिद्ध करे ऐसा हेतु । ऐसे द्वयार्थक हेतु से मूढता–भ्रम उत्पन्न होता है । (४) इस उत्पन्न होने वाले भ्रम का निवारण करने वाला हेतु । पुनश्च–(१)प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) उपमान और (४) आगम; इन चार प्रमाण को भी यहाँ हेतु के भेद में कहा गया है।

पुनश्च- (१) अस्तित्व सिद्ध करने वाले अस्ति रूप हेतु (२) अस्तित्व सिद्ध करने वाले नास्ति रूप हेतु (३) नास्तित्व सिद्ध करने वाले अस्ति रूप हेतु (४) नास्तित्व सिद्ध करने वाले नास्ति रूप हेतु। यथा- १. यहाँ अग्नि है क्यों कि धूम है । २. अभी दिवस है क्यों कि अ धकार हुआ नहीं है । ३. यहाँ अग्नि नहीं है क्यों कि जल भरा है। ४. यहाँ वृक्ष नहीं है क्यों कि कहीं भी छाया नहीं दिखती है । इस प्रकार हेतु के उच्चारण का सही ज्ञान भी अपने आशय का सम्यक् निरूपण करने में उपयोगी होता है । यह ज्ञान वक्ता, उपदेष्टा एव शासन प्रभावना करने वाले साधकों के वचनों की उपादेयता की सिद्धि में उपयोगी एव महत्त्वशील होता है ।

प्रश्न-८ : चौभ गियों द्वारा इस उद्देशक में क्या समझाया गया है ?

उत्तर- पूर्व उद्देशक अनुसार यहाँ भी दो प्रकार की चौभ गियाँ है- (१) मात्र पुढषों की ४३ चौभ गियाँ । (२) पक्षी, वृक्ष, यान, युग्य(डोली), सारथी, हाथी, घोडा, पालखी, पुष्प और घोडे की उपमा से युक्त पुढष की ४८ चौभ गियाँ है और फल की उपमा से युक्त आचार्य की २ चौभ गियाँ है यों कुल ४३+४८+२=९३ चौभ गियाँ कही है । जिसमें कई चौभ गियाँ अनेका तिक स्वरूप दर्शक है और कई गुणस पन्न बनने की प्रेरक है । कुछ चौभ गियाँ व्यवहार सूत्र आदि में आई है उनकी गणना उपरोक्त स ख्या में नहीं की गई है । क्यों कि उनकी मौलिक विवेचना उन्हीं सूत्रों में है । यहाँ तो स ख्या की दृष्टि से पुन: स कलन मात्र है ऐसा समझना चाहिये । उपरोक्त सभी चौभ गियों की निष्पत्ति एव श्रेष्ठता आदि पूर्व उद्देशों के समान समझ लेनी चाहिये ।

विशेष में- सूत्र-२६ में आचार्य के गुणों के लिये फल आदि की उपमा का आशय इस प्रकार है- (१) आँवला- रोचक होने के साथ खट्टा है (२) द्राक्ष- रोचक होने के साथ अम्लता और मधुरता दोनों से युक्त है (३) दूध-अम्लता रहित अल्प मधुर है और (४) खा ड-प्रतिपूर्ण मधुर है कि जो अन्य फीके पदार्थों को भी मधुर बनाती है ।

आचार्य भी अपने शिष्यों को रोचक होते हक्त फिर भी (१) कोई बात-बात में उग्रता से शिष्यों को अनुशासित करते हक्त वे आँवले की उपमा वाले हक्त । (२) कोई अत्य त जरूरी होने पर कि चित् उग्रता धारण करते हक्त, अधिकतम मधुर व्यवहार रखते हक्त वे द्राक्ष फल समान

कहे गये हक्त । (३) कोई सामान्य रूप से मधुर व्यवहार के द्वारा स घ स चालन करते हक्त वे दूध की उपमा वाले हक्त । (४) कोई अत्य त मधुरता, आत्मीयता से इस प्रकार शिष्यों को अनुशासित करते हक्त कि अन्य अनेक स त स्वत: शा त स्वभावी मधुर व्यवहारी बन जाते हक्त ऐसे आचार्य शक्कर की उपमा वाले हक्त ।

प्रश्न-९ : इस उद्देशक में अन्य भी किन-किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- उपरोक्त आठ प्रश्नोत्तर के विषयों के अतिरिक्त निम्न विषयों का निरूपण है- **(१)** चार प्रकार के शूरवीर होते हक्त-**१. क्षमा में शूरवीर** तीर्थंकर होते हक्त । २. **तप में शूरवीर** अणगार होते हक्त । तीर्थंकरों का छद्मस्थ काल अल्प होता है, अणगारों का देशोन क्रोड पूर्व वर्ष का आयुष्य होता है एव धन्ना जैसे अणगार तपशूर कहलाते हक्त । ३. **दानशूर** वैश्रमण देव, तीर्थंकरों के जन्म व दीक्षा समय भ डार भरते हक्त, उनके पारणे के समय सोनैया की वृष्टि करते हक्त । ४. **युद्ध में शूर** वासुदेव होते हक्त । अपेक्षा विशेष से तथा ४ की स ख्या की मुख्यता से ये कथन है । **(२)** पृथ्वी, पानी, वनस्पति और त्रस ये चार द्विचरम शरीरी हो सकते हक्त अर्थात् मनुष्य भव करके मोक्ष जा सकते हक्त । **(३)** चार शरीर जीव निकल जाने के बाद रहते नहीं हक्त या दिखते नहीं हक्त, विनष्ट या अदृश्य हो जाते हक्त- वैक्रिय, आहारक, तेजस, कार्मण । औदारिक शरीर का कलेवर जीव बिना भी बहुत समय रहता है, दिखता है । **(४)** बादर पृथ्वी, अप्, वायु और वनस्पतिकाय ये चारों उपपात(उत्पत्ति) आश्री स पूर्ण लोक को स्पर्श करते हक्त । ये कोई भी लोक के एक चरमा त से दूसरे चरमा त तक वाटे वहेता में होते हक्त । बादर तेउकाय में ऐसा नहीं होता है क्यों कि उसकी उत्पत्ति लोक के चरमा त में नहीं होती है । **(५)** चारों का एक शरीर चर्मचक्षु से नहीं दिखता है अस ख्य शरीर हो तो दिखता हक्त- पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु । वनस्पति में फल एव बीज के एक जीव के शरीर भी दिखते हक्त । **(६)** गणित के चार प्रकार हक्त- १.जोड, बाकी, गुणा, भाग रूप । २.व्यवहार गणित-स क्षिप्त में उपरवाडी से हिसाब करना । ३. डोरी, स्केल, गज आदि के माप रूप गणित । ४. त्रैराशिक, प चराशिक, वर्गमूल आदि । इनके सिवाय और भी गणित के रेखागणित, बीजगणित, भ गगणित आदि प्रकार होते हक्त कि तु यहाँ ४ स ख्या की मुख्यता से कथन है ।

(७) ऊर्ध्वलोक में चार प्रकाश करने वाले होते हक्त– देवशरीर, देवी-शरीर, विमान और आभूषण । तिरछा लोक में ४ प्रकाशक– सूर्य, च द्र, मणी और अग्नि । प्रकाशक में चमकने वाले पदार्थों की गिनती नहीं है कि तु आसपास प्रकाश फैलाने वाले पदार्थ गिनाये हक्त ।

इसके अतिरिक्त अनेक विषय अन्य आगमों में या पूर्वस्थानों में कहे हुए हक्त, यथा– जुम्मा, लेश्या, आचार्य, शिष्य, पुढष, देवागमन, चारकारणों से लोक में उद्योत-अ धकार, लोक में समान पदार्थ, पडिमा, अस्तिकाय आदि । तत्स ब धी विश्लेषण यथास्थान उन-उन सूत्रों में देखना चाहिये ।

विशेष अवशेष : पेटरबार से हुई विचारणा से उद्भूत एक श का समाधान ।

प्रश्न–१० : स्थाना ग स्थान– ३ तथा ४ में क्रमशः पुद्गल और जीव की गति में अवरोध होने में ढक्षता का कारण दोनों जगह कहा है, उसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– स्था.३।४।५३। में पुद्गल की गति में अवरोध के तीन कारण कहे है । जिसमें एक कारण ढक्षता से भी पुद्गल की गति का अवरोध होना कहा है, यह कथन लोक की अपेक्षा से है । स्था.४।३।९१। में अलोक में जीव की अगति के चार कारण कहे हक्त, इसमें भी ढक्षता का एक कारण कहा है । अलोक में तो आकाश के सिवाय कुछ है ही नहीं, अत: वहाँ के क्षेत्र का ढक्ष होना स्वाभाविक है अर्थात् वातावरण की स्निग्धता का वहाँ सर्वथा अभाव ही है, स्निग्धता वर्ताने वाला कोई भी तत्व वहाँ नहीं होता है । जिस तरह स सारी आत्माओं में स्नेह गुण होता है इसलिये वे अनेक पुद्गलों को ग्रहण कर सकते है और सिद्धों की आत्मा में स्नेह का सर्वथा अभावरूप ढक्षभाव होता है । जिसके कारण वे कोई प्रकार के पुद्गल ग्रहण नहीं करते हक्त ।

जिस तरह सिद्धों की आत्मा और स सारी की आत्मा द्रव्य की अपेक्षा समान है फिर भी स योगी या अस योगी अवस्था के कारण दोनों के स्वभाव में भिन्नता देखी जाती है । वैसे ही लोक के आकाश प्रदेशों और अलोक के आकाश प्रदेशों की स्वभाव स ब धी भिन्नता है । क्यों कि लोक के आकाश प्रदेशों में अनेक तत्वो का स योग है और अलोक के आकाश प्रदेश सिद्धात्मा जैसे मिश्रणता से रहित हक्त ।

अलोक की इस भिन्नता को ही शास्त्रकार ने ढक्षता शब्द से कहा है ऐसा समझना चाहिये । स्था.३।४।५३ के अनुसार लोक में भी जहाँ वातावरण की स्निग्धता अत्यधिक कम और ढक्षता अधिक हो तो वहाँ भी पुद्गल की गति में अवरोध होता है ।

वैज्ञानिक लोग भी कहते है कि आकाश म डल में भ्रमण करते-करते अमुक क्षेत्र ऐसा भी आता है जहाँ पर वातावरण के कारण गति अवढद्ध हो जाती है अर्थात् उस-उस सीमा क्षेत्र के बाद या ऊ चाई के बाद या त्रिक वाहन(रोकेट वगैरह) गति करते- करते ढक जाते है। तात्पर्य यह है कि धर्मास्तिकाय के सिवाय भी गति सहाय में पुद्गल (वातावरण की) स्निग्धता भी काम करती है । हम अपने गाँव-नगरों में देखते है कि ट्रेन के चलने की एक सरीखी आवाज होते हुए भी वह अमुक मोसम में चार-पाँच किलोमीटर तक भी स्पष्ट सुनाई देती है और अमुक सीझन में वह एक किलोमीटर तक ही करीब सुनाई देती है । यहाँ भी पुद्गल गति में वातावरण की ढक्षता के बाधक होने का स्था.३।४।५३ का नियम लागु पडता है।

इस प्रकार यहाँ कथित रूक्षता शब्द से वर्णादि में आने वाले रूक्ष स्पर्श को नहीं समझकर वातावरण की सरसता-नीरसता रूप तात्पर्य समझना चाहिये। जिससे उपरोक्त दोनों सूत्रों में आये रूक्षता का तात्पर्य होगा कि (१) अलोक में–अलोकाकाश में पूर्ण नीरसता के कारण अरूपी सिद्धों की गति नहीं होती है । (२) लोक में भी वातावरण में जहाँ सरसता की अत्यधिक कमी और नीरसता(ढक्षता) की मात्रा अधिक होती है वहाँ स्थूल रूपी पुद्गल की गति भी अवढद्ध होती है ।

स्थान–४ : उद्देशक–४

प्रश्न–१ : प्रस्तुत उद्देशक में किन-किन विषयों का निरूपण है?

उत्तर– यहाँ चार की स ख्या में समाविष्ट होने वाले अनेक विषयों का अक्रमिक वर्णन किया गया है, यथा– विष, व्याधि-चिकित्सा, आसुरी आदि भावना, प्रव्रज्या, उपसर्ग, कर्म, धर्मद्वार, आयुष्यब ध, वाद्य, नृत्य, गीत आदि तथा तुलनात्मक पुढष की, आचार्य-भिक्षुकी, माता-पिता

की, आवर्त-कषाय की कुल ६४ चौभ गियाँ एव मात्र पुढष की १५ चौभ गियाँ है तथा अन्य अनेक छुटकर विषयों का वर्णन है ।

प्रश्न–२ : बिच्छु और सर्प तो विषैले ज तु है ही, पर तु मेढक और मनुष्य में भी विष होता है क्या ?

उत्तर– बिच्छु और सर्प तो जाति स्वभाव से ही काटने वाले प्राणी है। इसके सिवाय मधुमक्खी, भमरी, डा स, मच्छर आदि प्राणी भी काटने के स्वभाव वाले होते हक्त । उनमें प्रत्येक में कुछ न कुछ विष तो होता ही है । उसी कारण इन जीव-ज तुओं के काटने पर जलन, पीडा आदि होती है एव विषनाशक प्रयोग से शा त भी हो जाती है ।

मनुष्य, मेढक, गाय-भेंस आदि कई प्राणी सामान्यत: काटने के स्वभाव वाले नहीं है । तथापि छोटे बडे सभी प्राणियों के मुख, दाढा आदि में अल्पाधिक विष की मात्रा तो होती ही है ।

प्रस्तुत उद्देशक के छट्ठे सूत्र में चार की स ख्या के कारण बिच्छु, मेढक, सर्प और मनुष्य इन चार की दाढाओं का उत्कृष्ट विष सामर्थ्य बताया है । जो उत्कृष्ट विष कभी किसी के मात्र क्षमता की अपेक्षा होता है । प्रवृत्ति की अपेक्षा सामान्य या मध्यम विष की ही प्रवृत्ति होती है, उत्कृष्ट विष प्रवृत्ति रूप में नहीं होता है, वह मात्र क्षमता की अपेक्षा ही यहाँ सूत्र में बताया गया है ।

बिच्छु चौरेन्द्रिय प्राणी है इसलिये उसका उत्कृष्ट विषय प चेन्द्रिय से कम होता है । मेढक, सर्प और मानव प चेन्द्रिय होते हुए भी क्रमश: अधिक-अधिक विकास वाले हक्त । अत: उनका उत्कृष्ट विष भी क्रमश: अधिक-अधिक बताया है । उत्कृष्ट विष व्याप्त करने की क्षमता इस प्रकार कही है– (१) बिच्छु की आधा भरत क्षेत्र प्रमाण । (२) मेढक की भरतक्षेत्र प्रमाण । (३) सर्प की ज बूद्वीप प्रमाण और (४) मनुष्य की ढाईद्वीप प्रमाण । यह उत्कृष्ट क्षमता का परिमाण केवलज्ञान का विषय है, छद्मस्थों के लिये यह श्रद्धागम्य है ।

प्रश्न–३ : चिकित्सा, चिकित्सक एव मूल व्याधि वगैरह के विषय में यहाँ क्या निरूपण किया गया है ?

उत्तर– शरीर में उत्पन्न समस्त व्याधियाँ मूल में चार प्रकार की है– (१) वातजन्य–वायुविकार से उत्पन्न (२) पित्तजन्य–पित्तविकार से उत्पन्न (३) कफजन्य–कफ के विकार से उत्पन्न (४) सन्निपातिक–

तीनों के विकार से उत्पन्न अर्थात् उपलक्षण से वात-पित्त, वात-कफ, पित्त-कफ और वात-पित्त-कफ यों चारों विकल्प इस चौथे भेद में समझ लेना चाहिये ।

चिकित्सा–उपचार की सफलता के चार अ ग हक्त– **(१) कुशल वैद्य**– इसके ४ गुण हक्त– १.चतुराई से कार्य करने वाला २. आयुर्वेद शास्त्रों का पारगामी ३. निदान करने में अनुभवी ४. शरीर से और विचारों से पवित्र अर्थात् स्वच्छ शरीर, वस्त्रादि वाला एव रोगी के प्रति अनुक पा भाव वाला तथा स्वार्थ या द्वेष रहित । **(२) औषध**– योग्य गुणस पन्न, सुविधि से निष्पन्न,दोष(ग दगी) रहित, योग्य मात्रा में सेवन । **(३) रोगी**– इसके चार गुण हक्त– १. उपचार योग्य स पत्ति स पन्न २. वैद्य पर विश्वास करने वाला ३. रोग स ब धी हकीकत स्पष्ट करने वाला अर्थात् वैद्य के सामने सही बात कहने वाला ४. योग्य धैर्य रखने वाला अर्थात् स्थिरता से उपचार कराने वाला **(४) योग्य सेवा-परिचर्या करने वाले**– १. रोगी के प्रति हितैषी ।२. स्वय के और रोगी के वस्त्र, शय्या, शरीर को स्वच्छ रखने वाले ।३. सेवा करने में चतुर ।४. रोगी के चित्त की आराधना करने में, उसे प्रसन्न रखने में बुद्धिशाली ।

चिकित्सक की प्रथम चौभ गी– (१) कोई व्यक्ति अपने किसी भी रोग की चिकित्सा कर सकता है (अपना अनुभवी) । (२) कोई मात्र दूसरों को दवा बता सकता है खुद के लिये घबरा जाता है कुछ नहीं कर सकता । (३) कोई सावधानी पूर्वक स्व-पर दोनों की चिकित्सा कर सकता है । (४) कोई रोगग्रस्त या अतिवृद्ध हो जाने से रिटायर चिकित्सक होता है, वह स्व-पर किसी की चिकित्सा नहीं कर सकता । **दूसरी चौभ गी**– (१) कोई मात्र शल्य चिकित्सा करने वाला डोक्टर होता है । (२) कोई मात्र घाव के खून आदि की सफाई करने वाला क पाउन्डर होता है । (३) कोई दोनों काम स्वय करता है । (४) कोई मात्र परामर्श देता है, करने वाले आसिस्टन्ट उसके अलग होते हक्त । **तीसरी चौभ गी**– शल्य चिकित्सा और उसकी मरहमपट्टी स ब धी है । **चौथी चौभ गी**– शल्य चिकित्सा और घाव भरने तक की प्रक्रिया स ब धी है । तात्पर्य यह है कि कहीं अलग-अलग कार्य करने वाले अलग-अलग व्यक्ति होते हक्त और कहीं अल्प काम होने से सभी कार्य एक ही व्यक्ति कर लेता है ।

घाव-घूमडे भी कोई चमडी से बाहर पीडा करने वाले और कोई चमडी केअ दर पीडाकारी होतेहक्त, इसके ४ भ ग हक्त । कोईमेंअ दर खराबी सडान होती है, कोई में बाहर दिखती है, इसके भी ४ भ ग हक्त । ऐसे अनेक विकल्पों से यहाँ इस विषय का वर्णन किया गया है ।

इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी चिकित्सा स ब धी वर्णन प्राप्त होते हक्त, यथा– (१) **आचारा ग सूत्र**–श्रु.२, अध्य.१५ में सचित्त अचित्त जडीबूटियों स ब धी औषध उपचार का वर्णन है । वहाँ पर शुद्ध-अशुद्ध म त्रबल से भी उपचार की चर्चा की गई है । (२) **व्यवहार सूत्र** में सर्प काटने पर, झाडा-झपटा(मंत्र विधि) कराने का स केत किया गया है । वैसा करना स्थविरकल्पी–सामान्य साधुओं को कल्पता है । जिनकल्पी–पडिमाधारी भिक्षु को वैसा कराना निषिद्ध है । वहाँ यह भी स्पष्ट किया गया कि स्थविरकल्पी साधु को सर्पद श का झाडा-झपटा कराने का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं आता है ।(३) **बृहत्कल्प सूत्र** में रोग उपशा ति के लिये स्वमूत्र चिकित्सा रूप में मूत्र को पीने का एव उससे मालिस करने का तथा जरूरी होने पर साधु-साध्वी को आपस में स्वमूत्र लेने-देने का भी कथन है । इस तरह वहाँ स्वमूत्र के पीने और लगाने रूप दोनों उपयोग कहे हक्त ।

(४) **निशीथ सूत्र** में रसोई घर के जमे हुए धूँए से भी औषध उपचार किये जाने का निर्देश है तथा इसी शास्त्र में गोबर स ब धी चिकित्सा की चर्चा भी है। (५) विशिष्ट रोगात क में उपवास चिकित्सा भी **उत्तराध्ययन** आदि सूत्रों से फलित होती है । अनेक असाध्य रोगों में उपवास रामबाण औषध है कि तु उसमें पूर्ण धैर्य युक्त पुष्ट स स्कारित मानस होना अत्य त आवश्यक है । उपवास चिकित्सा में उपवास की स ख्या २१, ३१ या ४१ तक जाने पर उम्र ल बी हो तो असाध्य से असाध्य बिमारी (केन्सर आदि) भी जडमूल से समाप्त हो जाती है । छोटे-मोटे रोग प्राय: खान-पान की अशुद्धि से या विमात्रा से होते हक्त, वे तो १,२ या ३ उपवास से ही चले जाते हक्त । इस उपवास चिकित्सा में गर्मपानी के सिवाय सभी खाद्य और पेय पदार्थों का एव औषध का त्याग आवश्यक होता है । कमजोरी, श्रम की थकान आदि हो तब उपवास चिकित्सा करना निषिद्ध है । पेट की खराबी या ज्वर-बुखार में भी उपचार रूप से १, २ या ३ उपवास करना बहुत होता है ।

सभी प्रकार के रोगों की उपवास चिकित्सा में उपवास समाप्ति पर खान-पान का विवेक रखना आवश्यक होता है । जितने उपवास किये हों उतने दिन अति तीखा, अति खारा, अति मीठा, अति गरिष्ट, अति लूखा नहीं खाने का ध्यान रखना होता है, भूख से कम और प्रत्येक चीज एकबार में अल्प मात्रा में ली जाती है । औषध भेषज का भी यथाशक्य परहेज ही रखना होता है । थोडा बहुत कष्ट आवे तो भी धैर्य और अल्पाहार से उसे पार करना होता है । इस प्रकार ध्यान रखने पर तपस्या युक्त चिकित्सा पारणे में भी सफल सुखदायी बन जाती है । इसी शास्त्र के नवमें स्थान में नव की स ख्या का वर्णन करते हुए रोगोत्पत्ति के ९ कारण कहे हक्त । जीवन में उन बातों का ध्यान रखा जाय तो रोगोत्पत्ति से बचा जा सकता है ।

प्रश्न–४ : आसुरी, आभियोगिक, किल्विषिक आदि भावनाओं के विषय में यहाँ क्या निरूपण किया गया है ?

उत्तर– उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ वें अध्ययन में आसुरी आदि भावनाओं के विषय में पद्यात्मक वर्णन है । यहाँ पर उन्हीं का भेदात्मक कथन है । यहाँ यह कहा गया है कि स यम का ध्व श–विनाश(देश विनाश) करनेवाली ४ भावनाएँ हक्त, वे चार-चार प्रकार से होती है ।**(१) आसुरी भावना के ४ प्रकार–** क्रोधशीलता, कलहशीलता, लौकिक आश सा युक्त तपस्या एव निमित्त बताकर आजीविका करने से जीव असुरत्व कर्म का उपार्जन करके असुरकुमार देवों में या नरक में जाता है । **(२) आभियोगिकी भावना के ४ प्रकार–** स्व उत्कर्ष–स्वप्रश सा, परनिंदा, भूतिकर्म(रक्षापोटली वगैरह कृत्य), कौतुक कर्म– अभिम त्रित जल से स्नान आदि के निर्देश ।**(३) स मोही भावना–** उन्मार्ग देशना, मुक्तिमार्ग में अ तराय, कामभोगों की आका क्षा और निदान करना इन आचरणों द्वारा जीव मोहकर्म से भारी बनता है । **(४) किल्विषिक भावना–** १. अरिह तो का और २. उनके धर्म का अवर्णवाद बोले ३. आचार्य, उपाध्याय या गुढ का अवर्णवाद करे ४. साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध स घ का अवर्णवाद बोले अर्थात् निंदा करे । इस तरह चार-चार प्रकार की चारों भावना स ब धी आचरण करने से उन-उन भावनाओं को पुष्ट करता हुआ जीव अधिक स यम का विनाश (देश विनाश) करने वाला होता है ।

उत्तराध्ययन सूत्र में पाँचमी का दर्पिक भावना विशेष है और प्रस्तुत में चार स ख्या का प्रकरण होने से १ कम कही है । यों भी का दर्पिक वृत्ति से स यम का विनाश न्यूनतम होता है । वहाँ उत्तराध्ययन सूत्र में मोही भावना में बालमरण–आत्मघात और लोकनिन्द्य दोष कुशील वगैरह का कथन है । बाकी तीन भावना का वर्णन दोनों जगह समान है । वर्णन क्रम भी दोनों सूत्रों में अलग- अलग है वह भी नगण्य है क्यों कि ये भावनाएँ कोई विशेष क्रम वाली है भी नहीं ।

प्रश्न–५ : प्रव्रज्या के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण किया गया है?

उत्तर– स्थान–३, उद्देशक–२, सूत्र १० से १३ के चार सूत्रों में तीन-तीन करके १२ प्रकार की प्रव्रज्या कहीं है एव यहाँ पर उन्ही तीन-तीन में एक-एक मिलाकर चार-चार स ख्या में १६ प्रकार से प्रव्रज्या ग्रहण करने का कथन किया गया है । प्रथम और द्वितीय चौभ गी में **अप्रतिबद्ध प्रव्रज्या** अ तिम चौथी यहाँ विशेष कही है । तीसरी चौभ गी में असहाय एकाकी होने से ग्रहण की जाने वाले दीक्षा यहाँ विशेष कही है । चौथी चौभ गी में यहाँ प्रलोभन से ली जाने वाली दीक्षा अ तिम चौथी कही है । इस प्रकार १२ में ४ मिलाने से १६ प्रकार से ली जाने वाली दीक्षा का कथन यह सूत्र ६१ से ६४ में हक्त ।

सूत्र–६५ में दीक्षा लेने के बाद की आचार–प्रवृत्ति स ब धी ४ प्रकार की दीक्षा कही है– (१) नटवृत्ति या प्रवचन आदि से प्रसन्न करके भिक्षा प्राप्त करने वाले की प्रव्रज्या (२) बल-सामर्थ्य प्रतिष्ठा दिखाकर भिक्षा करने वाले की प्रव्रज्या (३) सि ह वृत्ति से बलपूर्वक किसी को भयभीत कर, रौब जमा कर भिक्षा लेने वाले की प्रव्रज्या (४) सियाल की तरह दीनता करके रा क भिखारी की तरह भिक्षा प्राप्त करने वाले की प्रव्रज्या ।स यम में ये चारों ही अप्रशस्त त्याज्य वृत्ति निंद्य प्रवृत्ति है अथवा सि ह वृत्ति वाली में सि ह के समान अदीन वृत्ति से स यम नियमों के अनुसार सहज भिक्षा प्राप्त करने वाले की प्रव्रज्या, ऐसे अर्थ की अपेक्षा यह प्रशस्त प्रव्रज्या है ।

सूत्र–६६ में खेती की उपमा से प्रव्रज्या के प्रकार और स्वरूप का कथन है– (१) **वावित प्रव्रज्या**– एक बार बोए हुए गेहूँ के समान सामायिक चारित्र । (२) **परिवाविता प्रव्रज्या**– एक बार उगे हुए को निकाल कर पुनः बोए जाने वाले चावल आदि के समान छेदोपस्थापनीय

चारित्र । (३) **निंदिता प्रव्रज्या**– मुख्य धान के आस-पास के घास को निकालने के समान लगे दोषों की शुद्धिरूप में ली जाने वाली छेद प्रायश्चित्त वाली दीक्षा । (४) **परिनिंदिता प्रव्रज्या**– बार बार घास को निकालने के समान पुनः पुनः लिया जाने वाला छेद प्रायश्चित्त या स लेखना-स थारा के समय लिया जाने वाला छेदोस्थापनीय चारित्र ।

सूत्र–६७ में काटे हुए धान्य की उपमा से दोष एव शुद्धि की अपेक्षा ४ प्रकार की दीक्षा कही है– (१) काट कर रखे पूले के समान अतिचार दोष रूप कचरा अधिक और उसकी अपेक्षा स यम सार रूप धान्य अल्प वाली निःसार प्रव्रज्या । (२) बैलों के चलने के बाद बडा कचरा निकाले हुए एव बिना उफणे हुए धान्य के समान स यम सार के साथ अतिचार, मूल-उत्तर गुण दोष युक्त, दोष बहुल प्रव्रज्या । (३) उफण कर साफ किये एव बिखरे हुए धान्य के समान अतिचारों की शुद्धि युक्त तथापि पुनः दोष लगने की शक्यता वाली प्रव्रज्या (४) पूर्ण साफ किये धान्य के ढेर के समान परिपूर्ण निरतिचार पालन की जाने वाली प्रव्रज्या । इनमें पु जित धान्य रूप प्रव्रज्या श्रेष्ठ है ।

इस प्रकार तीसरे स्थान और इस चौथे स्थान में अनेक प्रकार की प्रव्रज्या के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है । ये सभी ज्ञेय विकल्पों से साधक अपने हितावह उपादेय विकल्प प्रव्रज्या वाला बनकर स यम की शुद्ध आराधना करे, यही उद्देश्य शास्त्रकार का इस वर्णन के साथ रहा हुआ है ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–६ : उपसर्ग कितने प्रकार से हो सकते हक्त ?

उत्तर– देव, मनुष्य और तिर्यंच स ब धी तीन प्रकार से उपसर्ग हो सकते हक्त । यहाँ चार की स ख्या का प्रकरण होने से खुद के द्वारा या स्वतः आने वाले कष्ट को चोथे प्रकार के उपसर्ग के रूप में गिना है । यों चारों प्रकार के उपसर्ग के पुनः ४-४ प्रकार(कारण) भी दर्शाये हक्त ।

(१) देवस ब धी उपसर्ग– देवता– १. कुतूहल–हास्य विनोद से । २. द्वेष–पूर्व वैर के कारण । ३. परीक्षा–धर्म से विचलित करने । ४. अन्य किसी के अनुग्रह के लिये वगैरह से भी देवता कष्ट–उपसर्ग उत्पन्न करते हक्त । **(२) तिर्यंच स ब धी उपसर्ग**– पशु-पक्षियों द्वारा उत्पन्न होने वाले उपसर्ग के ४ कारण– १. भयभीत होकर अपनी सुरक्षा के लिये । २. अपने बच्चों की सुरक्षा के उद्देश्य से । ३. क्रोधित

बनकर या द्वेष से । ४. क्षुधातुर होकर अपनी आहार प्राप्ति के लिये वे मनुष्यों को या अन्य पशु-पक्षियों को उपसर्ग कर सकते हक्त । **(३) मनुष्य स ब धी उपसर्ग–** मनुष्य, मनुष्य को कष्ट–उपसर्ग ४ कारण से कर सकते हक्त– १. हास्य विनोद कुतूहल से, २. क्रोधावेश में द्वेष से, ३. श का निवारण हेतु या परीक्षार्थ, ४. कुशील सेवन, पर स्त्री ल पटपने से मनुष्य अन्य को कष्ट प्रहार आदि कर सकते हक्त ।

(४) आत्म समुत्थ उपसर्ग– कष्ट के ४ प्रकार हक्त– १. टकराने से २. गिर पडने से ३. पक्षाघात–लकवा आदि से ४. स धिवात से शरीर के जोड स्थानों के जकडा जाने से । इसके अतिरिक्त आकस्मिक भूक प से, आग लगने से, बिजली पडने से, दिवाल छत पडने से । ये सभी उपसर्ग आत्मा को विचलित चल-विचल करने वाले होते हक्त । जो इन उपसर्गों के आने पर धैर्य से अपने लक्ष्य में अडोल स्थिर रहते हक्त वे परीषह-उपसर्ग विजेता गिने जाते हक्त । इन सभी उपसर्गों की उत्पत्ति कभी अपनी कोई छोटी सी भूल से अथवा कभी बिना भूल के अशुभ कर्मोदय से भी हो जाती है ।

प्रश्न–७ : शुभकर्म दु:खदायी और अशुभकर्म सुखदाई किस तरह होतेहक्त?

उत्तर– शुभ कर्मोदय के नशे में जीव विविध पापाचरण करके उसके परिणाम स्वरूप दु:खों की प्राप्ति करता है तो इस अपेक्षा से वे शुभ कर्म दु:खों की पर परा को बढाने वाले होने से परिणाम में दु:खकारक बनते हक्त । उसी प्रकार अशुभ कर्मों के उदय में उस निमित्त से जीव बोध प्राप्त कर पुण्यकर्म या धर्माचरण करके दु:खपर परा का विनाश करके सुखों का भागी बनता है । इस प्रकार विभिन्न अपेक्षाओं से अनेक विकल्प कर्मों के बनते हक्त, यथा– १. कोई शुभ कर्म के उदय में शुभ ब ध करे । २. शुभ कर्म के उदय में कोई अशुभ कर्मब ध करे । ३. अशुभ कर्म के उदय में कोई शुभ कर्मों का ब ध करे और ४. कोई अशुभ कर्म के उदय में अशुभ कर्मब ध करे ।

(१) कोई शुभ कर्म तत्काल सुखदायी होता है यथा– शाता वेदनीय । (२) कोई शुभ कर्म तत्काल दु:खदाई होता है यथा–घ्राणेन्द्रिय का सु दर क्षयोपशम होने पर दुर्गंध के ज्ञान से तत्काल दु:खानुभव होता है । (३) अशुभ कर्म के उदय से तत्काल सुख होता है यथा– पाप प्रकृति निद्रा के उदय से नींद आने पर शा ति मिलती है। (४) अशुभ कर्म

के उदय से तत्काल दु:ख होता है यथा– अशातावेदनीय कर्म के उदय होने पर । १. पुण्यानुब धी पुण्य २. पुण्यानुब धी पाप ३. पापानुब धी पुण्य और ४. पापानुब धी पाप इन चार विकल्पों की निष्पत्ति भी यहाँ के इन उपरोक्त विकल्पों से होती है । जीव महार भी महापरिग्रही भी पुण्योदय से होता है कि तु उसी अवस्था में लीन रहने पर नरक गति का भागी बनता है तो वह पुण्य भी पापानुब धी पुण्य कहा जाता है। इस प्रकार अन्य विकल्प भी समझ लेने चाहिये ।

प्रश्न–८ : जीव नरक आदि चारों गति का आयुष्य ब ध किन-किन प्रकार के आचरणों से करता है ?

उत्तर– प्रत्येक गति का आयुष्य बा धने में जीव के चार-चार प्रकार के आचरण कारणभूत बनते हक्त अर्थात् चार-चार कारणों से एक-एक गति का आयु बा धा जा सकता है ।

(१) नरकायुब ध के ४ कारण– (१) महार भ के कार्यों से (२) महा परिग्रह वृत्ति से (३) मा साहार करने से (४) प चेन्द्रिय जीवों को मारने से । ऐसी प्रवृत्तियों में, इन प्रवृत्तियों के तीव्र परिणामों में यदि आयुष्य ब ध होवे तो ऐसे समय में जीव नरकायु का ब ध करता है । इसी तरह चारों गति के आयुब ध में समझ लेना चाहिये ।

(२) तिर्यंचायु बा धने के ४ कारण– (१) मायाचार–कपटवृत्ति (२) अतिमाया–धूताई–ठगाई करने से (३) असत्य भाषण से–बार बार झूठ बोलने की प्रवृत्ति से (४) खोटा तोल, खोटा माप करने से, धोखेबाजी–विश्वासघात करने से ।

(३) मनुष्यायु बा धने के ४ कारण– (१) भद्र प्रकृति से जीवन यापन से अर्थात् किसी का बुरा नहीं करने की सहज प्रकृति से । (२) नम्रता, लघुता की सहज प्रकृति से (३) अनुक पा युक्त मानस अर्थात् दु:खी जीव को देखकर उनके प्रति सहज अनुक पा भाव रहे और यथाशक्य उनकी तन मन धन से, यों किसी भी तरह क्षमतानुसार सेवा करे (४) गुणवान, सुखस पन्न जीवों के प्रति ईर्ष्या, मत्सर भाव नहीं रखे किंतु ऐसे पुण्यवान जीवों के प्रति सहज अहोभाव, आन दभाव रखे । ऐसी व्यवहार प्रकृति वाला जीव ऐसे ही परिणामों में आयुष्य ब ध करे तो मनुष्यायु का ब ध करता है ।

(४) देवायुब ध के ४ कारण– (१) सराग स यम–गुणस्थान ६ से

१० तक के स यम पर्याय से (२) पाँचवें गुणस्थान वाले श्रावक जीवन से (३)अज्ञान के साथ विविध तप-त्याग करने से (४)परवशपने कष्ट भोगने से अर्थात् भूख प्यास सहन करने से, ब्रह्मचर्य पालने से । इन चार अवस्थाओं में परिणाम शुभ हो तो देवायुष्य का ब ध होता है ।

जीवन में आयुष्य का ब ध एकबार ही होता है । जीव की प्रवृत्तियाँ परिणतियाँ जीवन में अनेकानेक तरह से पलटती रहती है । स योगवश, भवितव्यतावश किसी भी प्रवृत्ति के परिणामों में आयुब ध हो सकता है, यथा– गोशालकने साधुओं को मारने के समय आयुब ध नहीं किया था किंतु अन्य तप या शुभ परिणामों के समय आयुष्य ब ध किया था तो मुनि-ऋषि घातक होकर भी स्वर्ग का आयुष्य बा धा । प्रदेशी राजा ने जीवनभर की महापापमय प्रवृत्तियों के समय आयुष्य नहीं बा धा था कि तु अल्प(४० दिन के) धर्माचरण के समय देवायुष्य का ब ध किया । ज्ञाता सूत्र वर्णित क डरीक मुनिने हजार वर्ष स यम पालन किया और अ त में तीन दिन के लिये स यम छोडकर राजा बन गये और सातवीं नरक का आयुष्य ब ध कर लिया।

आयुष्य ब ध की इस प्रकार की स्थिति को जानकर साधकों को जीवनभर सदा सर्वदा सावधान रहकर धर्मभावों की आराधना में ही तल्लीन रहना चाहिये । अन्यथा कभी क्षणिक दुष्परिणामों में भी अशुभ आयुब ध हो सकता है । जैसे कि क्रोध में आचार्य मर कर दृष्टिविष च ड कौशिक सर्प बन गये, तब उनकी वर्षों का स यम और आचार्य पद की साधना विनष्ट हो गई ।

प्रश्न–९ : धर्म के द्वार कितने कहे गये हक्त और उसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर– आत्मा में धर्म का प्रार भ या धर्म प्रवेश जिस माध्यम से होता है उन्हें द्वार कहा गया है । व्यवहार में धर्म का **प्रार भ** गुढदर्शन, पर्युपासना, उपदेश श्रवण, व्रत प्रत्याख्यान ग्रहण से होता है कि तु यहाँ पर सहज आत्म गुणों से धर्म प्रवेश की मुख्यता को लेकर उन गुणों को धर्मद्वार रूप कहा गया है । उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन–३ में सरलता गुण से आत्मशुद्धि होना कहा है और उस शुद्ध बनी आत्मा में धर्म का टिकना, स्थाई रहना कहा गया है । यहाँ धर्म के ४ द्वार इस प्रकार कहे हक्त– क्षमा, सरलता, निर्लोभता और नम्रता । वास्तव में इन गुणों के होने पर ही धर्म प्रवेश रूप सम्यक्त्व अवस्था अर्थात् चौथा गुणस्थान रह

सकता है । (१) यदि कोई क्षमा भाव के अभाव में वैर विरोध वृत्ति की वृद्धि करता है तो अन तानुब धी कषाय का उदय होने से चौथा गुणस्थान जो धर्म के प्रार भ के स्थान या द्वार रूप है वही नष्ट हो जाता है और जीव प्रथम गुणस्थान में चला जाता है । (२) सरलता के अभाव में व्यक्ति कपट–मायाचार की वृद्धि करता है तो वह माया की अधिकता से भी सम्यक्त्व का नाश कर मिथ्यात्व को प्राप्त करता है । यथा– मल्लिनाथ भगवान के जीव ने पूर्व भव में उत्कृष्ट स यम तप से अनुत्तर विमान प्राप्त किया था कि तु स यम तप में भी बार बार मायाचरण करने से मिथ्यात्व गुणस्थान में पहुँचकर स्त्रीवेद का ब ध किया था । (३) निर्लोभता के गुण की जगह लोभवृत्ति की अधिकता होने पर परिग्रह की आसक्ति वाला महापरिग्रही जीव नरक का आयु बा धता है तब वह भी चौथे गुणस्थान रूप द्वार से बाहर निकलकर मिथ्यात्व में जाता है तभी नरक का आयुब ध करता है । (४) नम्रता– विनय गुण को दशवैकालिक सूत्र में धर्म का मूल कहा गया है । जैसे मूल के नहीं रहने पर वृक्ष नहीं रह सकता वैसे ही विनय गुण के नष्ट होने पर सभी गुण धीरे-धीरे विलुप्त हो जाते हक्त । अतः यहाँ इन चारों गुणों को धर्मद्वार कहा है जिसकी वास्तविकता उपर स्पष्ट की गई है ।

धर्मप्रज्ञप्ति ग्र थ में 'दान, शील, तप और भावना' इन चारों को धर्मद्वार कहा है । कि तु इस चौथे स्थान में उसका कहीं भी कथन नहीं है । वास्तव में ये धर्म के प्रवेश द्वार न होकर श्रेष्ठ धर्माचरण रूप मोक्ष द्वार है, ऐसा समझना चाहिये । क्यों कि अभयदान-सुपात्रदान, ब्रह्मचर्य–स्वदार स तोष, आभ्य तर-बाह्यतप और १२ भावनाएँ ये सभी मोक्ष साधना की आराधना कराने वाले होते हक्त । उपरोक्त सूत्र में कहे गये सरलता, नम्रता, क्षमा और स तोष ये गुण धर्म टिकने की भूमिका रूप है । अतः उन्हें धर्म के द्वार कहा जाना उपयुक्त है ।

प्रश्न–१० : इस शास्त्र में सा स्कृतिक विषय वर्णन किस प्रकार है और उस वर्णन का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर– भगवतीसूत्र, राजप्रश्नीयसूत्र आदि में देवों द्वारा कई प्रकार के नाटक–नृत्य आदि करना और श्रमण निर्ग्रंथों को दिखाने का वर्णन है । प्रस्तुत शास्त्र में ४ की स ख्या में समाविष्ट होने वाले वाद्य, नृत्य, गेय, नाटक, माला, अल कार तथा काव्य के चार-चार भेद कहे गये हक्त,

यथा– **वाद्य के चार प्रकार–** (१) तत–तारवाले (२) वितत–चर्मावनद्ध, (३) घन–का सा आदि धातु निर्मित (४) झूषिर–पोलार वाले । **नृत्य के चार प्रकार–** (१) ढक ढक कर म द म द नृत्य (२) स गीत की आवाज के साथ नृत्य (३) खुद गाते-गाते नृत्य करना (४) विविध चेष्टाएँ प्रदर्शित करते हुए नृत्य करना । **स गीत के चार प्रकार–** (१) प्रार भ में मधुर गाना, फिर ऊँची आवाज से गाना (२) पद्य–छ द वगैरह उत्तम स्वर से गाना, बीच में ऊँचे स्वर से गाना (३) म द-म द स्वर से गाना, गीत का स्वर नीचे-नीचे ले जाना (४) धीम- धीमे स्वर से गीत को पूर्ण करना अर्थात् अ त में म द म दतम स्वर से पूर्ण करना ।

नाटक के चार प्रकार– (१) कोई छोटी-मोटी घटना का अभिनय करना (२) रामायण महाभारत आदि का नाटक करना (३) राजा म त्री वगैरह का अभिनय करना (४) देशकाल के अनुसार वेशभूषा का प्रदर्शन करना या मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का अभिनय करना । **माला के चार प्रकार–** (१) गू थकर बनी हुई (२) चारों तरफ लपेट कर (३) जडित करके बनी हुई (४) गुच्छे लटकाकर । **अल कार के चार प्रकार–** (१) विभिन्न वस्त्रों से शरीर को सजाना (२) बालों को विभिन्न तरह से सजाना (३) मालाओं से शरीर आदि को सजाना (४) सोने चा दी वगैरह के आभूषणों से शरीर को सजाना । **काव्य के चार प्रकार–**(१) गद्य रूप वर्णन का पद्य के लय से उच्चारण करना । (२) दोहे, श्लोक को अच्छे स्वर से गाना। (३) कथानक को ढाल–चौपाई के रूप में गाना । (४) भजन–स्तवन, राग रागिनी में गाना ।

इन वर्णनों में से कुछ तो धर्म प्रभावना में भी उपयोगी बन सकते हक्त और कुछ मात्र ४ की स ख्या के प्रकरण से अनुरूप विषय के साथ में कहे गये हक्त ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–११ : इस उद्देशक में चौभ गियों का वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर– उपरोक्त प्रश्नोत्तरों के विषय के अतिरिक्त कुल ७९चौभ गियाँ इस उद्देशक में है । जिसमें १५ मात्र पुढषों की कही गई है और ६४ चौभ गियाँ उपमा के साथ पुढषों की, आचार्य की और भिक्षाचरों की, माता-पिता एव राजा की भी कही गई है । प द्रह पुढष की चौभ गियाँ प्राय: पुढषों के बनने वाले विकल्पों के स्वरूप की दर्शक है एव श्रेष्ठ भ गों के समान पुढष को या श्रमण को योग्य गुणस पन्न, अनुक पावान,

परिग्रह और उसकी आसक्ति से मुक्त, वक्ता के साथ शुद्ध गवेषणा गुण युक्त और पूर्व-पश्चात् मित्रता निभाने वाले बनने की प्रेरणा भी ध्वनित होती है ।

उपमा स ब धी ६४ चौभ गियों में सूत्र–१३, १४ में **व्रण** के समान प्रपीडक दु:खदाई पुढष नहीं बनने का, सूत्र–२३–२७ में बादल की उपमा से कथनी और करणी दोनों से उपकारक बनने का निरूपण है । यहाँ बादल और पुढष की चौभ गियों में गर्जना, बिजली और बरसने स ब धी सभी विकल्प वाले बादल होना कहा है । अत: ऐसा एका त नियम नहीं बनता कि गरजने वाले नहीं बरसते । सूत्र २८ में मेघ से माता-पिता को उपमित करके स तान के स रक्षण का और सूत्र–२९ में मेघ से राजा को उपमित करके प्रजा का पक्षपात रहित परिपूर्ण पालक होने का स देश दिया गया है ।

चार प्रकार के कर डियों की उपमा से आचार्यों को शेठ के सोने के और राजा के रत्न कर डिये के समान बहुगुण स पन्न और सर्वगुण स पन्न होना कहा है एव वेश्या और चा डाल की छाबडी सरीखा नहीं होने का स देश है। वृक्ष की उपमा से आचार्य को जातिवान, गुणवान और विशाल गुणस पन्न तथा योग्य शिष्य स पदा से युक्त होना श्रेष्ठ-श्रेष्ठतम बताया है ।

मच्छ की उपमा से भिक्षुओं को भिक्षा के लिये सर्वत्र योग्य क्षेत्र में भ्रमणशील होना कहा है; ऐसा नहीं करे कि केवल नजीक ही गोचरी करे या केवल दूर ही करे । पक्षी की उपमा से भिक्षु को भिक्षा, विहार आदि आवश्यक कार्य के लिये भ्रमणशील होना, आलसी नहीं बनना कहा है तथा स यम के निष्प्रयोजन ऐसे मनमाने भ्रमण न करने का स केत किया है । शेष गोला, चटाई, धारदार पदार्थ, उदक, उदधि, तैराक आदि की उपमा से श्रमणों को स यम में शुद्ध, श्रेष्ठ, पुढषार्थशील, दृढ मनोबली, कर्मक्षय करने में शूरवीर बनने की प्रेरणा दी गई है ।

सूत्र ८० से ८६ तक में कु भ की, कु भ और ढक्कन की उपमा से गुणों से परिपूर्ण बनने की, अन्य को ज्ञान देने वाला बनने की तथा वाणी और हृदय-मन दोनों से मधुर, सत्य, सरल और परोपकारी तथा पवित्र आचरण वाला अमृतकु भ, अमृत ढक्कन के समान बनने की प्रेरणा दी गई है ।

सूत्र-१३७ से अ तिम चौभ गी में कषाय को आवर्त की उपमा देकर बताया गया है कि खरावर्त के समान क्रोध में, उन्नतावर्त के समान मान में, गूढावर्त के समान माया में और आमिषावर्त के समान लोभ में प्रविष्ट व्यक्ति की गति नरक की होती है । खरावर्त= पानी में आने वाला भ वर । उन्नतावर्त=आकाश में ऊँचा चढने वाला व टोलिया । गूढावर्त= बिना किनारे का गोलचक्रा । आमिषावर्त= मा स के लिये उपर म डराने वाले आमिषभक्षी पक्षी ।

इस प्रकार इस चौथे स्थान के चार उद्देशकों में सेंकडों चौभ गियाँ अनेका तिक पहलुओं की पुष्टी करने वाली है एव श्रेष्ठ गुणस प न्न मानव या श्रेष्ठ स यम आराधक श्रमण बनने की प्रेरणा को लिये हुए अनेक ज्ञेय तत्त्वों का बोध कराने वाली है ।

प्रश्न-१२ : अन्य भी किन-किन विषयों का इस उद्देशक में स केत किया गया है ?

उत्तर- इस उद्देशक में निरूपित अन्य अनेक विषय इस प्रकार है- **(१)** स सार के प्राणी प्राप्त सुख-भोगों के स रक्षण और अप्राप्त की गवेषणा में भटकते रहते हक्त । **(२)** नारकी का आहार अत्य त गर्म या शीत पुद्‌गलों का, **तिर्यंच का** आहार खाने में मुश्किल वाला या पचने में मुश्किल वाला, परेशानीदायक एव मा स की उपमावाला कहा गया है । **मनुष्य का** आहार ४ प्रकार का कहा है- असन, पान, खादिम, स्वादिम । देवों का आहार मनोज्ञ वर्णादि युक्त पुद्‌गलों के सार ग्रहण रूप होता है । इसलिये कहा जाता है कि देवता तो वासना के भूखे होते हक्त अर्थात् वे तो अपने यथासमय इच्छा होने पर पुद्‌गलों से सार खींच लेते हक्त । उनके कवलाहार(मुख से खाना) नहीं होता । **(३)** कोंपल, पत्र, पुष्प और फल की निष्पत्ति यह भी वृक्ष की एक प्रकार की विकुर्वणा है अर्थात् ऐसे नये-नये रूप वृक्ष पैदा करता है । यह उनकी औदारिक शरीर रूप विकुर्वणा है, वैक्रिय लब्धि वाली नहीं समझना । **(४)** मेघ- दसहजार वर्ष तक भूमि में सरसता रहे ऐसी वर्षा करने वाला- पुष्कल स वर्तक मेघ होता है । इसी प्रकार **प्रद्युम्न** मेघ से १००० वर्ष, जीमूत मेघ से १० वर्ष और जिम्ह मेघ से अनेक बार बरसने पर १ वर्ष भूमि में सरसता रहती है । **(५)** चारों जाति के देव और पाँचवें मनुष्य और इसी प्रकार चारों की देवियाँ और मनुष्याणियाँ ये पाँचों मर्यादा हीनता

से कोई भी देव या पुढष किसी भी देवी या स्त्री के साथ स वास कर सकता है । मोहकर्म के तीव्र उदय की विड बना से ऐसा कुछ भी स भव हो सकता है पर तु वह कदाचित्क ही होता है, बहुलता से नहीं । **(६)** स्वाभाविक कामभोग ४ प्रकार के हक्त- देवों के शृ गारिक, मनुष्यों के काढणिक, क्षण विनाशी (अशुचिमय), तिर्यंचों के बीभत्स (घृणास्पद), नारकीयों के अत्य त दाढण दुःखदायी । वास्तव में नारकीयों में मैथुन स योग है ही नहीं, विड बना मात्र या दैविक दुःखमय उपद्रविक है । फिर भी ४ स ख्या के क्रम में उनका भी कथन सापेक्ष किया गया है । **(७)** श्रमणस घ के चार विभाग या घटक कहे गये हक्त- साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका । मोक्ष के प्रति सम्यग् श्रम की साधना करने वाले होने से ये चारों ही जिनशासन के प्रमुख घटक हक्त; इन चारों के कीर्तिमान धर्माचरण से स घ अर्थात् भगवान का शासन शोभायमान रहता है । **(८)** व्यक्तियों में बुद्धि की अल्पता-विशालता विभिन्न प्रकार की होती है, यहाँ ४ प्रकार की उपमा सहित बुद्धि कही है- घडे के पानी जितनी सीमित, खड्डे के पानी जितनी, तालाब के पानी जितनी विस्तृत और समुद्र के पानी जितनी अपरिमित बुद्धि वाले व्यक्ति भी मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम वाले होते हक्त, अभयकुमार या बीरबल सरीखे । (९) बेईन्द्रिय की हिंसा करने वाला ४ प्रकार का अस यम करता है- (१-२) स्पर्शेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय के सुख का वियोग और (३-४) दोनों इन्द्रिय स ब धी दुःख के स योग रूप से चार प्रकार का अस यम होता है और बेईन्द्रिय की हिंसा नहीं करने वाला चार प्रकार का स यम करता है- (१-२) दोनों इन्द्रिय स ब धी दुःख स योग नहीं करता । (३-४) और सुख का वियोग नहीं करता । इसी विधि से तेइन्द्रिय के प्रति ६-६ प्रकार का स यम-अस यम तथा चौरेन्द्रिय के लिये ८-८ प्रकार का स यम-असंयम तथा प चेन्द्रिय के लिये १०-१० प्रकार का स यम-अस यम समझ लेना चाहिये । प्रस्तुत में ४ स ख्या स ब धी बेइन्द्रिय का ही कथन है । ६, ८, १० स ख्या वाले तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय और प चेन्द्रिय का कथन आगे के स्थानों में हक्त । **(१०)** चार प्रकार की प्रकृति रखने से अनेक गुणों का विनाश हो जाता है- **१.** क्रोधी प्रकृति से, **२.** ईर्ष्या की-बदले की प्रकृति से, **३.** कृतध्नी प्रकृति से अर्थात् उपकार नहीं मानने से या उपकार का बदला अपकार से देने पर, **४.** खोटे दुराग्रह करने की प्रकृति से ।

अथवा इसी का दूसरा अर्थ इस प्रकार है– क्रोधी, ईर्ष्यालु, कृतघ्नी और दुराग्रही व्यक्ति दूसरों के गुणों को देख नहीं सकता, स्वीकार भी नहीं सकता कि तु उपेक्षा करता है। **(११)** चार प्रकार से अनेक गुणों की वृद्धि होती है– १. कार्य का बार बार अभ्यास होने से, २. गुढ-वडील की मनोभावनानुसार नम्रतापूर्वक प्रवृत्ति करने से, ३. निःस्वार्थ वृत्ति से परोपकार के कार्य करने से अर्थात् सहजता से अन्य का मददगार बनने की प्रवृति से, ४. उपकारी के उपकार को स्मृति में रखकर उससे उऋण होने का, उसके काम आने का सदा लक्ष्य रखने से। **(१२)** जिस प्रकार मनुष्य के उत्पत्ति से पूर्व गर्भ और गर्भकाल होता है, वैसे ही वर्षा के पूर्व बादल के रूप में पानी का गर्भ और गर्भकाल होता है– ओस, धूँअर, झाकल, गडा पडना, अतिठ ड, अतिगर्मी; ये पानी के गर्भ रूप है । **हेमक** नामक जलगर्भ माघ महीने में, **बादलसमूह** नामक जलगर्भ फाल्गुन मास में, **शीतोष्ण** नामक जलगर्भ चैत्र मास में और **प चरूपिक** नामक जलगर्भ वैशाख महीने में होते हक्त । गाज, बीज, जल, वायु और मेघ ये पाँचों से युक्त वृष्टि करने वाले जलगर्भ को प चरूपिक कहा है। **(१३)** मनुष्याणी ४ प्रकार के गर्भ धारण करती है– स्त्री, पुढष, नपु सक और मा सपिंड रूप। चौथा प्रकार वास्तव में कोई जीव युक्त गर्भ नहीं है। व्यवहार मात्र से या चार की स ख्या की अपेक्षा इसका गर्भ रूप में कथन हुआ है ऐसा व्याख्या में टीकाकारने दर्शाया है । **(१४)** बावीसवें तीर्थंकर के जिन नहीं पण जिन सरीखे सर्वाक्षर सन्निपाती चौदहपूर्वी ४०० श्रमण थे । भगवान महावीर स्वामी के ४०० अजेय वादी स पदा थी। **(१५)** लवण सरीखे, मदिरा सरीखे, दूध सरीखे और घृत सरीखे स्वाद वाले पानी का एक-एक समुद्र है । स्वाभाविक पानी जैसे पानी वाले तीन समुद्र हक्त– कालोदधि, पुष्कर और स्वय भूरमणसमुद्र । शेष सभी अस ख्य समुद्र इक्षुरस जैसे स्वाद समान पानी वाले हक्त । अन्य भी ऐसे छुटकर विषय हक्त जिनका वर्णन मुख्यतः अन्य आगमों में है, यथा– वादी समवसरण, स ज्ञा, जीवभेद, गतागत, क्रिया, देवविमान वर्ण, देव अवगाहना, समुद्घात, देवविमान आकार आदि । इस प्रकार अनेक आध्यात्मिक, तात्त्विक, सा स्कृतिक, भौगोलिक, खगोलिक विषयों से यह चौथा स्थान पूर्ण होता है ।

स्थान-५ : उद्देशक-१-३

प्रश्न-१ : इस स्थान का परिचय क्या है ?

उत्तर– इस पाँचवें स्थान में ५-५ की स ख्या वाले तत्त्वों का, विषयों का स कलन है । स ख्या के कारण अनेक विषय आचार शास्त्रोक्त का पुनर्कथन रूप है तथापि कुछ कुछ ऐसे महत्त्वशील आचार वर्णन भी हक्त जिनका अन्यत्र किसी भी आगम में कथन नहीं है । २०० करीब सूत्रों में और तीन उद्देशकों में इसका विषय विभाजन है । विभाजन में पूर्वानुसार कोई भी विषय क्रम नहीं है, अक्रमिक वर्णन पद्धति का ही अनुसरण है ।

प्रश्न-२ : पृथ्वीकाय वगैरह पाँच स्थावरों के भी कोई मालिक देव हक्त?

उत्तर– यहाँ उद्देशक-१, सूत्र-१४, १५ में पाँच स्थावरकाय के अप्रसिद्ध पाँच नाम कहे गये हक्त जो उनके अधिपति–मालिक देवों के नाम से स ब धित है। जिस प्रकार सात नरकों के अप्रसिद्ध नाम–घम्मा, व शा आदि है कि तु रत्नप्रभा आदि गोत्र प्रसिद्ध है। उसी तरह पाँच स्थावर के पृथ्वीकाय आदि गोत्र प्रसिद्ध है। अप्रसिद्धनाम– (१) इ दीथावरकाय (२) ब भीथावरकाय (३) सिप्पिस्थावरकाय (४) सन्मतिथावरकाय (५) प्रजापतिस्थावरकाय। पाँच अधिपति के नाम– इन्द्र, ब्रह्म, सिल्प, सन्मति और प्रजापति । ये नाम और अधिपति क्रमशः पृथ्वीकाय, अप्काय आदि के समझना ।

स पूर्ण तिर्छालोक के अधिपति शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र है। ज बूद्वीप के मेढपर्वत से दक्षिणार्ध तिर्छालोक शक्रेंद्र की तथा उत्तरार्ध तिर्छालोक ईशानेन्द्र की मालिकी में आता है। फिर इसमें भी चार-चार लोकपालों के आधिपत्य का विभाजन है । उसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में चक्रवर्ती, वासुदेव-बलदेव, महाराजा, सामान्य राजा आदि का अधिकार विभाजित होता है ।नदी, पर्वत, द्रह, तीर्थ, गुफा आदि अनेक स्थानों के स्वत त्र अधिपतिदेव अलग-अलग विभाजित है तथापि ज बूद्वीप आदि पूरे द्वीप समुद्रों के मालिक देव अलग होते ही हक्त। ठीक इसी प्रकार शक्रेन्द्र-ईशानेन्द्र और उनके लोकपालों की मालिकी सर्वत्र होते हुए भी पाँच स्थावरकाय की मालिकी के देवों के पाँच नाम यहाँ जो हक्त उनका विषय

पाँच स्थावर रूप में स्वत त्र है ऐसा समझ लेना चाहिये । इसमें भी पुन: मालिकी विभाजन शक्य है, यथा- अप्काय का अधिपति **ब्रह्म** है तो भी अनेक तीर्थों, जलाशयों, समुद्रों के मालिक देव अलग होते ही हक्त ।

प्रश्न-३ : अवधिज्ञान जब किसी को पुण्य स योग-शुभस योग से उत्पन्न होता है तो फिर किसी को तत्काल नष्ट क्यों हो जाता है?

उत्तर- छद्मस्थों का ज्ञान क्षायिक नहीं होता कि तु क्षायोपशमिक ज्ञान होता है तो अवधिज्ञान भी क्षायोपशमिक ज्ञान है । क्षयोपशम की विविध मर्यादाएँ होती है जैसे रटा हुआ श्रुतज्ञान सुबह याद किया शाम को विस्मृत हो जाता है। कोई ठीक याद किया है और पुनरावर्तन नहीं किया तो २, ४ या १० दिन में भी विस्मृत या विकृत हो जाता है । मिथ्यात्व आदि विशेष पाप प्रकृतियों के उदय से, परिणामों की कलुषता वगैरह से भी क्षायोपशमिक ज्ञान देश या सर्व से विनष्ट हो सकता है । ऐसे ही कुछ कारणों से यहाँ अवधिज्ञान के तत्काल विनष्ट होने का निरूपण किया गया है । जिसमें व्यक्ति की ग भीरता की कमी और कुतूहल मानसता के मुख्य कारण दर्शाये हक्त- (१) साधक अवधिज्ञान के माध्यम से विशाल पृथ्वी, द्वीप-समुद्र भी देख सकता है जिसमें चौतरफ अपनी कल्पना से अत्यधिक जल, जलाशय, नदियाँ, समुद्र देखकर आश्चर्यान्वित, अत्यधिक आश्चर्यान्वित या भयभीत हो जाता है तो उसका उत्पन्न हुआ वह अवधिज्ञान तत्काल नष्ट हो जाता है । उसी तरह (२) सूर्योदय-सूर्यास्त के समय या चातुर्मास काल में इस पृथ्वी को जिधर देखो उधर जिस र ग की पृथ्वी होती है उसी र ग के छोटे छोटे स ख्यात-अस ख्यात कु थुए, कु थुओं की राशि कल्पनातीत रूप से देखकर आश्चर्यान्वित आदि होने से । (३) बहुत बडे-बडे सर्प, अजगर १,२,५ या २५ कि.मी. जितने ल बे देखकर कुतूहल में आ जाने से या भयभीत हो जाने से । (४) महर्द्धिक, महासुखी, देवों की महान ऋद्धि को देखकर विस्मित आश्चर्यान्वित हो जाने से । (५) इस जमीन के अ दर अमाप कल्पनातीत धन, स पत्ति, निधान, रत्नजवाहरात, सोना चा दी, गडा-पडा देखकर विस्मित हो जाने से; इसप्रकार ग भीरता रहित विस्मित होने वाले व्यक्ति का अवधिज्ञान नष्ट हो जाता है ।

यहाँ आगे के सूत्र १७ में बताया है कि केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न होने पर उपरोक्त पाँचों दृश्य देखने पर भी नष्ट नहीं होता है

क्यों कि वह क्षायिकज्ञान उत्पन्न होने के बाद अविनाशी होता है तथा केवली के मोहनीय कर्म क्षय हो जाने से आश्चर्य-विस्मय-भय वगैरह उनके नहीं होते हक्त । वे 'सागरवरग भीरा' होते हक्त । तात्पर्य यह कि साधक को साधना की सफलता के साथ तथा तप-स यम में घोर पराक्रम के साथ ज्ञानमय ग भीरता भी हासिल करना चाहिये । यह ग भीरता गुण ज्ञान अध्ययन एव स स्कार वृद्धि से पुष्टतर बन सकता है, इस बात का साधक को ज्ञान एव लक्ष्य भी रखना चाहिये ।

प्रश्न-४ : आचार्य-उपाध्याय पद से युक्त गच्छ में स गठन या विघटन के कारण क्या-क्या हो सकते हक्त ?

उत्तर- प्रस्तुत प्रकरण में स गठन और विघटन के ५-५ कारण इस प्रकार बताये हक्त- (१) आचार्य-उपाध्याय अपने गच्छ में आज्ञा एव धारणाओं का सम्यग् स चालन नहीं करे, आलस, प्रमाद, उपेक्षा करे या डरपोक वृत्ति से चले । (२) गच्छ में छोटे बडे का आपस में विनय व दन व्यवहार का सम्यग् स चालन नहीं करे । (३) सूत्र-अर्थ परमार्थ की यथासमय यथायोग्य शिष्यों को वाचना देने की सम्यग् व्यवस्था न करे अन्य कार्यों में व्यस्त रहे, योग्य जिज्ञासु शिष्यों की जिज्ञासा, चाहना, अध्ययन लागणी की स तुष्टी नहीं करे । (४) गच्छ में बिमार, नवदीक्षित साधुओं की सेवा, सार-स भाल की सम्यग् व्यवस्था नहीं करे । (५) विचारणा करने योग्य ग भीर या विवादास्पद विषयों में गच्छ के अन्य गीतार्थ बहुश्रुत स्थविर आदि से सम्यग् सलाह-विचारणा किये बिना स्वेच्छा से ही निर्णय कर ले ।

इस प्रकार से आचार्य,उपाध्याय आदि पदवीधरों की कर्तव्यनिष्ठा की कमी के कारण एव विचक्षणता-विवेक के चूक जाने से गच्छ के स गठन में, शा ति-समाधि में ठेस पहुँचती है । परस्पर क्लेश विवाद पक्ष-विपक्ष की स्थितियों का निर्माण और क्रमश: वृद्धि होती है और एक दिन गच्छ छिन्न-भिन्न हो जाता है ।

इसके विपरीत यदि- (१) आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ में आज्ञा धारणाओं का सम्यग् स चालन करने का लक्ष्य रखे । (२) छोटे बडे में विनय व दन व्यवहार का सम्यग् पालन करावे । (३) सूत्र-अर्थ-परमार्थ की वाचना देने-लेने की यथासमय सम्यग् व्यवस्था रखे । (४) नवदीक्षित की यथार्थ सारस भाल लेवे तथा बिमार, वृद्ध श्रमणों की सम्यग् सेवा-

आराधना की व्यवस्था का ध्यान रखे । (५) कभी कोई ग भीर प्रस ग, उलझन उपस्थित हो तब गच्छ में जिम्मेदारी निभाने वाले जो भी श्रमण, स्थविर हो उन्हें पूछताछ करके, सलाह-विमर्श करके विवेक पूर्वक निर्णय करे । इस प्रकार गच्छ के पदवीधरों की बुद्धिमत्ता, विचक्षणता, सम्यग् स चालन व्यवस्था से गच्छ में सुस गठन, शा ति-समाधि एव परस्पर प्रेम-मैत्रीभाव, आत्मीयता सहानुभूति आदि की वृद्धि होती है और गच्छवासी साधकों की साधना का प्रसन्न भावों के साथ सम्यग् आराधन होता है । जिससे गच्छ का बहुमुखी विकास होता है एव जिनशासन की महती प्रभावना होती है ।

उपलक्षण से गच्छ में आचार्य-उपाध्याय के सिवाय भी अन्य पदवीधर या प्रभुत्व रखने वाले स त मनमानी करे, उपरोक्त व्यवस्था-अध्ययन, विनय व्यवहार, जिनाज्ञा का ध्यान न रखे तो भी स घ में विघटन की स्थिति पैदा होती है । अत: गच्छ में आचार्य उपाध्याय के सिवाय अन्य पदवीधर या जिम्मेदार श्रमणों को भी सूत्रोक्त व्यवस्था स चालन की सूचनाओं का सम्यग् पालन करके अपने गच्छ की, जिन-शासन की प्रतिष्ठा रखने का कर्तव्य पालन करना जरूरी बनता है ।

प्रश्न–५ : कष्ट-उपसर्ग आने पर किस प्रकार की मनोवृत्ति से सम्यग् सहन किया जा सकता है ?

उत्तर– छद्मस्थ साधकों को इस प्रकार मनोमानस बनाना चाहिये कि– (१) यह कष्ट देने वाला पुढष अपने उदय कर्म से प्रेरित होकर उन्मत्त–पागल जैसा है इसलिये आक्रुष्ट हो रहा है, हीलना-निंदा, तिरस्कार करता है, धमकी देता है, ब धन, ढ धन, छेदन, भेदन आदि करता है या उपकरण छीनता है, चुराकर ले जाता है । यह बिचारा स्वय अपने कर्मों से पराधीन है; ऐसा सोचकर उसके प्रति उपेक्षा भाव रखे, विषमभाव न होने दे । (२) यह पुढष यक्षाविष्ट है इसलिये ऐसा व्यवहार करता है यों सोचकर उपेक्षा भाव से सहन करना । (३) मेरे ही कोई पूर्व के अशुभ कर्म उदय में आ रहे हक्त तभी यह पुढष ऐसा व्यवहार कर रहा है, ऐसा सोचकर सम्यग् सहन करना । (४) यदि मैक्त इस स कट को सहन नहीं कढ गा और अशुभ स कल्प-विकल्प कढ गा तो मुझे क्या लाभ होगा ? उल्टा नये पापकर्मों का ब ध पडेगा, ऐसा सोचकर भी सम्यग् सहन करे । (५) इस उपस्थित कष्ट-प्रस ग को सम्यग् सहन कर लेने

से मुझे महान कर्मों की निर्जरा-क्षय का लाभ सहज प्राप्त होगा । यह आई हुई आपत्ति तो मुझे महान कर्मक्षय का लाभ प्राप्त कराने को ही उपस्थित हुई है इसका सम्यग् स्वीकार कर लेना ही हितावह है, ऐसा सोचकर कष्ट उपसर्ग को सम्यग् सहन करना चाहिये ।

इससे आगे के सूत्र में बताया गया है कि केवलज्ञानी भी निम्न लक्ष्यों से आये हुए कष्ट उपसर्ग को सम्यग् सहन करते हक्त, यथा– (१) यह पुढष खेदखिन्न चित्त वाला है । (२) उन्मत्त चित्त वाला है । (३) यह यक्षाविष्ट व्यक्ति है ऐसा जानकर सम्यग् सहन करते हक्त । (४) मेरे ही पूर्वकृत अशुभ कर्मों के उदय से यह पुढष ऐसा व्यवहार कर रहा है, इस प्रकार के भावों को सन्मुख रखते हुए केवली भी सहन करते हक्त । (५) मक्त आये हुए कष्टों को सम्यग् सहन कढँगा तो उससे प्रेरणा लेकर अन्य सामान्य छद्मस्थ साधक उत्साहपूर्वक आदर्श सामने रखते हुए उपसर्गों को सम्यग् सहन करेंगे, ऐसे भावों से भी केवलज्ञानी कष्टों को सहन करते हक्त । अशाता वेदनीय कर्म का उदय १४ वें गुणस्थान तक होता है, अत: केवली को भी कष्ट उपसर्ग आ सकते हक्त ।

प्रश्न–६ : हेतु–अहेतु के ८ सूत्रों द्वारा क्या समझाया गया है ?

उत्तर– हेतु = आश्रव । **हेउणा** = आश्रव से निष्पन्न स सार भ्रमण । **अहेउ** = स वर । **अहेउणा** = स वर से प्राप्त स सार से मुक्ति ।

सूत्र–१,२ : (१) कितनेक मिथ्यादृष्टि जीव आश्रव और आश्रव के परिणाम रूप स सार भ्रमण को जानते नहीं (२) समझते नहीं (३) श्रद्धा करते नहीं (४) त्याग करते नहीं; जिससे (५) **अज्ञान** मरण मरते हक्त ।

सूत्र–३–४ : कितनेक सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ जीव आश्रव और स सार भ्रमण को–१. जानते हक्त, २. समझते हक्त, ३. श्रद्धा करते हक्त, ४. त्याग रूप देश–आचरण करते हक्त, ५. जिससे वे **छद्मस्थ** मरण से मरते हक्त ।

सूत्र–५, ६ : कितनेक सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ स वर को और मोक्ष को पूर्णतया जानते नहीं, समझते नहीं, श्रद्धते नहीं, आचरण करते नहीं, जिससे वे **छद्मस्थ** मरण से मरते हक्त ।

सूत्र–७, ८ : कितनेक सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ जीवों को स वर और मोक्ष का परिपूर्ण ज्ञान, समझ, श्रद्धान एव आचरण होता है, जिससे वे केवल-ज्ञान प्राप्तकर **केवली** मरण से मरते हक्त । प्रथम दो सूत्र में मिथ्यादृष्टि का अज्ञान मरण कहा है । उसके बाद के चार सूत्रों में सम्यग्दृष्टि एव

देशत्यागी का छद्मस्थ मरण कहा है, अ तिम दो सूत्र में सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञाता, दृष्टा और त्यागी को केवलज्ञान प्राप्त होता है वे केवलीमरण से मरते हक्त और मोक्ष जाते हक्त ।॥ **इति प्रथम उद्देशक ॥**

प्रश्न–७ : क्या साधु-साध्वी चातुर्मास में विहार कर सकते हक्त और बडी नदियों को नावा आदि से पार कर सकते हक्त ?

उत्तर– सामान्य स यम विधि से साधु-साध्वी को चातुर्मास के चार महिने एक स्थान पर ही रहना होता है, विहार नहीं किया जाता है यह ध्रुव मार्ग है। विशेष परिस्थिति से अपवाद मार्ग रूप में विहार किया जा सकता है, ऐसा यहाँ दूसरे उद्देशक के सूत्र–२, ३ में बताया है । यहीं पर प्रथम सूत्र में विशेष परिस्थिति से बडी नदियों को नौका आदि से पार करने का भी अपवाद मार्ग से सूचन किया गया है । सामान्य ध्रुवमार्ग से तो साधु-साध्वी सचित्त पानी का अन तर-पर पर स्पर्श भी नहीं कर सकते हक्त । जीवन व्यवहार की उपस्थित होने वाली अनेक परिस्थितियों के अनुभव ज्ञान युक्त यहाँ ५-५ की स ख्या के माध्यम से नौकाविहार और चातुर्मास में विहार के कारण दर्शाये गये हक्त ।

नौकाविहार के ५ कारण– (१) कोई भी प्रकार का पशु या राज्य आदि का भय उपस्थित होने पर अन्य मार्ग या उपाय न होने पर । (२) विचरण क्षेत्र में दुर्भिक्ष हो गया हो अर्थात् भिक्षा मिलना दुर्लभ हो गया हो और अन्य कोई मार्ग या उपाय शक्य न होने पर । (३) कोई के द्वारा नदी में फेंक देने पर उसी अथाग जल को पार करने के लिये नावा का स योग होने पर । (४) आगे से पानी की बाढ आने वाली हो और अन्य कोई उपाय सुरक्षा का न हो तो । (५) अनार्य लोगों के उपद्रव की परिस्थिति उत्पन्न होने पर ।

इन पाँच कारणों से ग गा, यमुना सरीखी बडी नदियाँ नौका से पार की जा सकती है । सामान्यतया विहार में जरूरी होने पर महीने में मात्र एकाध वार इन नदियों को जहाँ पानी की गहराई कम हो तो पाँवो से चलकर तथा पानी की ऊँडाई ज्यादा हो तो नौका से चलकर पार किया जा सकता है । पर तु उपरोक्त पाँच कारणों से दूसरी तीसरी बार भी नौका से पार किया जा सकता है । सकारण नौका वाहन प्रयोग का कोई प्रायश्चित्त नहीं आता है । जल के जीव विराधना आदि का प्रायश्चित्त आता है ।

चातुर्मास में विहार करने के कारण– (१-५) नौका विहार के लिये कहे गये पाँचों कारण–भय से यावत् अनार्यों के उपद्रव से । (६-८) ज्ञान, दर्शन, चारित्र स ब धी अत्यावश्यक हेतु से गुढ आज्ञा होने पर । (९) आचार्य उपाध्याय के काल कर जाने पर यदि अत्यावश्यक हो तो गुढ-वडील की आज्ञा होने पर । अथवा खुद की योग्यता प्रमुख बन कर रहने की न हो तब अन्य आचार्य-उपाध्याय वडील की निश्रा लेने के लिये ।(१०)आचार्य-उपाध्याय की विशिष्ट सेवा सुश्रूषा के लिये अथवा उनकी आज्ञा से स घ में कहीं भी सेवा के लिये जाना होवे तो ।

इन कारणों से गुढ आज्ञा, वडिलों की सलाह-निर्णय पूर्वक चातुर्मास में विहार करना पडे तो उसका प्रायश्चित्त नहीं है । जो कोई जीव विराधना आदि होवे तो उसका प्रायश्चित्त लिया जाता है ।

प्रश्न–८ : राजमहलों में साधु-साध्वी जा सकते हक्त ?

उत्तर– मूर्धाभिषिक्त अर्थात् अनेक राजाओं के द्वारा स्वीकार्य ऐसे बडे राजा चक्रवर्ती, मा डलिक राजा वगैरह के यहाँ गोचरी आदि जाना या उनके निवास के, भोजनस्थल के नजीक रहना आदि प्रवृत्ति साधुओं के लिये छेद सूत्रों में निषिद्ध एव प्रायश्चित्त योग्य कही गई है कि तु सामान्य छोटे-छोटे राजाओं के विषय में ऐसा नियम नहीं है । इसलिये यहाँ सूत्र-५ में राज अ त:पुर अर्थात् राजभवन में जाने के कुछ निमित्त कारण दर्शाये हक्त, यथा– (१) नगर के प्रवेश रास्ते सभी ब ध हो–भिक्षा के लिये जाने आने की दुविधा हो तो राजा को अल्पकालीन मार्ग खोलने का निवेदन करने के लिये साधु को राजभवन राजा के पास पहुँचना पडता है । (२) राजा का ही मकान, शय्या, स थारा लिया हो उसे लौटाने या आज्ञा सोंपने के लिये जाना जरूरी होने पर । (३) राजभवन के पास मार्ग में चलते दुष्ट जानवर– हाथी-घोडा आदि उन्मत्त होकर आ रहा हो या कोई स कटमय क्षण उपस्थित होने पर तत्काल सुरक्षा के लिये राजभवन में आश्रय लेने पर । (४) किसी के द्वारा जबरन पकडकर या धकेल कर राजभवन में ले जाने पर (५) राजा स्वय जहाँ साधु बैठे हो वहाँ अपने अ त:पुर परिवार सहित आकर घेर कर बैठ जाय तो । यहाँ ४ कारण सपरिस्थितिक राजमहल में प्रवेश के दर्शाये हक्त और पाँच की स ख्या के प्रकरण स गत हेतु से पाँचवा बोल राजा-राणियों एव पर्षदासे घिरा होने से राजसभा में राजा के बीच होना गिना

गया है। यह सापेक्ष स योजित बोल है ।यहाँ राज अ त:पुर से राणियों के स्वत त्र महल का अर्थ नहीं करके राजमहल-राजभवन अर्थ करना सुस गत है । राजमहल की सीमा का कोई भी विभाग हो, उस सीमा में प्रवेश से ही राजमहल प्रवेश गिना जाता है । राणियों का रणवास तो राजमार्ग से अ दर राजमहल की सीमा के अ दर योग्य सुरक्षित स्थान में होता है उसके लिये यहाँ के सभी बोल-शय्या स स्तारक लौटाना, उन्मत्त पशु का मार्ग में आना वगैरह घटित होना दु:शक्य होता है ।

प्रश्न-९ : स्त्री,पुढष के साथ स वास न करने पर भी गर्भ धारण कर सकती है और पुढष के साथ स वास करने पर भी गर्भ धारण नहीं करती है, उसमें क्या कारण है ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक के सूत्र-६ से ९ तक इस विषय में कथन किया गया है, तदनुसार दोनों प्रकार के कारण इस प्रकार हक्त-

(१) पुढष स वास बिना गर्भ रहने के कारण- (१) स्त्री अयोग्य रीति से अयोग्य स्थान पर बैठ जाय और वहाँ पूर्वस्थित पुढष वीर्य पुद्गल स्त्री की योनि में आकृ ष्ट हो जाय ।(२) शुक्र स सक्त वस्त्र स्त्री-योनि में प्रविष्ट हो जाय ।(३) स्त्री स्वय वीर्य पुद्गलों को योनि में प्रविष्ट करे।(४) अन्य कोई व्यक्ति स्त्री की योनि में वीर्य पुद्गल किसी भी तरह प्रविष्ट कर दे । (५) नदी जलाशय आदि में स्नान करते या तैरते समय जल में रहे वीर्य पुद्गल स्त्री योनि में प्रविष्ट हो जाय । इन पाँच कारणों से अर्थात् ऐसे स योगों से कदाचित् स्त्री गर्भधारण कर सकती है ।

(२) पुढष स वास होने पर भी गर्भ नहीं रहने के कारण- (१) अप्राप्त यौवना स्त्री हो अर्थात् बालिका हो । (२) अतिक्रा त यौवना अर्थात् यौवनकाल समाप्त हो गया हो । (३) जन्म से व ध्या(बा झ) स्त्री हो । (४) स्त्री-रोग से पीडित हो । (५) स वास समय स्त्री व्यग्रचित्त, शोक से व्याप्त चित्त हो । (६) नित्य रजस्वला रहती हो। (७) ऋतुमति होती ही न हो । (८) गर्भाशय ही नष्ट हो गया हो । (९) गर्भाशय की क्षमता क्षीण हो गई हो । (१०) जो स्त्री अन ग कामक्रीडा भी करती हो । (११) योग्य समय योग्य स वास पूर्ति न होती हो । (१२) योनि में प्रविष्ट वीर्य पुद्गल किसी रोगादि के कारण से तत्काल विनष्ट हो जाते हो । (१३) स्त्री के रजकण पित्त कोपित हो गये हो । (१४) दैविक प्रयोग से या

कोई श्राप से स्त्री गर्भधारण के योग्य न रही हो । (१५) स तान प्राप्ति के अयोग्य तीव्र अ तराय कर्म बा ध रखे हों । इन कारणों से पुढष स वास होने पर भी स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती है ।

प्रश्न-१० : क्या साधु-साध्वी एक मकान में एक ही स्थान में साथ में रह सकते हैं ?

उत्तर- ब्रह्मचर्य की बाढ(सुरक्षा-नियम) अनुसार साधु-साध्वी सदा अलग-अलग ही विचरण करते हक्त और अलग-अलग मकानों में अमुक सीमा मर्यादा से दूरी पर ही ठहरते हक्त, यही ध्रुव मार्ग हक्त तथापि विशेष परिस्थिति वश स यम, शील एव अन्य सुरक्षा के निमित्त से एक रात्रि या अमुक समय तक योग्य विवेक के साथ अर्थात् योग्य साक्षी या सूचन पूर्वक एक स्थान में या एक मकान में रह सकते हक्त । प्रस्तुत प्रकरण में सूत्र-१० में उन परिस्थितियों का विवरण दिया है, यथा- (१) यदि कभी कोई अनिवार्य प्रस गवश साधु-साध्वी का निर्जन, ल बे मार्गवाली अटवी में विहार का स योग बन गया हो तो वहाँ एक ही स्थान-मकान में विवेक पूर्वक रहा जा सकता है । (२) कोई भी ग्राम-नगर या कोई भी छोटी बडी बस्ती में दोनों पहुँच गये हो तब वहाँ एक को रहने को मकान मिला हो और एक को प्रयत्न करने पर भी मकान नहीं मिला हो तो ऐसे समय में एक ही स्थान में दोनों साथ में रह सकते हक्त । (३) विहार में कभी सूर्यास्त के समय ग्रामादि निकट में नहीं हो कि तु ज गल में ही कोई भी म दिर, प्याऊ, धर्मशाला, स्कूल आदि एक ही स्थान हो और वहाँ पर एक के बाद दूसरे भी स ध्या समय पहुँच गये हों तो उस एक स्थान में दोनों साथ में रह सकते हक्त । (४) चोर लुटेरों के उपद्रव की पूर्ण शक्यता दिख रही हो तो साध्वियों के स रक्षणार्थ दोनों एक साथ ठहर सकते हक्त । (५) गु डे, बदमाशों की साध्वियों को हैरान करने की या शीलभ्रष्ट करने की शक्यता दिखती हो तो ऐसे समय साध्वियों के स रक्षणार्थ दोनों एक साथ ठहर सकते हक्त ।

ये उपरोक्त परिस्थितियाँ अनायास उपस्थित हो जाय, अशक्य अपरिहार्य स्थिति खडी हो जाय तभी की अपेक्षा समझनी चाहिये । ऐसी घटना का फिर कभी भी अनावश्यक अनुकरण या ढर्रा-पर परा नहीं चलाना चाहिये । जहाँ तक शक्य हो ध्रुवमार्ग अनुसार साधु-साध्वी को अलग-अलग ही विहार और निवास करना चाहिये ।

सूत्र-११ में कहा है कि- खेदखिन्नता युक्त चित्त से, उन्मत्तचित्त से; यक्षाविष्ट पागलपन इत्यादि से युक्त श्रमण वस्त्ररहित बनकर परेशान हो रहा हो तो ऐसे समय में निर्ग्रंथी उस निर्ग्रंथ को अ कुश में रखे, स रक्षण करे और ऐसा करते हुए उस साधु को अपने पास-साथ रखना भी पडे तो जिनाज्ञा का उल्ल घन करने वाली नहीं कहलाती । छोटी वय के बालक को साध्वी ने दीक्षा दी हो तो उसे भी साध्वी अपने साथ रख सकती है ।

यदि चित्तविभ्रम आदि से साध्वी हैरान परेशान हो तो श्रमण भी उसका स रक्षण आदि करके उस साध्वी को अपने पास रखकर सार-स भाल कर सकते हक्त । इस प्रकार साधु-साध्वी दोनों ही प्रस ग आने पर पूर्ण हिम्मत के साथ एक दूसरे के पूरक-सहयोगी बन सकते हक्त ।

आगे सूत्र-६१ में कहा गया है कि- (१) कोई पशु-पक्षी साध्वी पर आक्रमण कर रहा हो तो साधु उस साध्वी को पकडकर या सहारा देकर बचा सकता है । (२) ऊँचे-नीचे विषम स्थान से साध्वी फिसल जाय या गिर पडे वैसे समय में साधु उसे सहारा देकर या पकडकर स भाल सकता है । (३) कीचड में या पानी में गिरती-पडती साध्वी को (४) नावा में चढती-उतरती साध्वी को साधु सहारा दे सकता है, पकडकर स भाल सकता है ।

इन आपवादिक विधानों से स्पष्ट है कि जैन स यम साधना के नियम-उपनियम दृढता वाले एव अनुशासनबद्ध होते हुए भी परिस्थिति आने पर विवेक से परिपूर्ण भी है । अव्यवहारिक से लगने वाले नियमों से भी समय पर परिपूर्ण व्यवहारिकता जुडी हुई है । साधु-साध्वी का जीवन परस्पर निकटता की अत्यधिक परहेजी वाला है , वह भी ब्रह्मचर्य की वाड रूप हितावह है । फिर भी समय प्रस ग आने पर एक दूसरे के प्रति पूर्ण आत्मीयता से भरा हुआ है। यथा- नदी में, जल प्रवाह में उतर कर बहती साध्वी को पकडकर नीकालना, का टे की तीव्र वेदना के समय परस्पर एक दूसरे के पाँव में से कुशलता पूर्वक का टा निकाल देना । पागलता से या प्रेतात्मा से पराभूत साध्वी को अग्लानभावसे पूर्ण स रक्षण देना, निय त्रण में रखना आदि व्यवहार परम पवित्रता युक्त विवेक के द्योतक हक्त ।

प्रश्न-११ : जीव को धर्म प्राप्त होना सुलभ और दुर्लभ कैसे बनता है ?

उत्तर- पाँच की स ख्या का प्रकरण होने से दुर्लभ बोधि, सुलभ बोधि होने के ५-५ कारण कहे हक्त-(१) तीर्थंकर भगवान का (२) तीर्थंकर प्ररूपित धर्म का (३) आचार्य-उपाध्याय का (४) चतुर्विध स घ का (५) तप स यम के आचरण से बने देवों का; इन सभी का अवर्णवाद बोले, निंदा-तिरस्कार, अवहेलना, आशातना करे तो उसके फलस्वरूप जीव परभव में या भव-भवमें दुर्लभ बोधि बनता है । इसके विपरीत जो इन्हीं पाँचों का गुणग्राम करता है, सन्मान, यश-कीर्ति एव सम्यग् आराधन करता है वह आगे के भव में सुलभ बोधि बनता है ।

प्रश्न-१२ : आचार्य स्वय गच्छ को छोडकर जा सकते हक्त ?

उत्तर- आचार्य तो स घ के श्रेष्ठ साधुओं में चुने हुए प्रथम दर्जे के श्रमण होते हक्त । आगम ज्ञान, बुद्धि, तेजस्विता एव अनेक पुण्य प्रागभार से स पन्न होते हक्त । इतना होते हुए भी कर्म सिद्धा त की अजब-गजब की लीला है जिससे विचित्र कर्मोदय एव स योग बन जाते हक्त, पुण्याँश कम हो जाते हक्त, अनादेयनाम कर्म आगे आ जाते हक्त, वेदमोह कर्म का तीव्रोदय हो सकता है, कभी किसी के उपकार का आवश्यक निमित्त खडा हो जाता है, कभी प्राय: सभी शिष्यों का अविनयभरा व्यवहार हो जाता है; ऐसी अनेक परिस्थितियों के कारण आचार्य को भी पद त्याग करना, अन्य गण में या स सार में जाना पड सकता है, सूत्र-६३ में पाँच कारण शास्त्रकार ने दर्शाये हक्त-

(१) आचार्य गण में आज्ञाधारणा का सम्यग् स चालन नहीं कर पाता हो । (२) विनय व्यवस्था अनुशासन भी सम्यग् नहीं चला सकता हो । (३) आचार्य अपने पास के श्रुतज्ञान का दान-प्रदान यथासमय शिष्यों को नहीं दे पा रहा हो अर्थात् कोई लेने की उत्क ठा नहीं रखते हों तो आचार्य का स्वगण का त्याग कर अन्य गण में जाने का स कल्प-मानस बनता है ।(४) आचार्य स्वय किसी साध्वी या स्त्री में मोहासक्त बन गये हों, निकाचित या तीव्र मोहोदय का निवारण शक्य न हो तो वे पद का, गणका त्याग कर देते हक्त अर्थात् स सार में चले जाते हक्त । (५) कोई मित्र या पारिवारिक साधु गण छोडकर चला गया हो उसके उपकार के लिये, साथ-सहकार के लिये आचार्य गच्छ, पद का त्याग करके उनके पास चले जाते हक्त ।

इन कारणों के उत्पन्न होने पर आचार्य पद का मोह नहीं छोडे

और गच्छ की अव्यवस्था की उपेक्षा जि दगीभर करता रहे वह योग्य नहीं होता है अथवा पद को पकडे रखकर मनमाने किसी गच्छ में फिरे या कुशील आचरण करे तो वह जिनशासन की और गच्छ की अत्य त अवहेलना वाला बनता है ।ऐसे में आचार्य का गणापक्रमण–गणत्यागना ही आवश्यक बन जाता है । इन पाँच कारणों में शुभाशुभ एव तटस्त सभी दर्जे के कारणों का समावेश किया गया है अर्थात् आचार्य के गण त्यागने में उपस्थित होने की शक्यता वाले प्रस ग़ों का यहाँ सही स कलन किया गया है ॥ **इति द्वितीय उद्देशक ॥**

प्रश्न–१३ : साधु-साध्वी शिरमु डन-लोच तो करते ही हक्त कि तु १० मु डन क्या है ?

उत्तर– मु डन दो प्रकार के होते हक्त– द्रव्यमु डन और भावमु डन। द्रव्यमु डन एक ही शिरमु डन है। भावमु डन ९ कहे गये हक्त– (१-५) पाँच इन्द्रियों की आसक्ति घटाना और उनकी च चलता को सीमित करना, ज्ञाना कुश में रखना, जिनाज्ञा के अनुसार ही इन्द्रियों का उपयोग करना, स यम नियमों के विपरीत या बाह्य विषयों में इन्द्रियों को नहीं लगाना, नहीं जाने देना, पाँच इन्द्रियों का निग्रह करना, उन्हें स्ववश में, क ट्रोल में रखना, यह पाँच प्रकार का भाव मु डन हक्त । (६-९) क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हक्त, स सार की कर्मों की वृद्धि कराने वाले अवगुण हक्त, अनादि अभ्यस्त है, इनसे आत्मा को सुरक्षित रखना अर्थात् इन कषायों को आत्मा में आने नहीं देना और आत्मा के अ दर जमे हो तो ज्ञान वैराग्य, चि तन अभ्यास से उन्हें पूर्णतया निकाल देना । उनकी जगह क्रमशः क्षमा, नम्रता, सरलता और स तोष गुणों की वृद्धि करना, जिससे कषायों को रहने का स्थान ही नहीं मिले । क्रोध आदि कषायों का निष्काशन ही ४ प्रकार का भावमु डन है । साधु-साध्वी को आत्म कल्याण में शिर मु डन जितना जरूरी है उससे भी ये इन ९ प्रकार के भावमु डन की आवश्यकता कई गुणी बढ जाती है । सत्य तो यह है कि इन नव प्रकार के मु डन में सफलता प्राप्त करने वालों का ही शिरमु डन कामयाब होता है और यह नव मु डन जो नहीं कर पाता है अर्थात् इन्द्रियों के वश मनमाने चले और कषायों से भारी बनता रहे तो उसका शिरमु डन उद्देश्य पूर्ति करने वाला नहीं बनता है, साधक का वह मु डन निष्फल हो जाता है ।अतः दस मु डन की सुमेल युक्त

साधना साधु-साध्वियों को करनी आवश्यक होती है । इन दस प्रकार के मु डनों को एक साथ यहाँ सूत्र–८ और ९ में कहा गया है ।

प्रश्न–१४ : स यम धर्मपालन में गुढ-शिष्यादि के अतिरिक्त उपकारी किनको गिना जाता है ?

उत्तर– यहाँ सूत्र–२४ में पाँच की स ख्या में विस्तार की अपेक्षा स यम में १० का उपकार, निश्रा, सहायकता स्वीकार की गई है– **(१) पृथ्वी–** खडे रहे बैठने-चलने(गौचरी–विहार आदि) में उपयोगी होती है । **(२) पानी–** वस्त्र धोना, तृषा शा त करना, शरीर की शुद्धि वगैरह, इनमें जल की उपयोगिता है । **(३) अग्नि–** खाद्यपदार्थ अग्नि पक्व ही अधिकतम उपयोगी होते हक्त । **(४) वायु–** श्वास रूप में और गर्मी की शा ति में वायु की अत्य त आवश्यकता होती है । **(५) वनस्पति–** घास, पाट, वस्त्र, औषध आदि अनेक आवश्यक पदार्थों को देनेवाली वनस्पति भी अत्य त उपयोगी है । **(६) त्रसकाय–** पशुओं से प्राप्त दूध दही आदि, ऊन के वस्त्र, रजोहरण आदि में प चेन्द्रिय त्रसकाय उपयोगी है तथा देव मनुष्य भी स यम साधना में प्रवचन प्रभावना में उपयोगी बनतेहक्त। **(७) गण–** गच्छ के साधु-साध्वी, शिष्य-शिष्याएँ तथा पदवी-धर श्रमण, ये सभी स यम में सहयोगी एव उपकारी बनते हक्त । **(८) राजा–** जिस राज्य में राजा स यम पालन करते हुए विचरण करने देते हक्तो वह राजा का उपकार गिना गया है । **(९) गृहस्थ–** श्रावक-श्राविका एव अन्य गृहस्थ भी आहार, मकान, वस्त्र आदि के प्रदाता होने से स यम में उपकारी स्वीकारे गये हक्त । **(१०) शरीर–** अपना यह मनुष्य शरीर भी स यम साधना का प्रमुख उपकारी गिना गया है, अन्य गतियों में स यम साधना का अभाव है । इस प्रकार १० की निश्रा से, आल बन से, सहकार से स यम की सफलता सुलभ बनती है ।

प्रश्न–१५ : अचेल का क्या मतलब है ? उसे प्रश सनीय कैसे कहा है ?

उत्तर– कोई भी शब्द के अनेक अर्थ होते हक्त, उनमें से प्रस गानुकूल अर्थ ग्रहण किया जाता है । अचेल शब्द के शास्त्र में दो प्रकार के अर्थ आते हक्त– (१) वस्त्रों का त्याग करके निर्वस्त्र रहने वाले श्रमण भी अचेल होते हक्त और (२) प्रथम अ तिम तीर्थंकरों के श्रमण मर्यादित, आगम निर्दिष्ट, अत्य त अल्प उपधि रखने के कारण उन्हें भी अचेल धर्म के पालक शास्त्र में कहा गया है । इस विषय में महा श्रमण केशी-गौतम

का स वाद भी उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन-२३ का प्रसिद्ध है ।प्रस्तुत सूत्र-३३ में मर्यादित उपधि रखने वाले श्रमण की प्रधानता से अचेलधर्म को प्रशस्त कहा गया है । तथापि निर्वस्त्रता का भी उसमें समावेश हो जाता है । प्रशस्तता के पाँच कारण इस प्रकार बताये गये हक्त-

(१) अचेलधर्मी श्रमणों के उपधि उपकरण कम होने से प्रतिलेखन का कार्य अल्प होता है । (२) वे स त हमेशा हलके-फूल रहते हक्त, कुछ भी ज्यादा रखना, लेना, उठाना कुछ होता नहीं हक्त । (३) ज्यादा सामान नहीं होने से लोगों को कोई प्रकार का स देह नहीं होता है, अत: अल्प उपधि रूप अचेल धर्म पालक श्रमणों का वेश ही विश्वस्त होता है । (४) अल्प उपकरण-वस्त्र-पात्र अल्प होने से सहज में कितनी ही तप निर्जरा होती रहती है । सर्दी गर्मी आदि अनेक प्रतिकूलता को सहने का सहज मौका मिलता है, जिससे द्रव्य-भाव दोनों प्रकार के तप की वृद्धि होती है । (५) विपुल इन्द्रिय निग्रह होता है, उपकरण-साधन के अभाव में या अल्पता में पग-पग पर मन तथा इन्द्रियों को वश में रखने का स योग मिलता है । इसप्रकार भगवान महावीर स्वामी के शासन में अचेलधर्म अल्प उपकरण रूप भी प्रशस्त है और स पूर्ण वस्त्र आदि का त्याग करके अचेल जिनकल्प आदि साधना भी प्रशस्त कही गई है । यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि एका त रूप से निर्वस्त्र को ही अचेल मानना और उसके बिना मुक्ति साधना नहीं है ऐसा मानना अयथार्थ है ।

प्रश्न-१६ : प्रत्याख्यानकरने के साथ क्या-क्या विवेक आवश्यक है ?

उत्तर- प्रत्येक आचरण का महत्व उसके साथ के विवेक से अत्यधिक बढ जाता है । प्रत्याख्यान-त्याग स्वय श्रेष्ठ है फिर भी उसकी श्रेष्ठता सहवर्ती गुणों से और भी बढ जाती है । प्रस्तुत में उन सहयोगी गुणों को पाँच की स ख्या में कहा है- (१) प्रत्याख्यान के प्रति श्रद्धा, ज्ञान, ढचि, समझ बराबर होना चाहिये ।(२) व्रत-प्रत्याख्यान ग्रहण करने के समय में खडे होना, हाथ जोडकर मस्तक नमाकर विनयावनत बन जाना चाहिये ।(३) प्रत्याख्यान के लिये सम्यक् वचनों से निवेदन तथा प्रत्याख्यान पाठ का सम्यक् श्रवण या उच्चारण होना चाहिये और अत में 'वोसिरामि' पद का जरूर उच्चारण करना चाहिये । (४) प्रतिज्ञा अनुसार यथार्थ पालन अ त तक होना चाहिये । (५) प्रत्याख्यान पालन

करते समय भावों में दीनता, खेद, लाचारी न होकर अहोभाव, प्रसन्नता, आन दानुभूति के पवित्र परिणाम होने चाहिये । इस प्रकार इन पाँचों बातों का विवेक रखा जाय तो किये जाने वाले प्रत्याख्यानों की सही आराधना होती है ।

प्रश्न-१७ : पाँच प्रतिक्रमण कौन से होते हक्त ?

उत्तर- प्रस्तुत में सूत्र-५२ में पाँच प्रतिक्रमण इस प्रकार कहे हक्त- **(१) आश्रवद्वार प्रतिक्रमण-** हिंसादि पापों का प्रतिक्रमण । इसे ही अव्रत का प्रतिक्रमण कहा जाता है । (२) मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण अन्यत्र पर परा में इसका क्रम प्रथम है और अव्रत का क्रम दूसरा है, ऐसा क्रम भेद समझभ्रम से या किसी भी कारण से हो जाता है । (३) कषाय का प्रतिक्रमण (४) योग का प्रतिक्रमण (५) अशुभ भावों का प्रतिक्रमण; इसके स्थान पर पर परा में प्रमाद भावों का प्रतिक्रमण गिना जाता है । पर परा में गिने जाने वाले पाँच प्रतिक्रमण- मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग का प्रतिक्रमण । दोनों में उच्चारण मात्र का भेद है, तात्पर्यार्थ दोनों में लगभग एक सा हो जाता है ।

प्रश्न-१८ : सूत्रों की वाचना लेने देने के लाभ क्या-क्या बताये गये हक्त?

उत्तर- सूत्र-५३,५४ में क्रमश: सूत्रार्थ वाचना देने के और सूत्रार्थ ग्रहण करने के ५-५ लाभ-उद्देश्य दर्शाये गये हक्त- (१) जिनशासन में श्रुतज्ञान और श्रुतज्ञानियों की पर परा अविच्छिन्न चालु रहे । (२) ज्ञान और ज्ञानी की अपनी स पदा वृद्धि के लिये अर्थात् अधिकतम शिष्य ज्ञान स पन्न बने, बहुश्रुत बने एव जिससे स्व-पर तथा स घ के उपकारक बने ।(३) शिष्यों के प्रति कर्तव्यपालन के साथ सहज उपकार की भावना से । (४) स्वाध्याय आदान-प्रदान में आभ्य तर तप द्वारा कर्मों की निर्जरा के हेतु से । (५) वाचना देने से अपने ज्ञान की स्मृति ताजा रहेगी एव परस्पर चर्चा विचारणा से अपना श्रुतज्ञान पुष्ट पुष्टतर बनेगा । ये वाचना देने के शुभ हेतु कहे गये हक्त । साधकों को वाचना देने में ऐसे आगमिक पवित्र हेतु अ तरमानस में रखने का लक्ष्य रखना चाहिये ।

वाचना लेने के अर्थात् श्रुत अध्ययन करने के मुख्य हेतु- (१) अपने आगमज्ञान की वृद्धि एव पुष्टि के लिये । (२) ज्ञान की वृद्धि से सम्यग् श्रद्धा की परिपक्वता पुष्टि होगी इसलिये । (३) ज्ञानमय आचार शुद्धि हेतु अर्थात् चारित्र की सम्यग् आराधना में आगमज्ञान

अत्य त उपकारक होता है । अतः चारित्राराधनार्थ भी सदा अध्ययनशील रहे । (४) शास्त्रों का विशाल ज्ञान करके उसे सम्यग् परिणमन करने वाला स्व-पर को कदाग्रह, व्युद्ग्रह से सुरक्षित करने में समर्थ बनता है और सही मार्ग का, सही तत्त्व का, आगमाधार से युक्तिपूर्वक निर्णय करने वाला बनता है ।अतः व्युदग्रह-कदाग्रह से सुरक्षित रहने के लिये एव अन्य को रख सकने की योग्यता हाँसिल करने के लिये । क्यों कि आगमज्ञान वृद्धि, अनुभव वृद्धि से व्यक्ति अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ बनता है । (५) आगमों का बार बार स्वाध्याय, वाचना, विचारणा से वास्तविक गूढार्थ रहस्यों की उपलब्धि होती है । इसलिये साधक को निर तर श्रुत अध्ययन में लगे रहना चाहिये । इस प्रकार इन दो सूत्रों से १० बोलों में श्रुत अध्ययन के उद्देश्य एव अनुपम लाभ के अनेक मुद्दे स ग्रहित किये गये हक्त।

प्रश्न-१९ : अन्य भी किन-किन तत्त्वों का इस स्थान में निरूपण है ?

उत्तर– इस स्थान के तीनों उद्देशकों में इन मुख्य विश्लेश्य विषयों के अतिरिक्त भी अनेक विषय स कलित है, यथा– **(१)** मध्यम के २२ तीर्थंकरों के शासन में ५ सुगम– १. धर्म तत्त्वों का निरूपण करना, २. भेदानुभेद द्वारा समझाना, ३. सरलता से समझ में आना, ४. परीषह-उपसर्गों को सहन करना, ५. स यम का यथार्थ पालन करना । प्रथम और अ तिम तीर्थंकर के शासन में यही पाँच दुर्गम–मुश्किल होते हक्त । **(२)** पाँच प्रकार की सरलता अर्थात् स यम स्थान– १. श्रेष्ठ सरलता, २. नम्रता, ३. लघुता, ४. क्षमा, ५. निष्परिग्रहिता निर्लोभता । **(३)** शक्रेन्द्र की आभ्य तर पर्षदा के देवों की तथा ईशानेंद्र की आभ्य तर पर्षदा की देवियों की स्थिति ५-५ पल्योपम की होती है।

(४) प्रतिघात–अवरोध पाँच है– १. अशुभ परिणामों से **शुभ गति का** प्रतिघात, २. तप आदि द्वारा उदीरणा करण से कर्मस्थिति का प्रतिघात, ३. आलोचना–प्रतिक्रमण, आत्मनिंदा–गर्हा से कर्मब ध का प्रतिघात, ४. अशाता वेदनीय के उदय से प्राप्त सुखभोगों में प्रतिघात, ५. अ तराय कर्म के उदय से शुभनामकर्म वाले सु दर सुडोल शरीर द्वारा भी पराक्रम करने का अभाव रूप उपघात । इस तरह पाँच की स ख्या में प्रतिघात कहे गये हक्त । **(५)** आजीविका के ५ प्रकार– १. ब्राह्मण आदि जाति निमित्तक आजीविका, २. क्षत्रिय आदि कुल निमित्तक राज्य

सत्ता युक्त आजीविका, ३. कृषि कर्म आदि से आजीविका, ४. दर्जी, सुतार, कु भकार आदि शिल्पकला से आजीविका, ५. साधु-सन्यासी आदि लि ग-वेशभूषा के माध्यम से आजीविका । इस तरह स सार में प्रत्येक प्राणियों को उदरपूर्ति रूप आजीविका किसी भी तरह करनी आवश्यक हो जाती है । **(६)** राजचिन्ह ५ कहे हक्त– तलवार, छत्र, मुकुट, विशिष्ट पादरक्षक और चामर । **(७)** केवली के पाँच अणुत्तर गुण होते हक्त– अणुत्तर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और पराक्रम । **(८)** २४ में से १४ तीर्थंकरों के गर्भ में आना आदि पाँचों प्रस ग एक-एक ही नक्षत्र में हुए थे, यथा–गर्भ में आना, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण । पाँच की स ख्या के कारण १४ तीर्थंकर का ही वर्णन है । शेष १० तीर्थंकरों के जन्मादि पाँचों प्रस ग अनेक नक्षत्रों में हुए थे । अतः उनका कथन यहाँ पाँच की स ख्या में अप्रास गिक होने से छोड दिया है । ये नक्षत्र उन जन्म आदि के समय आकाश म डल में च द्र के साथ(सीध में) अपनी सीमाक्षेत्र की अपेक्षा रहते हक्तब उस नक्षत्र का योग कहा जाता है । **(९)**चमरेन्द्र की ५ अग्रमहिषियाँ– काली, राजी, रजनी, विद्युत, मेघा । बलीन्द्र की ५ अग्रमहिषियाँ– शु भा, निशु भा, र भा, निर भा, मदना ।

(१०) भवनपति तथा वैमानिक इन्द्रों के ७-७ प्रकार की सेना होती है। यहाँ पाँच स ख्या के अनुरूप पाँच-पाँच सेना का कथन है । नर्तक सेना और ग धर्व(गायक)सेना को छोडा है । अपेक्षा से युद्ध के योग्य पाँच सेना ही होती है अवशेष दो सेना तो ऋद्धि रूप होती है । प्रस्तुत शास्त्र में सेनाओं के अधिपतियों के नाम बताये गये हक्त । पाँच-पाँच नाम पाँचवें स्थान में और अवशेष दो नाम सातवें स्थान में कहे गये हक्त । यहाँ देवेन्द्रों की सेना में जो पशुओं के नाम हक्त तदनुसार देव वैसे रूपों की विकुर्वणा करके रहते हक्त वास्तव में देवलोकों में जानवर नहीं होते हक्त । पैदल सेना में सभी की ७–७ कक्षाएँ कही गई है और कक्षाओं में देवों की स ख्या भी नियत होती है वह स ख्या भी सातवें स्थान के सूत्र–११४ से ११९ तक में बताई है । उसमें विशेषता यह है कि प्रथम कक्षा से दूसरी कक्षा में दुगुने देव होते हक्त, यों आगे आगे की कक्षा में दुगुने-दुगुने देव होते हक्त ।

इस प्रकार यहाँ भवनपति और वैमानिक इन्द्रों की सेनाओं वगैरह का कथन है । नामों में विशेषता यह है कि नवनिकाय में दक्षिण

के ९ इन्द्रों के सेना अधिपतियों के नाम एक समान हक्त और उत्तर के भी सभी सेना अधिपतियों के नाम एक समान हक्त । सेना में भवनपतियों में चौथी सेना महिषों की है और वैमानिकों में उसकी जगह बैलों की सेना है । बाकी सभी ६ ही सेना सरीखी है ***॥इति प्रथम उद्देशक ॥***

(११) पाँच आश्रव–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग । **पाँच स वर**– सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय, अयोग(शुभयोग)। **(१२) परिज्ञा–ज्ञ** परिज्ञा और त्याग परिज्ञा ।१. स यम योग्य आवश्यक उपधि का परिज्ञान एव ममत्व त्यागना । २. शय्या स स्तारक मकान स ब धी कल्प्याकल्प्य का परिज्ञान एव आसक्ति त्याग ।३.कषाय के स्वरूप, फल आदि का परिज्ञान एव उनका लक्ष्यपूर्वक त्याग और विवेक । ४. योग परिज्ञा–मन, वचन, काया के शुभाशुभ का परिज्ञान एव उन से निवृत्ति । ५. आहार पानी की निर्दोषताओं का एव स्व-पर के हितावह आहार की मर्यादा का परिज्ञान एव स्वादवृत्ति मा डले के पाँच दोषों का तथा कुल ४७ दोषों का परित्याग करना, यों उभय प्रकार की परिज्ञा को यहाँ पाँच से स ब धित करके बताया है । जिसमें से तीन में आसक्ति त्याग और दो में निग्रह रूप त्याग है ।

(१३) स यमी व्यक्ति जब जागृत अवस्था में होता है तब उसके इन्द्रिय विषय सुप्त रहते हक्त क्यों कि वह इन्द्रिय निग्रह में पूर्ण सावधानी वर्तता है ।जब वह सोता है तो निद्रा के समय उसकी सावधानी सतर्कता सुप्त हो जाती है जिससे उस समय उसके पाँचों इन्द्रिय विषय जागृत रहते हक्त, नींद में स्वप्न में कुछ भी घटित हो सकता है । **(१४) पाँच उपघात**– उद्गम, उत्पादन, एषणा दोष सेवन, उपकरणों का अनावश्यक परिकर्म, अकल्पनीय उपकरण उपयोग । इनसे स यम का उपघात-नुकशान या विनाश होता है । इसी के प्रतिपक्ष में पाँच विशोधि-स यम के विकाश कहे हक्त– उसमें ऐषणा के ४७ दोष टालने से, निष्प्रयोजन उपकरणों का परिकर्म नहीं करने से, सदा आगमोक्त उपकरण ही रखने से स यम की प्रगति, विकास, विशोधि होती है ।

(१५) पाँच आश्रव-पाँच स वर– पाँचों इन्द्रिय स ब धी कहे हक्त । **(१६)** एकेन्द्रिय की हिंसा का त्याग करने वाला ५ प्रकार का स यम करता है– पृथ्वीकाय स यम यावत् वनस्पतिकाय स यम । प चेन्द्रिय की हिंसा का त्याग करने वाला पाँच प्रकार का स यम करता है– श्रोतेन्द्रिय स यम

यावत् स्पर्शेन्द्रिय स यम । इसी प्रकार एकेंद्रिय प चेन्द्रिय की हिंसा करने वाला पाँच प्रकार का अस यम-व्याघात करता है । सर्व प्राणियों की हिंसा त्यागने में और हिंसा करने में एकेन्द्रिय से प चेन्द्रिय स यम और अस यम कहना । **(१७)** ऋषभदेव भगवान, भरत चक्रवर्ती, बाहुबली, ब्राह्मी, सु दरी ये पाँचों की अवगाहना ५०० धनुष की थी । **(१८)** नींद में सोया हुआ व्यक्ति ५ कारणों से जागृत हो जाता है– आवाज सुनकर, किसी का स्पर्श हो जाने या टक्कर लग जाने पर, भोजन पूर्ण परिणत हो जाने पर अर्थात् भूख लगने पर, निद्रा कर्म के क्षय हो जाने पर अर्थात् नींद पूर्ण हो जाने पर और स्वप्न देखने पर (क्षुब्ध हो जाने से या स्वप्न समाप्ति पर) । ***॥इति द्वितीय उद्देशक ॥***

(१९) वायु के पाँच प्रकार– पूर्ववायु यावत् उत्तर वायु पाँचवाँ विदिस वायु–विदिशा में चलनेवाला पवन ।**अचितवायु** के ५ प्रकार– १. भूमि पर जोर-जोर से पग पछाडने से उत्पन्न, २. श ख वगैरह फू कने से उत्पन्न, ३. य त्र पीडित होने से उत्पन्न, ४. शरीर के भीतर उत्पन्न, ५. स्वत: स मूर्च्छिम उत्पन्न वायु । यह अचित्त वायु अल्पकाल बाद स्वत: सचित्त हो जाती है । **(२०)** निधि ५ है– पुत्र, मित्र, शिल्प, धन और धान्य । **(२१)** द्रव्य और भावशुचि के ५ प्रकार– मिट्टी से बर्तनों की, पानी से शरीर वस्त्रादि की, अग्नि से सोना चा दी आदि धातुओं की, म त्र से पापों की, दोषों की या वातावरण की, ब्रह्मचर्य से आत्मा की पवित्रता होती है। **(२२)** छद्मस्थ जीव–धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीर रहित जीव और परमाणु को पूर्ण रूप से जान-देख नहीं सकते । मात्र श्रुतज्ञान के आधार से जानते हक्त । केवलज्ञानी पूर्ण रूप से जानते देखते हक्त ।

(२३) याचक के ५ प्रकार– अतिथि रूप याचक, कृपणरूप याचक, ब्राह्मणरूप याचक, कुत्ते याचक(पशु), श्रमण याचक–मा गने या अपेक्षा रखने की अपेक्षा । अन्य अर्थ यह भी होता है कि इन पाँच के दान की प्रश सा करके याचना करने वाले । प्रथम अर्थ समीचीन लगता है ।**(२४)** पाँच उत्कल–प्रधान– १.आरक्षक– द डप्रधान, २. राज्य में प्रधान कर्मचारी, ३. चोरों में प्रधान-सरदार, ४. अमुक देश विशेष में प्रधान और ५. सभी विषयों में प्रधान । **(२५)** छेदन के पाँच प्रकार– उत्पाद पर्याय की अपेक्षा विभाजन, व्यय पर्याय की अपेक्षा विभाजन,

कर्मब ध की अपेक्षा विभाजन, प्रदेश की अपेक्षा विभाजन, तलवार से विभाजन। **(२६)** आन तर्य पाँच है– उत्पाद, व्यय, प्रदेशों की स लग्नता, समय की निर तरता, सामान्य निर तरता(विशेष की विवक्षा विना) अथवा श्रामण्य आन तर्य– श्रेणी की अपेक्षा। **(२७)** अन त पाँच– नाम, स्थापना, द्रव्य, गणना, प्रदेश । दूसरी तरह से– एक दिशा में श्रेणी प्रदेश अन त, दो दिशा में श्रेणी, विस्तार युक्त एक दिशा, सर्व दिशा विस्तार, शाश्वत अन त– अनादि अन त ।

(२८) पाँच तीर्थंकरों ने राजा बने बिना दीक्षा ली थी– १. वासुपूज्य २. मल्ली भगवती ३. अरिष्टनेमि ४. पार्श्व ५. महावीर। **(२९)** पाँच नक्षत्रों के पाँच तारे–विमान हक्त– धनिष्ठा, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा नक्षत्र ।

इसके अतिरिक्त अन्य आगमों में वर्णित तथा यहाँ भी पूर्व स्थानों में वर्णित अनेकानेक विषय हक्त। यथा– महाव्रत, अणुव्रत, इन्द्रिय विषय, सद्गति–दुर्गति, पडिमा, वर्णादि, यतिधर्म, तपअभिग्रह, आसन, वैयावृत्य, विस भोग, प्रायश्चित्त, निषद्या, ज्योतिषी, देव, परिचारणा, अग्रमहिषी, द ड, क्रिया, व्यवहार, कर्म, प्रतिस लीनता, चारित्र, तृण-वनस्पति, प चाचार, क्षेत्र-पर्वत-द्रह, अतिशय, ऋद्धि । अस्तिकाय, जीव, निय ठा भेद, पाँच वस्त्र, पाँच रजोहरण, नरकावास, अनुत्तरविमान, समिति, धान्य योनि, मत्स्य–भिक्षु उपमा, स वत्सर, निर्वाणमार्ग, ज्ञान, स्वाध्याय, देवलोक, द्वीप, नदी आदि । तीनों उद्देशों के प्राय: विषय अन्यशास्त्रों में वर्णित है । इनकी विचारणा वहीं पर की जायेगी ।

स्थान–६

प्रश्न–१ : इस स्थान का क्या परिचय है ?

उत्तर– ६ की स ख्या से स ब धित विषयों का इस स्थान में निरूपण किया गया है । इसमें अन्य कोई विभाजन–उद्देशक आदि नहीं है । सीधा १२१ सूत्रों से वर्णन किया गया है । वर्णन विषय अक्रमिक ही है, कोई निश्चित्त विषय क्रम नहीं है ।

प्रश्न–२ : श्रमण-श्रमणियों में कौन स घाडा प्रमुख बनकर विचरण कर सकता है ?

उत्तर– इस स्थान के प्रथम सूत्र में ही गण धारण करके (२-४ साधुओं को लेकर) विचरण करने वाले को ६ गुणों का धारक होना कहा गया है ।

(१) श्रद्धावान– दृढ श्रद्धा वाला । जिनशासन; जिनागम, गुढ आज्ञा में दृढ, अडोल अक प आस्था वाला होना चाहिये । किसी की फुसलावट में नहीं आने वाला होवे । **(२) सत्यपुढष**– सत्यनिष्ठ । किसी की खोटी हाँ मे हाँ नहीं भरे । नीति नेकीवान एव झूठ-कपट, छलप्रप च से मुक्त । यथार्थ वचनप्रयोग करने वाला एव यथार्थ ही आचरण करने वाला । सत्य मार्ग से नहीं हटने वाला, सदा सत्यमार्ग पर ही चलने वाला । **(३) मेहावी**– बुद्धिमान, कुशल, विचक्षणता आदि गुणों वाला । समयज्ञ, विवेकयुक्त निर्णय करने में समर्थ ।

(४) बहुश्रुत– साधु-साध्वी दोनों की अपेक्षा ये गुण कहे हक्त । अत: जिस समय में जितने शास्त्र उपलब्ध हों उनका सम्यक् अध्ययन कर उसमें पार गत बनने वाला, अर्थ परमार्थ की चर्चा विचारणा द्वारा समझा हुआ साधक तथा व्यवहारसूत्र निर्दिष्ट आवश्यक आगमों को सूत्र, अर्थ, उभय से क ठस्थ धारण करने वाला बहुश्रुत होता है। **क ठस्थ धारण में**– आवश्यक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आचारा ग, निशीथ सूत्र, सूयगडा ग सूत्र और तीन छेद सूत्र, इन क्रमिक ५ या ९ शास्त्र को धारण करने वाला, जघन्य एव मध्यम बुहुश्रुत भाष्य अनुसार गिना गया है । उत्कृष्ट में ९ से १४ पूर्वज्ञानी लिये जाते हक्त । **(५) शक्तिवान**–सामर्थ्य-शाली । शरीर से स्वस्थ एव दृढ स हनन वाला । अनेक रोगों से आक्रा त, कायर, डरपोक स्वभाव वाला नहीं होना चाहिये, निडर स्वभावी होना चाहिये अर्थात् शारीरिक एव मानसिक क्षमता से युक्त होना चाहिये । **(६) अल्पाधिकरण**– क्लेश, कषाय, कदाग्रह से रहित प्रकृति वाला, मधुरभाषी, मिलनसारी स्वभाव, नि:स्वार्थ परोपकारी वृत्ति वाला अन्यों का मन जीत सकता है। तात्पर्य यह है कि कषायों से सदा दूर रहने वाला होना चाहिये ।

इन गुणों से स पन्न साधु अपनी निश्रा में अन्य श्रमणों को और साध्वियाँ अन्य श्रमणियों को लेकर स घाडे की मुख्यता धारण करके विचरण कर सकते हक्त और उनका विचरण स्व-पर के लिये एव जनता के लिये तथा जिनशासन के लिये हितावह–परम हितावह होता है । अत: साधकों को, अभ्यासी श्रमणों को प्रार भ से ही स्वय को इस

प्रकार की योग्यता एव गुणों से स पन्न बनने बनाने के लिये उद्यमशील रहना चाहिये । तदुपरा त किसी श्रमण को उत्तराध्ययन सूत्र, अध्य.३२ या दशवैकालिक चूलिका अनुसार अथवा आचारा ग, सूयगडा ग सूत्र निर्दिष्ट सपरिस्थितिक एकलविहार करने की आवश्यकता पडे तो उसे भी उपरोक्त ६ गुणस पन्नता की अपनी योग्यता का पूर्ण निरीक्षण कर लेना चाहिये । इस शास्त्र में आगे आठवें स्थान में ऐसे एकलविहार करने वालों के लिये इन ६ गुण सहित २ नये गुण जोडकर आठ गुण स पन्न होना कहा है ।

(७) धैर्यवान– कोई भी कष्टमय स्थिति आने पर धैर्य के साथ शा ति-पूर्वक उसे पार कर सकने वाला, कुछ भी उतावला निर्णय नहीं करके ग भीरता से मानसिक स तुलन रख सकने वाला, सहनशील स्वभाव वाला । अकेले रहने में यह विशेष गुण आवश्यक कहा गया है । **(८) वीर्य स पन्न**– अदम्य उत्साही, हिम्मती, पुढषार्थी, दृढ मनोबली होना भी एकलविहार के लिये विशेषगुण आवश्यक है ।

ये दो गुण एकाकी होने के लिये विशेष कहे जाने का तात्पर्य यह है कि स्वय की स पूर्ण जिम्मेदारी अकेले के उपर आ जाती है– शरीर की, स यम की, स्वावल बी रहने की, स यम मर्यादाओं को निभाने की, किसी का व्यवहार उल्टा हो, कोई अपमान करे, तिरस्कार करे, मकान आदि न दे, ऐसी परिस्थितियों में धैर्य और उत्साहपूर्वक एकाकीपन में स तुष्ट रहना होता है । गच्छ के साधु स घाडा प्रमुख बनकर जिम्मेदारी का निर्वाह करे तो भी उसके साथ वाले स त हरकार्य में सहयोगी बन सकते हक्त । इसलिये उन्हें अ तिम दो गुणों को छोडकर प्रार भ के ६ गुणों का धारक होना ही इस छट्ठे स्थान में कहा गया है ।

यहाँ तीसरा बोल शक्तिवान का है उसमें शारीरिक शक्ति की प्रधानता है और आठवा बोल वीर्य स पन्न का है इसमें उत्साह हिंमत आदि भावों की प्रधानता है । अत: दोनों बोलों का अलग-अलग कथन यथार्थ है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्राचीन व्याख्याकारों ने ६ गुणों के अर्थ में बहुश्रुत का आशय जघन्य-मध्यम बहुश्रुत किया है । कि तु एकलविहारी के गुणों में उसी गुण से ९ पूर्वी यावत् १४ पूर्वी होना जरूरी है, ऐसा अर्थ किया है। इस कारण से पर परा में एकलविहार का विच्छेद होना कहा जाता है

तथा एकलविहारी स त का जिनाज्ञा विपरीत, अकल्पनीय विहार कहा जाता है । वास्तव में वैसा कथन करना अधूरे ज्ञान का परिणाम है तथा एका त निषेध करना उत्सूत्र प्ररूपण दोष भी है । क्यों कि उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, सूयगडा ग सूत्र में साधु के एकलविहार का स्पष्ट कथन है और उसमें कल्याण होना स्वीकार्य गिना है । स्थान-३ में एकलविहार तो साधु का दूसरा मनोरथ कहा है । अत: छ गुणों का अर्थ एक सरीखा करना चाहिये ताकि अति प्ररूपण का दोष नहीं लगे ।

प्रश्न–३ : साधु-साध्वी के काल कर जाने पर साधर्मिक स त-सती क्या क्या आचरण कर सकते हक्त ?

उत्तर– (१) साधर्मिक साधु-साध्वी उस मृत शरीर को भीतर के कमरे में से बाहर के कमरे में ला सकते हक्त । (२) फिर उससे भी बाहर घर के चौक, चबूतरा आदि में लाकर रख सकते हक्त । (३) रात्रिभर रखना पडे तो उसकी सार-स भाल, निगरानी रख सकते हक्त । (४) रात्रिभर जागरण कर सकते हक्त । (५) परिचर्या के लिये श्रमणों को आज्ञा दे सकते हक्त । (६) अ त में उठाकर मौनपूर्वक गाँव के बाहर ले जाकर विसर्जित कर सकते हक्त । गृहस्थ कोई भी स भालने वाले हो तो उनको सोंप सकते हक्त, ऐसा छेद सूत्र में वर्णित है ।

प्रश्न–४ : प्रस्तुत में अशक्य और दुर्लभ क्या-क्या दर्शाये हक्त ?

उत्तर– छ की स ख्या का वर्णन प्रस ग होने से यहाँ ६ अशक्य कार्य और ६ की दुर्लभता कही है । **अशक्य कार्य**– १.जीव को अजीव करना २. अजीव को जीव करना ३. एक समय में दो भाषा बोलना ४. अपने बा धे हुए कर्म का वेदन करुँ या नहीं करुँ ऐसा निश्चय करना ५. परमाणु पुद्गल का छेदन-भेदन करना या अग्नि में जलाना ६. लोक से बाहर अलोक में जाना । ये कार्य स सार में कोई भी प्राणी, देवता, केवली आदि नहीं कर सकते हक्त ।

दुर्लभ बोल–(१) मनुष्यभव– सब जीवों की अल्पबहुत्व में सन्नी मनुष्य सब से अल्प है । (२) **आर्य क्षेत्र**–भरतक्षेत्र में साडे पच्चीस देश आर्य क्षेत्र है शेष ३१९७४॥ देश अनार्यक्षेत्र है । भूमि की अपेक्षा यह क्षेत्र निश्चित्त है । इस में उत्पन्न होने वाले मनुष्य क्षेत्र की अपेक्षा आर्य-अनार्य कहे जाते हक्त । (३) **सुकुल**–यहाँ ऊँच-नीच का कथन नहीं है सुकुल का कथन करके श्रेष्ठ कुल का सूचन किया गया है । यह शब्द

प्रयोग विवेकयुक्त किया गया है ।(४) केवली प्ररूपित धर्म का श्रवण-स योग । (५) **श्रुतज्ञान–** सिद्धा त के तत्त्वों में सम्यग् स्थिर श्रद्धा । (६) श्रद्धा, प्रतीति, ढचि, निष्ठा, भक्ति के साथ सर्वज्ञोक्त श्रमण आचार या श्रावकाचार का यथार्थ पालन । आगे के स्थानों में तथा उत्तराध्ययन सूत्र में दस बोलों की दुर्लभता कही गई है । स ख्या प्रकरण के कारण यहाँ शेष चार का समावेश समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–५ : आत्मार्थी अनात्मार्थी होने से क्या हानि लाभ होते हक्त?

उत्तर– आत्म साधना में, आत्मभावों में, मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य में एव स यम के नियमों में सावधान धर्मी आत्माओं का मुख्य प्रयोजन मोक्ष प्राप्ति रूप स पूर्ण कर्म क्षय करने का है । अपने लक्ष्य में, प्रयोजन में जो सावधान–तल्लीन होता है वह मोक्षार्थी साधक आत्मार्थी कहा जाता है । अनात्मार्थी– जो साधना में उपस्थित होकर भी लोकस ज्ञा में; मान, पूजा, प्रतिष्ठा की चाहना में प्रवाहित, पुद्‌गलान दी, ऐहिक सुखान्वेषी, इन्द्रिय निग्रह तथा कषाय निग्रह में असावधान–सर्तकता रहित, निष्परिग्रहता निर्ममत्वता नि:स्पृहता की साधना में अलक्ष्य या सुस्त लक्ष्य वाला होता है उसे अनात्मार्थी कहा जाता हक्त । स क्षेप में धर्म पुढषार्थ, धर्म साधना आराधना के लिये परिपूर्ण पात्रता की मूल भूमिका वाला आत्मार्थी और उस पात्रता की अपूर्णता या अपरिपक्वता वाला अनात्मार्थी कहा गया है ।

प्रस्तुत सूत्र–३० में यह बताया गया है कि पुण्य से प्राप्त ६ बोल आत्मार्थी के लिये हितकर होते हक्त अर्थात् आत्मार्थी उनकी उपलब्धि के निमित्त से अपनी आत्मा का हित ही करता है । कर्मनिर्जरा एव स यम-स वर ही प्राप्त करता है । उनके निमित्त से कर्मब ध, मोहमाया, मान-अभिमान नहीं करता है । जब कि अनात्मार्थी उन्ही प्राप्त पुण्य सामग्री के निमित्त से अह भाव, मोहमाया या कर्मब ध बढाकर अपना अहित कर लेता हक्त । छ बोल– (१) स यम पर्याय–स यम जीवन (२) शिष्य समुदाय–स प्रदाय (३) श्रुतज्ञान स पन्नता (४) तपस्या (५) अ तराय रहित लाभ (६) पूजा-सत्कार । आत्मार्थी व्यक्ति इन ६ के स योग में भी आत्मविकाश बढाता है, स यम साधना को पुष्ट करता है । जब कि आत्मार्थीपन की भूमिका नहीं होने पर अनात्मार्थी व्यक्ति इनके

निमित्त से या दुढपयोग से अवगुणों और कर्मों की वृद्धिकर लेता है । अत: शास्त्रकार ने यह दर्शाया है कि ये ६ स्थान आत्मार्थी के लिये हितकारी सुखकारी कल्याणकारी निपजते हैं और अनात्मार्थी के लिये ये ही स्थान अहितकारी एव अकल्याणकारी निपजते हक्त ।

इस आगम तत्त्व को समझकर प्रत्येक साधक को तप–स यम की साधना के साथ स यम की मूल भूमिका रूप शुद्धि एव गुणों के सम्यक् परिणमन की पात्रता; ज्ञान, वैराग्य, अनुप्रेक्षा के द्वारा प्राप्त करते रहना चाहिये ।

प्रश्न–६ : प्रमाद और प्रमाद प्रतिलेखन कौन से कहे गये हक्त ?

उत्तर– प्रस्तुत में सूत्र–४१ में प्रमाद के ६ प्रकार कहे हक्त – (१) नशीले पदार्थ का सेवन प्रमाद है इसमें मदिरा, धूम्रपान आदि का समावेश है। (२) निद्रा प्रमाद–इसमें आत्मा का ज्ञान और भान सुषुप्त हो जाता है जागृत नहीं रहता है ।(३) विषय प्रमाद–इन्द्रिय विषयों की आसक्ति । (४) कषाय प्रमाद–कषायों की प्रवृत्ति ।(५) जूआ खेलना– यह प्रवृत्ति भी विवेक का नाशक होने से प्रमाद रूप है(अन्यत्र गाथा में पाँचवाँ प्रमाद विकथा कहा है ।) (६) यह छट्टा बोल श्रमणों की श्रमणचर्या से स ब धित है– प्रमाद प्रतिलेखन । छ की स ख्या के कारण छट्टा प्रमाद यहाँ कहा है । मुख्य सा सारिक जीवों के ५ प्रमाद ही समझना । श्रमणाचार में प्रतिलेखना की प्रवृति अहिंसा की पुष्टि करने वाली आवश्यक क्रिया–दिनचर्या है । उस प्रतिलेखना के अनेक विधि-नियम हक्त जिनका यथार्थ पालन नहीं करना अयोग्य रीति से प्रतिलेखन करना वह प्रतिलेखन कार्य में प्रमाद–उपेक्षा वृत्ति है ।

इस प्रमाद के सूत्र के बाद के सूत्रों में प्रतिलेखना स ब धी ६–६ प्रमाद और अप्रमादों का कथन किया गया है । प्रतिलेखन में अविधि का सेवन **प्रमाद** कहा गया है और विधि के पालन को अप्रमाद कहा है । वे सभी दोष–नियम **उत्तराध्ययन सूत्र** आदि में विस्तार से कहे हक्त । यहाँ मात्र ६ की स ख्या के योग्य कथन है । इस विषय की विस्तृत विचारणा वहाँ की जायेगी ।

प्रश्न–७ : महीनों में और वर्ष में तिथि घटती है या बढती है ?

उत्तर– प्रस्तुत सूत्र–८८, ८९ में बताया है कि वर्ष में ६ तिथियाँ घटती है और ६ तिथियाँ बढती है ।

आगम में स वत्सर, महीने पाँच प्रकार के कहे हक्त उनमें से ३० दिन का महीना और ३६० दिन का वर्ष ऋतु स वत्सर की अपेक्षा होता है। इस ऋतु स वत्सर की अपेक्षा सूर्य स वत्सर में ६ दिन बढते हक्त और चन्द्र स वत्सर में ६ दिन कम होते हक्त अर्थात् सूर्य स वत्सर ३६६ दिन का होता है और चन्द्र स वत्सर ३५४ दिन का होता है । यह स्थूल गणित से समझना । सूक्ष्म गणित से कुछ मिनट आदि न्यूनाधिक हो सकते हक्त उसे परिपूर्ण ६ दिन स्वीकार लिया जाता है ।

यह तिथि घट-वध का यहाँ स क्षिप्त कथन है । लौकिक प चा ग में च द्र स वत्सर में तिथि स कलना की विधि कुछ भिन्न है । उसमें वर्ष में १४ तिथि घटाई जाती है और ८ तिथि बढाई जाती है । सरवाला मिलाकर ६ तिथि घटना आगम से सुमेल हो जाता है । अर्थात् लौकिक प चा ग अनुसार भी आगमोक्त ३५४ दिन का च द्र स वत्सर हो जाता है । सूर्य स वत्सर की अपेक्षा प चा ग में तारीख लिखी जाती है। उसमें भी वर्ष में ६ दिन ऋतु स वत्सर की अपेक्षा अधिक होते हक्त। जनवरी से दिसम्बर तक ३६६ दिन हो जाते हैक्त। इस तरह आगमोक्त ६ तिथि बढने का भी सुमेल हो जाता है ।

प्रस्तुत सूत्र में किस महीने के किस पक्ष में तिथि घटती-बढती है उनका भी खुलाशा किया गया है, यथा– भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन, वैशाख और आषाढ महीनों के कृष्ण पक्ष में च द्र स वत्सर में तिथि घटती है और सूर्य स वत्सर में इन्हीं महीनों के शुक्ल पक्ष में तिथि बढती है । यहाँ पर तिथि का नाम स्पष्ट नहीं किया गया है । तिथि बनाने स ब धी सूक्ष्म गणित विवरण जैनागमों में उपलब्ध नहीं रहा है । जो भी ज्योतिष स ब धी वर्णन उपलब्ध है वह प्रकीर्ण रूप से है परिपूर्ण विस्तृत सूक्ष्म–आ तरसूक्ष्म गणित फलावट विच्छिन्न है तथा लौकिक प चा ग के प्राय: विधान आगम के स केत विधानों के पूरक ही है, विरोधी नहीं है । आज से १२००–१३०० वर्ष पूर्व भी यही स्थिति थी; अनेक आचार्योंने विचारणा करके पर्व–तिथियों के निर्णय में लौकिक प चा ग को स्वीकार्य, मान्य किया था । जिसकी आधारित गाथा इस प्रकार है– ***विसमे समय विसेसे, करण गह चार वार रिक्खाण । पव्व तिहीण य सम्म , पसाहग विगलिय सुत्त ॥१॥ तो पव्वाइ विरोह नाऊण, सव्वेहिं गीय सूरिहिं । आगम मूलमिण पि य, तो लोइय टिप्पणय पगय ॥२॥***

प्रस्तुत गाथाओं का हार्द यह है कि समय की विषमता के कारण पर्व तिथियों का सम्यक् निर्णायक आगमश्रुत विच्छिन्न(कम) हो गया अर्थात् अपूर्ण रह गया है । जिससे आगमाधार से पर्वादि के स योजन में बराबर सुमेल नहीं हो पाता । अत: लौकिक प चा ग भी आगम के मौलिक सिद्धा तो के पूरक ही है ऐसा मान कर अनेक गीतार्थ, बहुश्रुत आचार्यों ने मिलकर लौकिक प चा ग को ही अपने पर्व तिथियों वगैरह के निर्णय के लिये स्वीकार्य किया है । इसीलिये आज भी लौकिक प चा ग अनुसार ही तिथियों का स्वीकार किया जाता है । मात्र गुजरात प्रा तीय श्रमण अपना जैन प चा ग अज्ञात समय से स्वत त्र बनाने लगे हक्त । वे भी मौलिक आधार सहयोग तो लौकिक प चा ग का लेते ही हक्त ।

प्रश्न–८ : अन्य भी और कौन-कौन से विषयों का यहाँ निरूपण है ?

उत्तर– उपरोक्त प्रश्नोत्तरों में समाविष्ट विषयों के अतिरिक्त अनेक विषय इस स्थान में ६ की स ख्या के माध्यम से स कलित है, जो इस प्रकारहक्त– **(१) ऋद्धिवान** मनुष्य ६ कहे हक्त– तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, ज घा चारण–विद्याचारण, विद्याधर । **ऋद्धि रहित** मनुष्य ६ कहे हक्त– हेमवय आदि ६ युगलिक क्षेत्र के मनुष्य ।

(२) जातिआर्य के छ नाम– यहाँ जाति के ६ अप्रचलित नाम कहे हक्त– अ बष्ट, कलन्द, वैदेह, वैदिक, हरित, चु चुग । ये नाम घम्मा, व शा आदि नरक के नामों के समान अर्थ रहित एव अप्रचलित है । **कुल आर्य–** उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल, कौरव कुल । ये कुल प्रसिद्ध और लोक में प्रचलित हक्त ।

(३) पागल या उन्मत्त(मतिविभ्रा त) होने के ६ कारण– १. अरिह तों का अवर्णवाद(निंदा)करने से । २. अरिह तो के धर्म का, सिद्धा तों का अवर्णवाद करने से । ३. आचार्य-उपाध्याय(गुढ-वडील) का अवर्णवाद करने से । ४. चतुर्विध स घ की, जिनशासन की हीलना निंदा करने से । ५. प्रेतात्मा के प्रवेश से । ६. मोहनीय कर्म के उदय से, मस्तिष्क की बिमारी से पागल हो जाने से । यहाँ एक कारण कर्मोदय से स ब धित कहा है और ४ कारण दूषित प्रवृत्ति रूप कहे गये हक्त और एक कारण पर निमित्तक–उपद्रव निमित्तक कहा है ।

(४) विवाद के छ दूषण(छल) हक्त– १. वाद में सही तर्क या उत्तर न आवे तो समय व्यतीत करने के लिये मुख्य विषय से दूर रहना । २.

उत्तर आवे तो बिन धैर्य के उतावल से विवाद में उतर आना । ३. प्रमुख व्यक्ति को अपना कर लेना । ४. अपने ही अभिमान में प्रमुख की उपेक्षा करना, प्रतिकूल वचन बोलना । ५. प्रमुख की सेवा-परिचर्या से उसे उपकृत करना । ६. निर्णायकों में एक अपने पक्ष वालों में से स्थापित करवाना । ऐसे दूषित हार-जीत वाले वाद आत्म साधकों के लिये त्याज्य है । तत्त्व निर्णयार्थ वाद करना सुवाद है, अत्यावश्यक होने पर उपादेय भी है । कभी जबरदस्ती से उपर आ पडने पर हार-जीत का वाद भी करना पड सकता है, वह सपरिस्थितिक अपरिहार्य होने पर अपनी क्षमतानुसार किया जाता है और उस निमित्त स यम से मर्यादा दूषित बने तो यथायोग्य आलोचना प्रायश्चित्त भी किया जाता है ।

(५) क्षुद्र प्राणी के ६ प्रकार– छोटे, बुद्धिविहीन या पीडाकारी आदि अपेक्षाओं-आशय से इन्हें क्षुद्र प्राणी–जीवज तु कहा गया है– बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, स मूर्च्छिम प चेन्द्रिय तिर्यंच, तेउकाय, वायुकाय ।

(६) मेढ से दक्षिण तरफ **प्रथम नरक** के ६ नरकावास– लोल, लोलुप, उदग्ध, निर्दग्ध, जरक, प्रजरक ये एक दिशा के बडे नरकावासों के नाम है । **चौथीनरक में** कुल ६ बडे नरकावास हक्त– आर, वार, मार, रौर, रौढक, खाडखड । **पाँचवें** देवलोक में ६ प्रतर–पाथडा पृथ्वीतल है– अरज, विरज, नीरज, निर्मल, वितिमिर, विशुद्ध । ये प्रतरों के नाम हक्त ।

(७) अभिचन्द्र कुलकर की अवगाहना ६०० धनुष्य की थी । भरत चक्रवर्तीने ६ लाख पूर्व वर्ष पर्यंत महाराजपद पाया । पार्श्वनाथ भगवान के ६०० वादी थे । वासुपूज्य भगवान ने ६०० पुढषों के साथ दीक्षा ली थी । च द्रप्रभ तीर्थंकर छ महीना छद्मस्थ रहे थे फिर केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ था । **(८) तेइन्द्रिय की हिंसा से ६ प्रकार का अस यम होता है**– १–३. तीन इन्द्रियों के विषय सुख का नाश और ४–६. तीन के दुःख का स योग कराने रूप अस यम होता है । इनकी हिंसा नहीं करने से **हिंसा का त्याग** करने से ६ प्रकार का **स यम** होता है– १–३. तीन इन्द्रिय विषय सुख का अविनाश और ४–६. तीन इन्द्रिय विषय स ब धी दुःख का अस योग; यह ६ प्रकार का स यम होता है । **(९) ऋतु ६ कही है**– १. प्रावृटऋतु(श्रावण-भाद्रपद) २. वर्षाऋतु(आसोज-कार्तिक) ३. शरदऋतु(मिगसर-पोष)४. हेम तऋतु (माघ-फाल्गुन) ५. वस तऋतु(चैत्र-वैशाख) ६. ग्रीष्मऋतु (जेठ-अषाढ) ।

(१०) भगवान महावीर स्वामी की दीक्षा, केवलज्ञान और मुक्ति तीनों छट्ठ की तपस्या में हुए थे । **(११) भोजन के ६ परिणाम**– १. मनोज्ञ लगे, २. स्वादिष्ट लगे, ३. रक्त धातु आदि रूप परिणमे, ४. इन्हें परिपुष्ट करे, ५. शक्ति बल बढावे ६. उत्साह बढावे । **(१२) विष के ६ प्रकार**– १. विच्छु आदि के डंक देने से, कुत्ते आदि के काटने से, २. खाने से पेट में जाने पर परिणमन होने वाला, ३. चमडी पर स्पर्श से असर करने वाला, ४. मा स तक असरकारी, ५. खून में असरकारी, ६. हड्डि आदि में असरकारी । ये भी विष परिणमन के प्रकार हक्त ।

(१३) प्रश्न भी ६ प्रकार से होते हक्त– १. स शय प्रश्न–श का निवारणार्थ, २. दूसरे को हराने, अपमानित करने हेतु प्रश्न, ३. सूत्र श्लोक के अर्थ समझने हेतु प्रश्न, ४. अनुकूल–कुशलक्षेम पृच्छा रूप प्रश्न, ५. जानते हुए भी अन्यों के उपकारार्थ किये जाने वाले प्रश्न, ६. खुद के विश्वास स तुष्ठी के लिये जानते हुए भी छाप लगाने रूप प्रश्न पूछना ।

(१४) छ महीनों का विरह– १. सभी इन्द्रों का, २. सातमी नरक का, ३. सिद्ध होने का और ४. चमरच चा राजधानी में उत्कृष्ट छ महीना के विरह काल बाद कोई न कोई जीव जरूर उत्पन्न होता है । जघन्य विरह सर्वत्र अ तर्मुहूर्त का होता है, सिद्धों में जघन्य १ समय का विरह होता है ।

(१५) प्रतिक्रमण के नये तरीके के ६ प्रकार– १. उच्चार–मलविसर्जन के बाद इर्यावहि रूप प्रतिक्रमण । २. लघुनीत परठने का प्रतिक्रमण। ३. इत्वरिक–देवसी, राइय, पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण । ४. यावत्कथित स लेखना स थारा के समय किया जाने वाला आजीवन का प्रतिक्रमण। ५. मिच्छामि दुक्कड रूप सामान्य भूल का प्रतिक्रमण । ६. स्वप्नस ब धी प्रतिक्रमण । ६ की स ख्या की मुख्यता से ये सापेक्ष कथन है ।

(१६) शक्रेन्द्र के सोम और यम लोकपाल की ६ अग्रमहिषियाँ है। ईशानेन्द्र के मध्यम पर्षदा के देवों की ६ पल्योपम की स्थिति है । दिशाकुमारेन्द्र की ६ अग्रमहिषियाँ–रूपा, रूपाँशा, सुरूपा, रूपवती, रूपका ता, रूपप्रभा । विद्युत्कुमारेन्द्र की ६ अग्रमहिषियाँ– अला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युता । धरणेन्द्र की ६ अग्रमहिषियाँ– अला आदि । भूतान द की ६ अग्रमहिषियाँ– रूपा आदि । उत्तर के सभी इन्द्रों की अग्रमहिषियों के समान नाम और दक्षिण के नव ही

इन्द्रों की अग्रमहिषियों के समान नाम हक्त। नवनिकाय के देवेन्द्रों के ६ हजार सामानिक देव होते हक्त ।

अन्य आगमों में आये हुए यहाँ स कलित विषय– साध्वी को सहारा देना, ज्ञान अक्षमता, जीवभेद, इन्द्रिय विषय, प्रायश्चित्त, काल, स घयण, स स्थान, लोकस स्थिति, दिशा, आहार, लेश्या, मति के भेद, तप, गोचरी, नक्षत्र, क्षेत्र, पर्वत, नदी, द्रह, कूट, अवग्रह, अवधिज्ञान, अवचन–प्रस्तार–पलिम थु–कल्पास्थिति । इत्यादि विषय अन्यत्र आगम में होते हुए भी यहाँ ६ की स ख्या के कारण स कलन किया गया है ।

स्थान-७

प्रश्न–१ : इस सातवें स्थान का क्या परिचय है ?

उत्तर– इस स्थान में सात की स ख्या वाले विषयों का निरूपण है । इसमें उद्देशक विभाग नहीं है । अन्य शास्त्रों में वर्णित अनेक विषय भी यहाँ स ख्या के निमित्त से लिये गये हक्त ।

प्रश्न–२ : कोई भी साधु अपने गुढ का त्याग क्यों करता है ?

उत्तर– यहाँ प्रथम सूत्र में गच्छ छोडकर अन्य गच्छ में जाने के ६ कारण और सातवाँ कारण अकेले ही रहकर साधना करने के लिये गच्छ त्यागना–अपक्रमण बताया है, यथा– (१) आचार ढचि गच्छ से पूर्ण भिन्न हो जाय । (२) कुछ ढचि भिन्न हो जाय । (३) अनेक प्रश्नों के समाधान नहीं मिलने से । (४) कुछ प्रश्नों का समाधान नहीं मिलने से । (५) श्रुतज्ञान प्राप्त करने की ढचि में अस तोष होने से । (६) श्रुतज्ञान देने की ढचि में स तोष न होने से । (७) कर्मस योग से और प्रकृति के नहीं मिलने से एकलविहार करने के लिये । इन कारणों से व्यक्ति का चित्त उठ जाता है ।वह कुछ समय प्रतीक्षा करता है और एक समय निर्णय करके आज्ञा लेकर या नहीं लेकर; कहकर या बिना कहे यों किसी भी तरह निकल जाता है, जिसे अकेले नहीं रहना है वह अन्य गच्छ में मिल जाता है ।

आगम का इसमें इतना ही कहना है कि– यदि ज्ञान, दर्शन, चारित्र या चित्त समाधि एव स यम आराधना की वृद्धि होती है; भविष्य

उज्जवल बनाता है तो वह जाना प्रशस्त है और उसमें आज्ञा का उल्ल घन भी नहीं है तथा निकलने जाने का प्रायश्चित्त भी नहीं है । जाने वाला नम्रता से निवेदन करके आज्ञा लेकर जाता है और कोई भी गच्छ वाले उसे आज्ञा लेकर स्वीकारते हक्त तो वह भी आगम सम्मत है और विधिपूर्वक गच्छत्याग कहा जाने योग्य है ।

प्रश्न–३ : विभ गज्ञान कितने प्रकार के होते हक्त ?

उत्तर– प्रस्तुत में गृहत्यागी स न्यासी को साधना से उत्पन्न होने वाले विभ ग ज्ञान के ७ प्रकार कहे हक्त– (१) किसी को एक दिशा का विभ ग ज्ञान होता है वह स पूर्ण लोक एक दिशामें होने की प्ररूपणा करता है, अन्य दिशा का निषेध करता है । (२)पाँच दिशा और उसमें प्रथम देवलोक तक का विभ ग ज्ञान होता है और वह लोक को उतना ही मानने लग जाता है । (३) समस्त जीवों को विभ गज्ञान से हिंसादि पाप करते, खाते-पीते, क्रियाएँ करते देखता है, कर्मब ध करने को वह नहीं देखता है । अत: वह यह प्ररूपण करता है कि जीव क्रियाओं से आवृत है कि तु कर्म से आवृत्त नहीं है । वह कर्म को अस्वीकार करता है । (४) वैक्रिय लब्धि से देवों को पुद्‌गल लेकर रूप बनाते देखकर विभ गज्ञानी यह मानता है कि देखो यह देव पुद्‌गल लेकर जीवों को बनाता है । अत: जीव पुद्‌गल निर्मित्त ही होते हक्त । (५)वैक्रिय से रूप बनाते नहीं देखता । अत: जीवों को पुद्‌गल निर्मित नहीं मानता है । (६) दिखने वाले रूपों की विक्रिया करते देखकर यह मानता है कि जीव रूपी है, दिखते हक्त । (७) वायु स योग से पुद्‌गलों को क पित होते देखकर वह यह मानता है कि लोक में सब जीव ही है अजीव कुछ नहीं है ।

तात्पर्य यह है कि एक देश विभ गज्ञान को मिथ्यात्व के कारण सर्वज्ञान मान लेने का भ्रम होता है । सम्यग्‌दृष्टि को भी एक देश अवधि-ज्ञान होता है पर तु उसे उसमें सर्वज्ञान का भ्रम नहीं होता है । वह यह मानता है कि लोक विशाल है कि तु मुझे छोटा ही अवधिज्ञान हुआ है, उसमें मर्यादित ही दिखता है । वह अन्य विषय को श्रुतज्ञान से जानता है और श्रद्धा करता है ।

प्रश्न–४ : केवली और छद्मस्थ की क्या पहिचान है ?

उत्तर– केवली और छद्मस्थ की पहिचान के यहाँ ७–७ बोल कहे हक्त– (१-३) कोई हिंसा झूठ या अदत्त का सेवन करता है तो छद्मस्थ है ।

केवली हिंसा आदि नहीं करते हक्त । (४) जो शब्द आदि पाँचों इन्द्रिय विषयों की आसक्ति, रागद्वेष करता है तो वह छद्मस्थ हक्त क्यों कि केवली आसक्ति आदि से पूर्णतया मुक्त होते हक्त । (५) जिसे पूजा–सत्कार की चाहना हो तो वह छद्मस्थ हक्त । केवली को कोई चाहना नहीं होती है वे सहज भाव से विचरण करते हक्त । (६) कोई वस्तु सावद्य है, दोष युक्त है ऐसा जानकर भी जो उसका ग्रहण सेवन करता है । (७) जैसा कथन करे वैसी प्रवृत्ति नहीं करे तो वह छद्मस्थ हक्त । केवली के कथन और आचरण में भेद नहीं होता है । केवलियों को परिपूर्ण ज्ञान होता है, मोहकर्म नष्ट होता है । चार घातीकर्म नहीं होते है, अतः सूत्र में कहे गये छद्मस्थ योग्य ७ प्रकार के आचरण वे नहीं करते हक्त ।

प्रश्न–५ : मनुष्यों के मूल गौत्र और उनके प्रकार किस प्रकार कहे हक्त ?

उत्तर– इस स्थान के सूत्र–२१ से २७ तक में मूल गौत्र ७ और उनके ७–७ प्रकार यों ४९ गोत्रों के नाम बताये गये हक्त उनमें से कितनेक तो प्रचलित है और कितनेक अपरिचित से हक्त । मूलगोत्र–१. काश्यप २. गौतम ३. वत्स ४. कुत्स ५. कौशिक ६. मा डव्य ७. वशिष्ट । इनके उदाहरण– (१) काश्यप–बावीस तीर्थंकर(बीसवाँ, इक्कीसवाँ छोडकर) । (२) गौतम–दो तीर्थंकर एव इन्द्रभूति आदि तीन गणधर । (३) वत्स–शय भवाचार्य । (४) कुत्स–शिवभूति आदि । (५) कौशिक–रोहगुप्त निह्नव आदि । (६) मा डव्य–म डु ऋषि के व शज । (७) वशिष्ट–छट्ठा सातवाँ गणधर । ४९ गोत्रों के नाम में ७ तो ये ही है, ४२ नाम सूत्र में अन्य भी दर्शाये गये हक्त ।

प्रश्न–६ : क्या आयुष्य टूट सकता है ?

उत्तर– आयुष्य कर्म दो प्रकार का बा धा जाता है–सोपक्रमी और निढपक्रमी । (१) सोपक्रमी का मतलब ही यही के कि जो कभी भी निमित्त मिलने से टूट सकता है और कोई निमित्त नहीं मिले तो पूरा भी चल सकता है । (२) निढपक्रमी का मतलब स्पष्ट है कि उसमें कोई भी निमित्त से उपक्रम से घट-वध नहीं होती है, जितना आयुष्य बा धकर जीव लाया है उतना पूरा चलेगा । वास्तव में आयु टूटने की, टूट सकने की बात सत्य है, सोपक्रमी आयुष्य टूट सकता है । वह कब टूटता है, इसकी एक सीमा है कि जितना सोपक्रमी आयु जीव बा ध कर लाया है उसका दो तृतीयाँश भोग लेने के, व्यतीत हो जाने के बाद ही कभी भी

आयु टूट सकता है, उसके पहले नहीं टूटता है । यथा– कोई व्यक्ति ९० वर्ष का सोपक्रमी आयुष्य बा धकर लाया है तो वह ६० वर्ष की उम्र तक नहीं टूटेगा । उसके बाद कभी भी कोई भी निमित्त मिले तो टूट सकता है और निमित्त नहीं मिले तो वह सोपक्रमी आयुष्य भी पूरा ९० वर्ष तक चल जाता है । यहाँ सूत्र में सोपक्रमी आयुष्य के टूटने के ७ कारण दर्शाये हक्त– (१) परिणामों से– भय से या तीव्र रागद्वेष के परिणामों से । तीव्र हर्ष-शोक के परिणामों से । (२) शस्त्र आदि के निमित्त से, आत्मघात करने के प्रयत्न से । (३) आहार से– अतिआहार से या आहार त्याग से । (४) रोग की तीव्र वेदना से । (५) गिरने पडने या टक्कर लगने से । (६) सर्प काटने से या अन्य हिंसक पशु के भक्षण आदि से । (७) श्वास निरोध करने से । अन्य भी अनेक प्रकार हो सकते है उनका इन ७ में समावेश समझ लेना चाहिये ।

निढपक्रमी आयुष्य बा धकर लाने वाले का आयुष्य ऐसे किसी भी निमित्तों से नहीं टूटता है । कभी काकताली न्याय लग सकता है यथा गजसुकुमाल मुनि । यहाँ विशेष यह ज्ञातव्य है कि चरम शरीरी जीव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि ६३ श्लाघा पुढष, युगलिक मनुष्य, देवता, नारकी ये सभी निढपक्रमी आयुष्य वाले ही होते हक्त । उसके सिवाय के जीव दोनों प्रकार के आयुष्य वाले होते हक्त । उनमें कौन कैसा आयुष्य लाया है यह छद्मस्थ के जानने का विषय नहीं है, विशिष्ट ज्ञानी, केवलज्ञानी ही उसे जान सकते हक्त ।

प्रश्न–७ : निह्नव किसे कहते हक्त ? वे कौन और कब हुए हक्त ?

उत्तर– जो तीर्थंकरों द्वारा प्रढपित तत्त्व को अपने मिथ्याभिनिवेष के वशीभूत होकर नहीं स्वीकारे, उसे मिथ्या कहे या उसमें अपनी बुद्धि तर्क के अह से हीनाधिक प्ररूपण करे, तीर्थंकर की या आगम गु थन करने वाले गणधरों की या आचार्यों की भूल होना कहे और अपने मनमानी प्रढपण, प्रचार, मतप्रवर्तन एव स्वच्छ द आचरण करे, ऐसे लक्षणों वाला निह्नव कहा जाता है । इस स्थान के सूत्र–१३१ में ऐसे ७ निह्नवों के नाम, उनकी मान्यता और उनमें निह्नवता उत्पत्ति का या प्रवर्तन स्थल का नाम सूचित किया है । व्याख्या में उन सातों निह्नवों की घटना कथा का विस्तृत वर्णन है ।

सात निह्नव–

नाम	विषय	समय
१ जमाली	कार्यप्रतिक्षण नहीं होता	भगवान महावीर के केवलज्ञान के १४ वर्ष बाद
२ तिष्यगुप्त	जीव के चरम प्रदेशमें ही जीवत्व	वीरनिर्वाण १४ वर्ष बाद
३ आषाढ	सबकुछ अव्यक्त	वीरनिर्वाण २१४ वर्ष बाद
४ अश्वमित्र	सबकुछ क्षणिक विनाशी	वीरनिर्वाण २२० वर्ष बाद
५ ग ग	एक समय में दो क्रिया का अनुभव	वीरनिर्वाण २२८ वर्ष बाद
६ षडुलूक (रोहगुप्त)	जीव,अजीव,मिश्र तीन राशि	वीरनिर्वाण ५५४ वर्ष बाद
७ गोष्ठा-माहिल	कर्मबद्ध नहीं, स्पृष्टमात्र	वीरनिर्वाण ५८४ वर्ष बाद
वीरनिर्वाण और गणधरों के निर्वाण के बाद हुए श्रमणों के ये नाम देवर्द्धिगणि द्वारा किये गये लेखन के समय इस शास्त्र में सपादित हुए होंगे, ऐसा समझ लेना चाहिये ।		

सातों के मत और समन्वय–समाधान– (१) कार्य मात्र अ त में होता है करते समय कार्य नहीं होता है, पूर्ण हो जाने पर कार्य होता है, यथा– वस्त्र बनाना चालु है तब तक वस्त्र नहीं होता है पूरा बनने पर वस्त्र कहा जाता है, अत: अ त में ही कार्य होता है यह सत्य है । जब कि भगवान का सिद्धा त है किये जाने के प्रत्येक क्षण देशत: वह कार्य होता ही है उस लक्षित स पूर्ण कार्य की पूर्णता अ त में होती है तो अन्य समयों में भी कार्य का अ शत: होना स्वीकारना ही चाहिये । अ शत: होगा तभी पूर्णता को प्राप्त होगा । (२) जीव के अ तिम प्रदेश शरीरमें से निकलते हक्त तब तक उसमें हलन-चलन जीवत्व देखने में आता है उसे देख कर कोई मान ले कि वास्तव में अ तिम प्रदेशों में ही जीवत्व है अन्य में नहीं, क्यों कि उनके निकल जाने पर भी अ तिम प्रदेशों के अस्तित्व से जीवत्व लक्षण दिखते हक्त; तो यह प्ररूपणा मात्र एका तिक और मूर्खता पूर्ण एव अज्ञान-मिथ्यात्व के नशे का कथन है । सभी आत्मप्रदेशों में और स पूर्ण शरीर में व्याप्त जीव में सर्वत्र चेतनत्व जीवत्व शक्ति होती है इसलिये

कोई भी चरम मध्यम आदि के प्रदेश हों, वे जब तक शरीर में रहेंगे तब तक उन सभी से चेतनत्व गुण हलन-चलन आदि रहेंगे ।

(३) सब कुछ स देहशील है, कौन साधु है और कौन देवता आकर साधु के शरीर में है, इसका निर्णय नहीं हो सकता । अत: कोई किसी को साधु समझना व दन करना योग्य नहीं है । इसका समाधान यह है कि कभी कोई घटना घटित हो जाय, धोखा हो जाय तो भी सावधानी वर्ती जाती है कि तु सारा व्यवहार ब द नहीं कर दिया जाता है । यथा– कभी कोई भोजन से विष परिणमन हो जाय या कोई व्यापार में नुकशान धोखा हो जाय तो सारे मानव सभी व्यापार या खाना ब द नहीं करेंगे । एक नौकर विश्वास जमाकर धोखेबाजी करके भाग जाय तो कभी कोई नोकर रखे ही नहीं ऐसा नहीं होता कि तु सावधानी अनुभव बढाकर सभी कार्य यथायोग्य किये जाते हक्त। अत: एक देव साधु रूप में ६ महीना शरीर में रह गया तो सभी साधुओं का व्यवहार ब द कर देना, सदा स देहशील ही बने रहना, ऐसा करना उचित नहीं है ।

(४) प्रत्येक वस्तु की पर्याय क्षण विनाशी होती है, परिवर्तित होती रहती है, उसे उतने रूप में ही न मान कर प्रत्येक द्रव्य को ही क्षण विनाशी मान लेना कि पर्याय भी तो द्रव्य की ही है, अत: सभी द्रव्य (पदार्थ)क्षणविनाशी है और दूसरे नूतन उत्पन्न हो जाते है । यह भी मिथ्यात्व-अज्ञान के उदय के जोर से भ्रमित मान्यता है । वास्तव में पर्याय का स्वरूप अलग है, द्रव्य का अस्तित्व अलग है । यथा– सोने के एक आभूषण से दूसरा तीसरा आभूषण बना लेने पर भी सोना विनष्ट नहीं होता है । वैसे ही पर्याय के बदलने पर, नष्ट होने पर भी द्रव्य शाश्वत या दीर्घ पर्याय में रह सकता है, उसका क्षण में नष्ट होना एका त रूप से मान लेना योग्य नहीं है । यथा– कोई साधु बना तो एक समय बाद उसका साधुत्व नष्ट नहीं होगा, जीवनभर भी उसका साधुत्व रहता है कि तु उसकी पर्याय, स्वरूप परिवर्तित होते रहते हक्त । इस निह्नव की मान्यतानुसार तो दूसरे समय कोई साधु ही नहीं रहता है । वास्तव में वैसा मानना अनुभव या व्यवहार से विरूद्ध होता है ।

(५) एक समय में दो क्रियाओं का अनुभव होता है । भगवान का सिद्धा त यह है कि स्थूल रूप से भले एक समय में अनेक क्रिया होती दिखती है तथापि सूक्ष्म १ समय में आत्मा एक ही क्रिया का अनुभव

करता है। एक समय में एक ही उपयोग होता है। अपना क्षायोपशमिक ज्ञान अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त का होता है अर्थात् हमारी ग्रहणशक्ति सूक्ष्म समय की नहीं होती है, अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त प्रमाण ही हमारी उपयोग क्षमता होती है । स्वय तीर्थंकर भी अपने अवधिज्ञान से अपने वाटे वहेता के १, २, ३ समय के काल की क्रिया का अनुभव नहीं करते है, अ तर्मुहूर्त का गर्भ स हरणकार्य जो देव द्वारा क्षण मात्र में किया जाता है उसे अवधिज्ञानी तीर्थंकर जानते देखते हक्त क्यों कि वह हमारी दृष्टि से देव क्षणभर में करता है कि तु वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से अस ख्य समय देव को भी लग जाता है । अत: सार यह है कि १ समय में अनेक क्रियाएँ साथ में हो सकती है कि तु जीव को एक समय में अनुभव या उपयोग एक ही क्रिया का होता है । पानी में धूप के स्थान पर खडे व्यक्ति को गर्मी-ठ डी दोनों का अनुभव स्थूल दृष्टि से एक साथ होता है, लगता है कि तु सूक्ष्म दृष्टि से आत्मउपयोग परिवर्तित होता रहता है। अनेक सूक्ष्म अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त इकट्ठे होने पर १ सेक ड होता है ऐसा समझ लेने पर यह सहज समझ में आ सकता है कि गर्मी के आत्म अनुभूति का(उपयोग का) अ तर्मुहूर्त अलग होता हक्त और सर्दी के आत्म अनुभूति का (उपयोग का) समय अलग होता है । यथा– हम कुछ सुनने में या देखने में या बोलने में तल्लीन है तब कोई वहाँ आकर चला जावे या कुछ बोलकर ढक जावे तो हमारा ध्यान अन्य में होने से वे रूप आँखों से पसार होने पर भी, वे शब्द कान में पडते हुए भी हमें उनका कुछ भी ज्ञान नहीं होता है । वैसे ही जीव के उपयोग सूक्ष्म अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त के एक-एक वस्तु में, क्रिया में ही रहते हक्त । क्रियाएँ शरीर में, आत्मा में भले एक साथ अनेक भी चलती रहे। यथा– हम जब बोलते हक्त तब लिखते भी है, देखते भी है, सुनते भी है; इन्द्रियाँ कोई ब द नहीं हो जाती है, उस समय मु ह में खाद्यपदार्थ है तो उसका रसास्वाद भी ले रहे हक्त; फिर भी आत्मउपयोग कोई तरफ मुख्य, कोई तरफ गौण होता रहता है, जो सूक्ष्म अ तर्मुहूर्त प्रमाण १-१ विषय का ही होता है । यह स्पष्ट ध्रुव सिद्धा त जिनमत का है ।

(६) छिपकली पू छ टूट जाने पर छिपकली अपना जीव लेकर भाग जाती है तो भी पू छ में हलनचलन दिखता है, वह अजीव भी नहीं है,

जीव भी नही है अत: तीसरी वस्तु **नोजीव नोअजीव** भी है । इस तरह लोक में तीन पदार्थों की राशि है– जीवराशि, अजीवराशि और नो जीव नो अजीव राशि । यह छट्ठे निह्नव का मत है । जैन मतानुसार राशि दो ही है–जीवराशि और अजीव राशि ।अजीवराशि में जीव रहित समस्त पुद्‌गल और धर्मास्तिकाय आदि तत्त्व ग्रहित होते हक्त । जीव राशि में शरीर युक्त स सारी और शरीर मुक्त सिद्ध सभी का समावेश है तथा छिपकली के आत्मप्रदेश, कटी हुई पू छ में भी स लग्न ही रहते है । जब तक वे स लग्न आत्मप्रदेश पूंछ में रहते हक्त तब तक वह हिलती है । थोडे समय बाद वे समस्त आत्मप्रदेश छिपकली के मूलशरीर में चले जाते है तब वह विभाग पूर्ण जीवरहित अजीव राशि में गिना जाता है, अत: तीसरी राशि कहना योग्य नहीं है ।

(७) जिस तरह १. सूखी दिवाल पर सूखी रेत लग जाय वह शीघ्र हवा लगने आदि से दूर हो जाती है वैसे ही कुछ कर्म आत्मा को अल्प स्पर्श करते हक्त वे शीघ्र नष्ट हो जाते हक्त । २. गीली दिवाल पर सूखी रेत लग जाय तो थोडे समय बाद या थोडे श्रम से निकल जाती है वैसे कुछ कर्म आत्मा को स्पर्श करते हुए ब धते है वे थोडे समय बाद काला तर से क्षय हो जाते हक्त । ३. जिस प्रकार गीली मिट्टी गीली दिवाल पर जोर से फेंकने पर चिपक जाती है और सूखने पर दिवाल से सहज नहीं निकलती है वैसे ही कुछ कर्म आत्मप्रदेशों को स्पर्श करते हुए गाढ रूप से ब ध जाते है वे दीर्घकाल के बाद स्थिति पूर्ण होने पर क्षय होते हक्त । इस प्रकार सभी तरह के कर्म, स्पर्श मात्र से आत्मा के साथ लगते हक्त । आत्मा के सभी प्रदेशों में एकमेक रूप से ब धते नहीं हक्त, यह सातवें निह्नव का कथन है । वास्तव में कर्म आत्मा के साथ सभी प्रदेशों में एकीभूत रूप में ब ध कर रहते है तथापि उनका अपना अस्तित्व अलग रहता ही है, यथा– लोहे का गोला अग्नि में तपाकर लाल-चोल कर दिया हो, लोहे के कण-कण में अग्नि एक-मेक हो गई हो फिर भी यथासमय लोहा और अग्नि अलग हो सकते हक्त । लोहपिंड में से अग्नि समाप्त हो जाती है वैसे ही कर्म आत्माप्रदेशों में एकमेक होकर रहते हुए भी एक समय स्थिति पूर्ण होने पर अलग हो जाते हक्त और एक दिन स पूर्ण कर्मों का क्षय होकर कर्म रहित आत्मा सिद्ध स्वरूपी बन जाती है; जिस तरह कि स पूर्ण अग्नि शा त हो जाने

पर शुद्ध लोहे का गोला अपने अस्तित्व में अग्नि रहित दशा में हो जाता है । इन सात निह्नवों में से जमाली, रोहगुप्त और गोष्ठामाहिल ये तीनों क्रमश: पहले छट्ठे सातवें निह्नव जीवनभर अपने आग्रह युक्त मत में रहे थे । शेष चार निह्नवों ने किसी के द्वारा बोध पाकर आलोचना-प्रायश्चित्त करके भगवान के शासन का स्वीकार कर लिया था ।

आज भी जो लोग अपनी बुद्धि का या तर्क का अह करते हुए जिनेश्वर भाषित आगमानुमत कोई भी तत्त्व या सिद्धा त को अपनी स्वच्छ द मति से अस्वीकार करते हत्त और तदनुसार प्ररूपण करते हत्त, वे भी निह्नव की कोटी में गिने जाने के योग्य बनते हत्त । यथा- १. कोई कहे कि- पानी, अग्नि को जीव कहना अयथार्थ है । २. कोई निर्जीव पानी आदि पुन: सचित्त होने की उपेक्षा करते हुए कहे कि मुर्दे भी कभी जीवित होते हत्त ? अर्थात् नहीं होते । तो अचित्त पानी कभी भी सचित्त नहीं हो सकता ।उसे सचित्त कहना गलत है । ३. कोई कहते हत्त कि स यम साधना से केवली बन जाने पर उनको सभी धर्म तत्त्वों का ज्ञान भले मानो पर तु सारी दुनिया के कीडों को देखने गिनने की बात व्यर्थ है, सारे जगत के पापियों को देखने से क्या मतलब है, ऐसा सब खराब अच्छा जानने देखने से केवली को कोई मतलब नहीं है और वैसा सर्वज्ञ का अर्थ करना वह भी मात्र अतिशयोक्ति है, इत्यादि । आज के अपने को ज्यादा विद्वान मानने वाले आगम तत्त्वों की उपेक्षा करके स्वमति के अह से ज्यों त्यों प्ररूपणा करे तो वह उनकी अज्ञानदशा ही समझनी चाहिये, वे लोग निह्नव की कोटि में गिने जावेंगे । वास्तव में आगम तत्त्वों को सर्वोपरी प्रामाणिक मानकर श्रद्धापूर्वक समझने का ही प्रयत्न करना चाहिये पर तु खोटी मनमानी प्ररूपणा के मीठे लुभावने चक्कर में नहीं आना चाहिये । सात निह्नवों की घटनाओं का कथानक अन्यत्र से जानना चाहिये ।

प्रश्न-८ : अन्य भी और कौन-कौन से विषयों का यहाँ निरूपण है ?

उत्तर- सात की स ख्या को लेकर अन्य आगमों में आये हुए और नहीं आये हुए अनेक विषय इस स्थान में स ग्रहित हत्त, वे इस प्रकार हत्त- **(१)** आचारा ग द्वितीय श्रुतस्क ध में प्रार भ के सात अध्ययन उद्देशक युक्त है, उन्हें यहाँ सूत्र-१०में सात महा अध्ययन कहा है । तदन तर आठ से चौदह तक के अध्ययन, उद्देशक रहित छोटे हत्त, उन्हें सात छोटे

अध्ययनों की समूह रूप सप्ततिका कहा गया है और प्रत्येक अध्ययन को प्रथम आदि सप्ततिका या सत्तिकय कहा जाता है । ये विभाग रूप कथन न दीसूत्र और समवाया ग सूत्र के आचारा ग परिचय में नहीं है । वहाँ द्वितीय श्रुतस्क ध के सीधे १६ अध्ययन मात्र कहे हत्त, सप्ततिका, सत्तिकय या चूलिका रूप कोई कथन वहाँ दोनों शास्त्र में नहीं है । इसका तात्पर्य यह है कि आचारा ग सूत्र द्वितीय श्रुतस्क ध के उपलब्ध विभाग वर्णन न दीसूत्र की रचना के बाद की रचना-स कलना रूप नामकरण है, ऐसा स्वीकारना चाहिये । **(२)** सात ही नरक का पृथ्वी-पिंड अलग-अलग है । प्रत्येक के नीचे घनोदधि है । उस सातों के नीचे घनवाय है । सातों घनवाय के नीचे तनुवाय है और सातों तनुवाय के नीचे आकाश है । सातवीं नरक के आकाश के बाद लोक का अ त हो जाता है फिर वहाँ से अलोक का आकाश प्रार भ हो जाता है ।

(३) सात पुद्गल स स्थान- दीर्घ, ह्रस्व, गोल, त्रिकोण, चोकोन, जाडा-घनाकार, परिम डल(चूडी आकार) । **(४)** सात नय-नैगम, स ग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एव भूत । **(५)** प्रथम विमलवाहन कुलकर के समय सात प्रकार के वृक्ष(कल्पवृक्ष) मनुष्यों के उपयोग में आते थे । जब कुल दस वृक्षों में से ४ प्रकार के वृक्ष नहीं रहते हत्त ६ प्रकार के ही शेष रहते हत्त । तब सातवें प्रकार के वृक्ष की उत्पत्ति स्वत: या देवकृत होती है जिससे नष्ट हुए चार प्रकार के वृक्षों के प्रयोजन की हीनाधिक पूर्ति होती है । व्याख्या में सातवें प्रकार के वृक्षों को देवाधिष्ठित कहा गया है । इसीलिये उस एक वृक्ष के लिये ही सूत्र में कल्पवृक्ष शब्द का प्रयोग किया गया है । विच्छिन्न गये ४ वृक्षों के नाम- १. त्रुटिता गा-वाजि त्र देने वाले । २. दीपा गा-दीपकवत प्रकाश करने वाले । ३. ज्योतिर गा-सूर्य सम प्रकाश, अग्नि सम उष्णता देने वाले। ४. गेहागारा-घर के रूप में उपयोग में आने वाले।

(६) दुस्समकाल के ७ लक्षण- १. अकाल वृष्टि २. काल में अनावृष्टि ३. असाधुओं की विशेष पूजा प्रतिष्ठा । ४. साधुओं का अल्प सन्मान । ५. गुढजनों के प्रति लोगों का अभाव या विरोधभाव । ६. लोगों में मानसिक दु:खों की वृद्धि, वचन व्यवहार स ब धी पीडा की वृद्धि-वाचिक दु:ख । इसके प्रतिपक्षी सात लक्षण सुस्सम(उन्नत) काल के समझने चाहिये ।

(७) ब्रह्मदत्त बारवें चक्रवर्ती का शरीर सात धनुष ऊँचा था, ७०० वर्ष की उम्र थी और मरकर सातवीं नरक में उत्पन्न हुआ ।(८) दर्शन सात– सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, मिश्रदर्शन, चक्षु आदि ४ दर्शन ।

(९) विकथा सात– १-४. स्त्री आदि चार । ५. कढणरस युक्त कथा या वार्तालाप, ६-७. दर्शन और चारित्र के विनाशकारी कथा । दर्शन, चारित्र में ठेस पहुँचे, स्खलना आवे ऐसी कथाएँ चर्चाएँ । इन कथाओं के करने वालों की स गति त्यागने की प्रेरणा भी इस सूत्र से समझ लेनी चाहिये। (१०) शक्रेंद्र के **वढण** लोकपाल के और ईशानेन्द्र के **सोम** और **यम** लोकपाल के सात-सात अग्रमहिषी है ।

(११) न दीश्वर द्वीप के अ दर की तरफ ७ द्वीप है और सात समुद्र हक्त । १. ज बुद्वीप, २. धातकी ख ड द्वीप, ३. पुष्करवर द्वीप, ४.वढणवर द्वीप, ५. क्षीरवर द्वीप, ६. घृतवर द्वीप, ७. क्षोदवर द्वीप । १. लवण समुद्र, २. कालोदधि समुद्र, ३. पुष्करोद, ४. वढणोद, ५. क्षीरोद, ६. घृतोद, ७. क्षोदोद समुद्र । ये ७ द्वीप ७ समुद्र क्रमशः द्वीप के बाद समुद्र और समुद्र के बाद द्वीप, इस प्रकार रहे हुए हक्त ।

(१२) **वचन के ७ प्रकार–** १. आलाप–स्पष्ट बोलना, २. अनालाप– अल्प अथवा अपूर्ण बोलना, ३. उल्लाप–दीनतायुक्त बोलना, ४. अनुल्लाप–बार बार बोलना, ५. स लाप–परस्पर बोलना, ६. प्रलाप– निरर्थक बोलना, बकवास करना, ७. विप्रलाप– विढद्ध वचन बोलना, विविध प्रकार से बकवास करना ।(१३) बेइन्द्रिय जीवों की प्रमुख कुलकोटी ७ लाख है, उनकी योनि दो लाख हक्त ।

इसके अतिरिक्त अन्य आगमों में आये विषय इस प्रकार हक्त– अ डज आदि ७ योनि, उनकी गतागत, आचार्य, आहारादि स ब धी पडिमा, भिक्षु पडिमा, नरक के नाम गोत्र, वायु के प्रकार, भय, स्वर विस्तार, आसन, क्षेत्र, द्वीप, पर्वत, नदी, कुलकर, चक्रवर्ती के १४ रत्न, जीवभेद, कर्म, ज्ञान की क्षमता, स यम-अस यम, आर भ, धान्ययोनि, देवों की स्थिति आदि, सात श्रेणी, देवों की सेना, सात विनय विस्तार, समुद्घात, नक्षत्र, पुद्गल आदि । इनका वर्णन विस्तार यथास्थान देखेंगे ।

स्थान-८

प्रश्न–१ : इस स्थान का क्या परिचय है ?

उत्तर– इस स्थान में ८ की स ख्या से स ब धित अनेक विषयों का स कलन है । उद्देशक विभाग कोई नहीं है । कुल १२२ सूत्रों में से अन्य आगमों में वर्णित विषय अनेक है तथापि किसी आगम में नहीं आये हो ऐसे नूतन विषय भी हक्त ।

प्रश्न–२ : अपने छोटे या बडे गुप्त दोषों की आलोचना-प्रायश्चित्त का महत्त्व किस प्रकार समझाया गया हक्त ?

उत्तर– सातवें स्थान(अध्याय) में दोषो के आलोचना-प्रायश्चित्त करने या नहीं करने की अ तर मानस स्थिति दर्शाई गई है । वही कथन यहाँ आठ की स ख्या से किया गया है ।विशेष में यहाँ यह बताया गया है कि मेरे गुढ-आचार्य को अवधिज्ञान उत्पन्न हो जायेगा तो वे मेरे दोष को जान लेंगे ।अतः मुझे स्वतः आलोचना कर लेना श्रेष्ठ है, गुप्त तो रहने वाला नहीं है ।

आठ-आठ कारण आलोचना करने, नहीं करने का कथन करने के बाद उन दोनों की आ तर स्थिति को दृष्टा त द्वारा प्रगट करके भावी परिणाम भी दिखाया गया है यथा–(१) दोष को छिपाने वाला– जिस प्रकार लोक की अनेक प्रकार की अग्नि, अग्नि की बडी-बडी भट्ठियाँ आदि सदा अ दर ही अ दर जलती रहती है उसी तरह वह दोषी भीतर में शोक, भय, खेद आदि से जलता ही रहता है । कोई कुछ धीमे से बाते करते हों तो श कित रहेगा कि ये मेरी बाते तो नहीं करते ?

यहाँ से बिना शुद्धि किये मर जाने पर वह बहुत सामान्य देव बनता है । वहाँ आभियोगिक देव भी उसका सन्मान नहीं रखते अपितु समय-समय पर वह तिरस्कृत होता है या कुछ भी बोले तो ४-५ देव उठकर कहे– वाह-वाह रहने दो आर्यपुत्र ! आप अपना बकवास ब द करो, अब ज्यादा मत बोलो, चुपचाप बैठ जाओ, इत्यादि ।

वहाँ से भी मरकर मानवलोक में दीन दरिद्र, भिखारी आदि हीन कुलों में जन्म लेकर कुरूप, हीनस्वर, अनादेय वचन वाला होकर सन्मान के स्थान पर तिरस्कार पाता है ।

(२) इसके प्रतिपक्ष में वर्णन करते हुए बताया गया है कि अपने दोषों के लिये समय पर सावधान होकर आलोचना-प्रायश्चित्त करके सरलता, नम्रता, लघुता धारण करने वाला साधक आत्मशुद्धि के साथ काल करके देवलोक में उच्च स्थान को प्राप्त कर महर्द्धिक देव बनता है । दैवी सुखों को भोगते हुए वह अत्यधिक सन्मान प्राप्त करता है । वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर मानव जन्म प्राप्त करता है तब यहाँ भी ऋद्धि स पन्न श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होता है और सुखपूर्वक सन्मान युक्त जीवन व्यतीत करता है । इस तरह उभय प्रकार की भावी स्थिति बताकर यही समझाया गया है कि जीवन में हुई स्खलनाओं को ज्यादा छिपाने का प्रयत्न न करते हुए साधक को पवित्र भावों के साथ आलोचना प्रायश्चित्त शुद्धि कर लेनी चाहिये ।

प्रस्तुत में आये कुछ कठिन और सरीखे शब्दों के अर्थ इस प्रकार है– **आउक्खएण** – आयुष्य कर्म के प्रदेशों का क्षय । **भवक्खएण** – भव योग्य गति, जाति आदि अनुब धों का क्षय । **ठिइक्खएण** – आयुष्य की स्थिति ब ध का क्षय । **अ तकुल**–क्षुद्र कुल-म्लेच्छकुल । **प तकुल**– चा डाल वगेरे। **तुच्छकुल**– छोटे घर, छोटा परिवार । तुच्छ विचारवाला । **दरिद्रकुल**– गरीब निर्धन कुल । **भिक्खागकुल**– मा ग कर खाने वाले कुल । **किवण कुल**– खान-पान, रहन-सहन में क जूसी रखने वाले कुल । **दिव्यप्रभा**– देवस ब धी महात्म्य । **दिव्य छाया**– सु दर शरीराकृति । **दिव्य अर्चि**– शरीर से निकली किरणे (तेजोमय ज्योति) । **दिव्य तेज**– शरीर की रोनक का ति । **दिव्य लेश्या**– शुक्ल आदि लेश्या । **उज्जोवेमाणा**– स्थूल वस्तुओं को प्रकाशित करने वाले । **पभासेमाणे**– सूक्ष्म वस्तुओं को भी उद्योतित करने वाले ।

प्रश्न–३ : आयुर्वेद शास्त्रों के विषय में यहाँ क्या दर्शाया है ?

उत्तर– यहाँ सूत्र–३० में बताया गया है कि आयुर्वेद के आठ शास्त्र होते हक्त–(१) कुमारभृत्य शास्त्र– इसमें बालकों की सार-स भाल और बालरोगों की चिकित्सा बताई गई है । (२) कायचिकित्सा शास्त्र– इसमें बुखार, कोढ वगेरे शारीरिक रोगों का, कान, नाक, मुख के रोगों का अनेकविध इलाज बताया गया है । (३) शालाक्य शास्त्र– इसमें लोह शलाका गर्म करके उसके द्वारा इलाज करने का विधान है । (४) शल्यहत्या शास्त्र– इसमें शरीर में लगे तीर, भाला आदि का उपचार

एव ओपरेशन वगेरे शल्य चिकित्सा का वर्णन है । (५) ज गोली शास्त्र– इसमें सर्प, बिच्छु आदि के विष स ब धी चिकित्सा का वर्णन है । (६) भूतविद्या शास्त्र– इसमें प्रेतात्मा के कष्ट स ब धी चिकित्सा, उपसर्ग के उपशमन शा तिकर्म आदि का वर्णन हक्त । (७) क्षारत त्र शास्त्र– इसमें भस्म, पिष्टी आदि द्वारा शारीरिक बलवृद्धि की चिकित्सा बताई है । (८) रसायन शास्त्र– इसमें रसधातु या कल्प, परपटी आदि चिकित्सा का वर्णन हक्त । ये ग्र थ वैद्यों के पास, बडे पुस्तक विक्रेताओं के पास एव विशाल सार्वजनिक पुस्तक भ डारों में मिल सकते हक्त ।

प्रश्न–४ : ५६ दिशाकुमारी देवियाँ कौन सी है ,उनका निवास कहाँ है ?

उत्तर– ढचकवर द्वीप में विस्तार की अपेक्षा बीच में ढचकवर पर्वत चूडी के आकार गोल है, उसमें चारों दिशाओं में आठ-आठ कूट पर आठ-आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने भवन में रहती है । उन सब की १ पल्योपम की उम्र होती है । उसी पर्वत की चार विदिशाओं में एक-एक यों चार तथा पर्वत की चौडाई के मध्य चारों दिशाओं में एक-एक यों दोनों मिलकर आठ होती है । इस प्रकार ८×५=४० दिशाकुमारी देवियाँ ढचकपर्वत पर होती है । आठ ऊर्ध्वलोक में मेढपर्वत के न दन वन में कूटों पर अपने भवन में रहती है और ८ अधोलोक में अपने भवनों में होती है। यों कुल– ४०+८+८=५६ दिशाकुमारी देवियाँ कही गई है । दिशाकुमारी भवनपति की जाति की होने से तथा दिशाओं विदिशाओं में निवास होने से ये दिशाकुमारी देवियाँ कही जाती है । इनमें से किसी को विद्युत्कुमारी देवियाँ भी पूर्वस्थान में कही गई है ।

प्रश्न–५ : दीक्षा लेने के बाद आत्मोन्नति के लिये एव श्रेष्ठतम श्रामण्य अवस्था प्राप्त करने ने लिये श्रमणों को क्या क्या ध्यान रखना चाहिये?

उत्तर– उन्नत स यम जीवन की आराधना और श्रेष्ठ श्रामण्य भाव की प्राप्ति के इच्छुक श्रमणों के लिये अपनी आत्मा को, स यम को स स्कारित एव पुष्ट करने के स्थान यहाँ सूत्र १०६ में इस प्रकार दर्शाये हक्त– **१.** अश्रुतपूर्व धर्म विषयों को सुनने में सदा तत्पर रहना चाहिये । **२.** सुने हुए तत्त्वों में अवगाहन करने में एव विशिष्ट अर्थ, परमार्थ, रहस्य, चर्चा, विचारणा सहित समझने में तत्पर रहना चाहिये । **३.** स यम तथा विवेक के द्वारा नये कर्मों के आगमन का अधिकतम निरोध करना चाहिये अर्थात् नये कर्मब ध नहीं होवे ऐसा सदा ध्यान रखना चाहिये ।

कषाय और योग प्रवर्तन में पूर्ण सावधान रहना तथा इन्द्रिय विषयों में राग-द्वेष से बचते हुए तटस्थ एव विरक्त भावों से रहना चाहिये । ४. तपस्या के द्वारा या स्वाध्याय-ध्यान के द्वारा पुराने कर्मों का क्षय करने के लिये तत्पर रहना चाहिये अर्थात् क्षमता अनुसार सदा तपस्या की वृद्धि करते रहना चाहिये । ५. पिछडे हुए शिष्यों या साधर्मिकों के ऊँचे उठने में सदा सहायभूत बनते रहना चाहिये । ६. नवदीक्षित को सर्व प्रकार से शिक्षित करने में पूर्ण उद्यमव त और कर्तव्यनिष्ठ रहना चाहिये । ७. बिमार, वृद्ध, अशक्त श्रमणों की सेवा-परिचर्या, ग्लानि किये बिना एव ढचि-उत्साहपूर्वक करने का मानस रखना चाहिये ।८. साधर्मिकों में कहीं भी कषाय-क्लेश, अशा ति, विवाद, असम जस आदि दिखे तो उनका विचक्षणता, निष्पक्षता एव हितभावों से कुशलता पूर्वक निवारण करने में तत्पर रहना चाहिये । इस प्रकार अपनी आत्मा का स यम अभ्यास बढाने वाला और गुणों की आत्मा में पुष्टी करने वाला साधक स्व-पर कल्याणकर एव जिनशासन का महान उपकारक बनकर, यशस्वी स यम जीवन से आराधक बनता है यावत् मुक्ति का अधिकारी बनता है ।

प्रश्न–६ : चैत्य वृक्ष का क्या मतलब है ? वे कहाँ होते हक्त ?

उत्तर– आगमों में दो प्रकार से चैत्यवृक्ष का वर्णन है– (१) तीर्थंकरों को जिस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान-केवलदर्शन की उत्पत्ति होती है उसे चैत्यवृक्ष कहा गया है, ये २४ तीर्थंकरों के २४ चैत्यवृक्ष अलग-अलग जाति के समवाया ग सूत्र में बताये हक्त । (२) प्रस्तुत में दूसरे प्रकार के चैत्यवृक्ष व्य तर देवों की अपेक्षा कहे गये हक्त । ये वृक्ष देवों के चित्त को प्रसन्न करने वाले, उनकी अपनी पस द के अलग-अलग प्रकार के होते हक्त । यथा– १. पिशाच के कदम्ब वृक्ष, २. यक्ष के वट वृक्ष, ३. भूत के तुलसी, ४. राक्षस के क डक, ५. किन्नर के अशोकवृक्ष, ६. कि पुढष के च पक, ७. महोरग के नागवृक्ष, ८. ग धर्व देवों के तिंदुकवृक्ष । इस प्रकार यहाँ आठ व्य तर जाति के देवों के प्रिय वृक्षों को चैत्यवृक्ष कहा गया है । ये देव मनुष्य लोक में भ्रमण करते हुए इन वृक्षों पर अल्प कालीन निवास करते हक्त और मानव लोगों से अपनी कुतूहल प्रकृति का पोषण करते रहते हक्त । जैसे बच्चे कुछ समयसर खेलकूद मनोर जन के लिये क्रीडास्थानों में जाते हक्त, भ्रमण करते हक्त, मनोविनोद करते हक्त

और फिर अपने घर आ जाते हक्त वेसे ही ये देव भी मानव लोक में पुनः पुनः आते रहते हक्त । इन सभी देवों को अवधिज्ञान तो होता ही है कि तु अल्प सीमा वाले अवधिज्ञानी और अल्प उम्र वाले देव ही कुतूहल वृत्ति से मानवलोक में भ्रमण करते हक्त अर्थात् १०-२०-४०-५०-६०-८० हजार वर्ष की उम्र वाले । अधिक उम्र वाले और अधिक सीमा के अवधिज्ञान वाले निष्कारण यहाँ मानवलोक में नहीं भटकते हक्त । जैसे कि बालवय के बाद व्यक्ति खेलकूद मनोर जन से निवृत्त हो जाते हक्त और अपने स सार व्यवहार में लग जाते हक्त । वैसे ही प्रौढ उम्र के देव ग भीरता से अपने स्थान में प्राप्त सुखभोगों में लीन रहते हक्त ।

प्रश्न–७ : इस स्थान में अन्य भी किन-किन विषयों का निरूपण हक्त ?

उत्तर– उक्त प्रश्नोत्तरों के अतिरिक्त यहाँ स केत रूप में अनेक विषय आठ की स ख्या से दर्शाये गये हक्त तथा अन्य आगमों, स्थानों में कहे गये विषय भी आठ की स ख्या के अ तर्गत यहाँ समाविष्ट किये गये हक्त, यथा– **(१)** आठमद– जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपमद, श्रुत-मद, लाभमद, ऐश्वर्यमद । **(२)** अक्रियावादी आठ मत– १. अद्वेतवाद– सबकुछ एक ब्रह्म ही है बाकी सब जगत मिथ्या है । २. द्वेतवाद– एक को भी अनेक मानने वाले सामान्य धर्म का निषेध करके विशेष-धर्मों को मानने वाले ।३. मितवादी– आत्मा को परिमित मानने वाले । स ख्या से भी और अवगाहना से भी त दुल प्रमाण, अ गुष्ट प्रमाण आदि मानने वाले । ४. निर्मितवादी– ईश्वर कर्तव्य सृष्टि को मानने वाले । ५. सातावादी– सुख से सुख मिलता है, अतः खाओ पीओ मोज करो, सुख से रहो; ऐसी मान्यता वाले । ६. समुच्छेदवादी– क्षणिकवादी, सभी वस्तु दूसरे क्षण बदल जाती है, ऐसा मानने वाले । वास्तव में वस्तु नहीं पर्याय बदलती है ।७. नित्यवादी– सब कुछ अविनाशी है ऐसा मानने वाले । ८. असत्परलोकवादी–परलोक या मोक्ष कुछ भी नहीं मानने वाले ।

(३) आठ प्रकार के निमित्त शास्त्र–१. भौम–भूमिस ब धी–शुभाशुभ लक्षण बताने वाले । २. उत्पाद–उपद्रव, अशुभ लक्षणों का शुभाशुभ फल बताने वाले । ३. स्वप्न–विविध स्वप्न स ब धी फल दर्शाने वाले । ४. अ तरिक्ष– आकाश में होने वाले लक्षणों, परिवर्तनों का शुभाशुभ फल बताने वाले तथा च द्र ग्रह नक्षत्र और उनके योग स ब धी शुभाशुभ

फल बताने वाले । ५. अ ग- शरीर के अ गोपा ग के आकार से शुभाशुभ परिणाम बताने वाले ।६. स्वर- व्यक्ति या प्राणी के उच्चारण से शुभा-शुभ परिणाम बताने वाले । ७. लक्षण- हाथ-पग की रेखाओं आदि से परिणाम बताने वाले । ८. तिल, मसा आदि अनेक शरीर चिह्नों से परिणाम बताने वाले । ये आठ महानिमित्त शास्त्र कहे गये हक्त ।

स यम साधना में ये मात्र ज्ञेय तत्त्व अनुभव वृद्धि एव साधु स घ की सुरक्षार्थ उपादेय हक्त । लौकिक ढचि से इन शास्त्रों के ज्ञान उपयोग में जाना श्रमण जीवन में निषिद्ध कहा है । क्यों कि स यम जीवन में स वर निर्जरा और आत्मकल्याण साधना की ही मुख्यता होती है ।

(४) शक्रेन्द्र-ईशानेन्द्र के आठ-आठ अग्रमहिषी होती है । **(५)** आठ महाग्रह- च द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति, अ गारक, शनिश्चर, राहु-केतु । ये नव है कि तु यहाँ आठ की स ख्या में राहुकेतु को एक में समाविष्ट किया गया है । **(६)** भरत राजा के आठ पाट तक के सभी राजा दीक्षा लेकर मोक्ष गये थे । पार्श्वनाथ भगवान के ८ गण और ८ गणधर थे । २२ वें तीर्थंकर के निर तर ८ पाट मोक्ष गये और उनके केवलज्ञान के १२ वर्ष बाद मोक्ष जाना प्रार भ हुआ था । भगवान महावीर के पास ८ राजाओं ने समय-समय पर दीक्षा ली थी, यथा- १. वीरा गद २. वीरयश ३. स जय ४. एणेयक(परदेशी राजा के पर परा के) ५.श्वेत ६. शिव ७. उदायन ८. श ख-काशीवर्धन(अलक्ष राजा) ।**श्रेणिक चारित्र** में उदायन राजा को भगवान के शासन का अ तिम मोक्षगामी राजा कहा है । यहाँ पर पद्य में होने से क्रम भेद होना शक्य है, जिससे सातवाँ नाम उदायन का कहा है और अ तिम राजा **श ख** को कहा है । इस उदायन राजा का विस्तृत वर्णन भगवती सूत्र शतक-१३ में है। आगामी प्रथम तीर्थंकर महापद्म के पास आठ राजा दीक्षित होंगे- १. पद्म २. पद्मगुल्म ३. नलिन ४. नलिनगुल्म ५. पद्मध्वज ६. धनुर्ध्वज ७. कनक रथ ८. भरत । अरिष्टनेमि भगवान के ८०० वादी स पदा थी । भगवान महावीर स्वामी के ८०० साधु अनुत्तरविमान में जाने वाले हुए ।

(७) उपमाकाल आठ- पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, पुद्गल परावर्तन, स पूर्ण अतीतकाल, स पूर्ण अनागतकाल, सर्वकाल **(८)** आठ ढचक(मध्य)प्रदेश होते हक्त- धर्मास्तिकाय के, अधर्मास्तिकाय के, आकाशास्तिकाय के और जीव के । **(९)** गति आठ-१-४. नरक

आदि चार गति ५. सिद्धगति ६.गुढगति-परमाणु आदि की स्वाभाविक गति ७. प्रणोदन गति- वायु आदि से प्रेरित गति ८. प्रागभार गति- दूसरे के दबाव से भार से जो गति, घोडा, बैल आदि की ।**(१०)** मागध देश में ८००० धनुष प्रमाण का योजन प्रचलित होता है । अन्यत्र कम ज्यादा भी प्रचलन होता रहता है ।**(११)** कृष्ण की आठ पटरानियों ने दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया था। महाविदेह क्षेत्र की आठ-आठ विजय में आठ तीर्थंकर आठ चक्रवर्ती, बलदेव- वासुदेव जन्मते हक्त । यहाँ विजयों की योग्यता की अपेक्षा कहा गया है । कि तु जन्मे हुए अनेक तीर्थंकर आदि होते हक्त। तथा प्रवर्तमान चक्रवर्ती वासुदेव-बलदेव उत्कृष्ट पदे ७-७ ही होते हक्त । तीर्थंकर मात्र उत्कृष्ट पदे ८-८ हो सकते हक्त,आठ-आठ विजयों में । **(१२)** सिद्ध शिला के आठ नाम- १. ईषत् २. ईषत्प्रागभारा ३. तनु ४. तनुतनु ५. सिद्धि ६. सिद्धालय ७. मुक्ति ८. मुक्तालय ।**(१३)** तेइन्द्रिय की ८ लाख कुलकोडी कही गई हक्त ।

इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों स्थानों में वर्णित विषय इस प्रकार हक्त- ज्ञान क्षमता, वनस्पति विभाग, आलोचक की योग्यता, प्रायश्चित्त आठ, स यम अस यम, आठ सूक्ष्म, आहार, कृष्णराजि, पूर्व वस्तु, लोका तिक, का गणिरत्न, द्वीप-समुद्र, ज बूवृक्ष, गुफा-कूट-पर्वत- विजय आदि, देवलोक, पडिमा, जीवप्रकार, ज्योतिषम डल, नक्षत्रद्वार, कर्मस्थितिब ध, पुद्गल, स्क ध इत्यादि विषयों का वर्णन अन्यत्र देखेंगे ।

स्थान-९

प्रश्न-१ : इस स्थान का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसमें ९ की स ख्या से आधारित विषयों का निरूपण है । जिसमें कितने ही नये प्रतिपादन हक्त और कितने ही अन्य शास्त्रों में वर्णित है । इस अध्ययन में विभाग रूप उद्देशक आदि नहीं है ।

प्रश्न-२ : दीक्षा देने के कुछ समय बाद कोई भी स घ वाले अपने ही साधु-साध्वी को क्यों निकाल देते हक्त ?

उत्तर- इस स्थान के प्रथम सूत्र में इस विषय में मार्गदर्शन दिया गया है कि- नव प्रकार की विपरीत वृत्ति अर्थात् असभ्यता, अविनय-आशातना

एव स्वच्छ दता करने वाले श्रमण को अपनी निश्राय से, स घ से मुक्त कर दिया जा सकता है– १. आचार्य के प्रतिकूल आचरण करने वाला। २-६. उसी तरह उपाध्याय, स्थविर, कुल (एक गुढ का समुदाय), गण (कुलों का समुदाय), स घ(गणों का समुदाय)के प्रति प्रतिकूल आचरण करने वाला, अनुशासन नहीं स्वीकारने वाला अर्थात् मनमानी अयोग्य वाचिक, कायिक प्रवृत्ति करने वाला। ७-९. ज्ञान–दर्शन–चारित्र के विपरीत वाचिक, कायिक आचरण करने वाला अर्थात् मिथ्या प्ररूपण और मर्यादा भ ग करने वाला। ये ९ प्रकार की स्वच्छ द वृत्ति वाले श्रमणों को गच्छ में रखे जाने पर वे स्व-पर-उभय का अहित करने वाले होते है एव अन्य साधुओं के लिये भी अहितकारी आदर्श रूप बनते हक्त। अत: उन्हें तटस्थ भावों से हितावह शब्दों में सूचन करते हुए कषाय रहित व्यवहार के साथ अपने स घ का निर्णय सुना दिया जाता है अर्थात् आहारादि स भोग विच्छेद का एव निश्रा से गच्छ से मुक्त करने का स्पष्टीकरण कर दिया जाता है।

उसके बाद वह असहाय श्रमण हो जाने पर या गृहस्थ बन जाने पर गुस्सा निंदा आदि कुछ भी करे तो स घ के श्रमण आदि अपने स यम भावों में, मर्यादा में रहकर उपेक्षाभाव से स्व-पर आत्मस यम सुरक्षा में रहे। उसके प्रति हीनभाव, तिरस्कारभाव, निंदाभाव और उसके अहित-कारी व्यवहारों से बचकर अनुक पा भावों एव उदार मनोवृत्ति में रहे और यों सोचे कि जिसका जैसा पुण्योदय या पापोदय होगा वैसा वह सुखी-दु:खी बनेगा, हमे उसमें कुछ भी अनुमोदक नहीं बनना है, ऐसा सोचकर उसे एव उसके व्यवहारों को विस्मृत करने का प्रयत्न कर स्व में लीन रहने का ही लक्ष्य रखना चाहिये। गिरे हुए को एक धक्का और देने का मानस नहीं रखकर उसका किसी भी प्रकार हित हो, सुबुद्धि हो यही अ तर मानस रखने का प्रयत्न होना चाहिये। पार्श्वनाथ भगवान की अनेक साध्वियाँ अपनी दूषित प्रकृति-प्रवृत्ति से गच्छमुक्त बनी थी। फिर भी वे शा ति से अन्य सज्जनों द्वारा प्रदत्त निवास स्थानों में रहकर अपनी प्रकृति-प्रवृत्ति का पोषण करने के साथ ही तप स यम का पालन कर, आलोचना प्रायश्चित्त नहीं करने से **विराधक** बनकर भी देवगति में जाकर **एक भव करके मुक्त होगी,** ऐसा आगम वर्णन स्पष्ट उपलब्ध है। अत: किसी भी धर्मी आत्माओं का तिरस्कार करना

तो किसी को भी योग्य नहीं बनता हक्त और स त–सतीजी को तो तीन करण तीन योग से पवित्र हृदयी रहना ही जिनाज्ञा का ध्रुव मार्ग है।

प्रश्न–३ : ब्रह्मचारी पुढष को ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?

उत्तर– शास्त्रों में अनेक स्थानों पर इस स ब ध में अनेक प्रकार के विधान एव निषेध है, उन सभी नियमों का यथायोग्य ध्यान अवश्य रखना चाहिये। खास करके एक साथ ब्रह्मचर्य की ९ गुप्ति, ९ अगुप्ति यहाँ इस स्थान में बताई गई है। आवश्यक सूत्र में श्रमण सूत्र के चौथे पाठ में और उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन–३१ में भी ९ गुप्ति(नव वाड) का निर्देश है। उत्तराध्ययन अध्ययन–१६ में ब्रह्मचर्य के १० समाधि स्थानों का विस्तार से वर्णन है। प्रस्तुत स्थान वर्णित ९ वाड रूप सुरक्षा इस प्रकार है– **(१)** ब्रह्मचारी साधु-साध्वी को गृहस्थ एव उनके सामान से रिक्त स्थान में रहना चाहिये एव स्त्री, पुढष, पशु, नपु सक युक्त मकान में नहीं रहना चाहिये। इसी में उनके स यम तथा ब्रह्मचर्य की समाधि रहती है अर्थात् सम्यग् आराधना होती है। **(२)** ब्रह्मचारी साधु को स्त्री स ब धी और साध्वियों को पुढष स ब धी कथावार्ता करना नहीं अर्थात् उनके हाव-भाव, रूप-र ग, बोली-चाली, वस्त्र आभूषण, श्रृ गार आदि स ब धी अच्छे-खराब की चर्चा-वार्ता में एव तत्स ब धी चि तन विचारणा में नहीं लगना चाहिये तथा स्त्रियों के साथ बैठकर भी बातों में समय बिताना नहीं चाहिये। **(३)** स्त्रियों के साथ एक आसन, पाट पर साधु को बैठना नहीं अथवा स्त्री जहाँ अधिक समय बैठी हो उस स्थान पर उसके उठने के बाद भी कुछ समय तक बैठना नहीं चाहिये तथा स्त्री स ब धी सभी स्थानों का वर्जन करना चाहिये। जहाँ पर स्त्रियाँ बार बार आकर धूप में या हवा में बैठती है उस स्थान पर साधु को नहीं बेठने का ही ध्यान रखना चाहिये एव स्त्रियाँ जहाँ बार बार लघुश का के लिये आती हो वहाँ साधु को लघुश का के लिये या परठने को नहीं जाना चाहिये। स्त्रियाँ जहाँ बडीनीत के लिये स्थ डिल भूमि में जाती हो वहाँ साधु को बडीनीत के लिये नहीं जाना चाहिये। इसी तरह साध्वी को पुढष के साथ या पुढष स ब धी उपयोगी इन सभी स्थानों का वर्जन करना चाहिये। इसके लिये मूलपाठ का वाक्य है– **णो इत्थि ठाणइ सेवित्ता भवइ।**

(४) स्त्री के अ गोपा गो को, शरीर के मनोहर एव मनोरम अवयवों को– हाथ, पाँव, आँखें, मुख, चहेरा, रूपर ग आदि को देखे नहीं, निरखे नहीं, एकटक से रागयुक्त परिणाम से देखे नहीं । वैसे ही साध्वी पुढष के शरीर को, उसके अ गोपा गों को निरखे नहीं । बार बार या अधिक समय तक घूर-घूर के देखे नहीं । सहज दृष्टि पडे तो भी तत्काल अपनी दृष्टि को समेट लेना चाहिये अर्थात् नजर नीची या आजुबाजु में कर लेनी चाहिये । **(५)** हमेशा या बार बार सरस-स्वादिष्ट, गरिष्ट खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये । हमेशा गरिष्ट भोजन करते रहने से और कभी- कभी तपस्या नहीं करने से विकारों की वृद्धि होती है जिसका निवारण करना कठिन हो जाता है। इसीलिये उत्तराध्ययन अध्ययन–१७ में हमेशा गरिष्ट भोजन करते हुए जो बीच-बीच में उपवास आदि तप नहीं करता है तो उसे पापीश्रमण होना कहा है । क्यों कि ऐसा करने से मानसिक एव इन्द्रियजन्य विकारों से ब्रह्मचर्य की समाधि भ ग होती है । **(६)** सरस या निरस कोई भी आहार ठू स ठू स कर, डटकर खाना नहीं चाहिये । साधु-साध्वी को सदा उणोदरी तप करना चाहिये अर्थात् भूख से कम ही खाना चाहिये । कभी कोई कारण से ऐसा खाना पड जाय तो भी हमेशा या बार बार ऐसा नहीं करना चाहिये एव तपस्या करने का लक्ष्य अवश्य रखना चाहिये ।

(७) गृहस्थ जीवन स ब धी सुखभोगों का स्मरण नहीं करना चाहिये और अन्य के पास अपनी स सारी सुख सुविधा की, स्त्री-पुत्र, परिवार की मोहभरी बातें नहीं करना चाहिये । **(८)** वाजि त्र वगेरे अनेक प्रकार के शब्दों को सुनने में और दर्शनीय स्थलों को देखने में आसक्त होवे नहीं अर्थात् श्रोतेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय को स यम में रखे । मन पर निय त्रण रखे तथा अपनी प्रश सा, यशकीर्ति का अभिलाषी बने नहीं । इसके लिये मूल पाठ है– **णो सद्दाणुवाई, णो रूवाणुवाई णो सिलोगाणुवाई भवइ । (९) णो सायासोक्ख पडिबद्धे यावि भवइ ।** साधु-साध्वी सदा सुखशीलता से ही नहीं रहे अर्थात् सुखे-सुखे रहना, खाना-पीना आन द करना, कभी उपवास, पोरिषी आदि नहीं करना, ऐसा नहीं करे । सर्दी-गर्मी आदि सहन करना नहीं; ऐसा नहीं करे । कुछ भी तप त्याग का अभ्यास रखे एव कुछ-कुछ कष्ट सहिष्णु बनने का अभ्यास करते रहना चाहिये । यद्यपि साधु जीवन में कदम-कदम पर कष्ट सहिष्णुता

जुडे हुए ही है, यथा– जल्दी उठना, स्वाध्याय प्रतिक्रमण सूर्योदय पूर्व करना, ठ डी गर्मी में भिक्षा लाकर ही खाना । वाहन, जूते उपयोग नहीं करना, पैदल ही चलना, ग्रामानुग्राम विहार करते रहना, रात्रि चौविहार करना, लोच करना, वडीलों को व दन करना, आदर देना, विनय करना, प खा नहीं करना, अग्नि का ताप नहीं करना आदि अनेक कष्ट सहिष्णुताएँ जुडी हुई है । फिर भी व्यक्ति की मानसवृत्ति सुख-शीलता और सुविधावादी नहीं बने इसलिये ब्रह्मचर्य सुरक्षा के इस नियम में सुख प्रतिबद्ध होने का निषेध किया गया है ।

उत्तराध्ययन सूत्र में तीन बोल विशेष हक्त– (१) भींत, ताटी, पर्दा वगेरे के अ तर से स्त्री पुढष के हास्य, कुजित, ढदन, गीत आदि के विविध शब्द आवाज सुनाई दे वैसे स्थान में ब्रह्मचारी बैठे या रहे नहीं । (२) शरीर तथा उपकरणों की विभूषा, साज-सज्जा, श्रृ गार के कार्य करे नहीं अर्थात् उदासीन भाव से स यमार्थ शरीर को और शरीर रक्षार्थ या लज्जार्थ वस्त्रों को एव पात्रों को धारण करे । तात्पर्य यह है कि किसी में भी विभूषावृत्ति का मानस बनावे नहीं अर्थात् सु दर सु दरतम दिखने की एव टीप-टाप रहने की विचारधारा रखे नहीं, मात्र व्यवस्थित वेशभूषा से विवेक के साथ वस्त्रादि उपकरणों को रखे और उपयोग में लेवे । (३) शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श में आसक्त होवे नहीं, अच्छे पर राग, खराब पर द्वेष करे नहीं । किसी में खुश, किसी में अनमना होवे नहीं पर तु विरक्ति भाव से अनुकूल-प्रतिकूल शब्दादि के सहज स योग में तटस्थ भाव, समभाव रखे । कोई भी इन्द्रिय विषयों की लालसा रखे नहीं, उनके लिये भ्रमण करे नहीं । कि तु शरीर निर्वाहार्थ एव स यम निर्वाहार्थ तथा जिनाज्ञानुसार ही प्रत्येक प्रवृत्ति करे ।

तुलना– उत्तराध्ययन सूत्र में शब्दादि पाँचों इन्द्रिय विषय का कथन स्पष्ट किया गया है । जब कि प्रस्तुत में शब्द-रूप दो विषयों के कथन के साथ तीसरा शब्द अपनी श्लाघा-पूजा प्रश सा की चाहना नहीं करने का है, अतः शाब्दिक हीनाधिकता के साथ यह बोल दोनों शास्त्रों में है । दो बोल उत्तराध्ययन सूत्र में विशेष है– (१) हास्य, कुजित आदि के शब्द श्रवण युक्त स्थान का निषेध एव (२) विभूषा वृत्ति का निषेध । प्रस्तुत सूत्र में भी उत्तराध्ययन सूत्र से एक बोल

विशेष है– १. सुखशीलता से रहने की वृत्ति का निषेध । यों कुल–११, १२ सुरक्षा स्थानों का दोनों सूत्रों में मिलकर कथन है । इसके अतिरिक्त भी सावधानियाँ रखने हेतु अन्य शास्त्रों में विविध कथन है, जिनकी विचारणा यथास्थान की जायेगी ।

प्रश्न–४ : सामान्यतया रोगोत्पत्ति किन-किन कारणों से होती है?

उत्तर– स्वय मानव की गलती से, विवेक ज्ञान एव योग्य आचरण नहीं रखने से रोगोत्पत्ति हो जाती है, इसके लिये प्रस्तुत स्थान के सूत्र–१२ में नव कारण कहे हक्त । यथा– **(१) भोजन की अधिकता से**– भोजन की अधिकता अनेक प्रकार से हो सकती है– एक ही बार में मनपस द वस्तु या होडाहोड में अत्यधिक खाना; शरीर, पेट की तरफ से अनेक स केत मिलने पर भी खाते रहना; जढरत बिना, भूख बिना, इच्छा मात्र से या अन्य की इच्छा से बार बार खाना; एक साथ अनेकों पदार्थ-द्रव्य खाना कि जिससे कभी कोई पदार्थ विरोधी स्वभाव के भी खाने में आ जाय । अत: सीमित द्रव्य, कम मात्रा में एव कम बार, भूख लगने पर या शरीर की आवश्यकता लगने पर खाना, यह निरोग–रोग रहित रहने का सु दर उपाय है ।

(२) अधिक बैठने से या अधिक खडा रहने से– शरीर के सम्यग् स चालन के लिये अ गोपा गों का हलन-चलन होते रहना चाहिये । किसी भी एक आसन से घ टो तक ज्यों का त्यों रहने से कभी शरीर की प्रक्रियाओं का सम्यग् स चालन न होने से अर्थात् उसमें अवरोध पैदा होने से अ गोपा गों में, नशों में, हड्डियों के जोडों में परेशानी उत्पन्न हो सकती है, अत: आसन का विवेक रखना चाहिये । **(३–४) अति निद्रा, अति जागरण**– स्वस्थ रहने के लिये विश्राम–निद्रा की आवश्यकता होती है, कि तु उसकी भी मर्यादा रखनी जरूरी होती है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम-जीवन के अनुकूल एव अवस्था के अनुकूल समय प्रमाण सोने का विवेक रखना चाहिये । २-३ वर्ष तक के बच्चों के लिये कोई नियम नहीं बनता है । विद्यार्थी जीवन में सामान्यतया ६ घ टे न्यूनतम एव १० घ टे अधिकतम समझना चाहिये । युवा–प्रौढ अवस्था में ६ घंटे न्यूनतम एव ८ घंटे अधिकतम सोना स्वास्थ्यप्रद रहता है । आत्म साधना में रत साधकों के लिये उनके निर तर के अभ्यास और मानस परिणति के अनुसार एक प्रहर तीन घ टे की

निद्रा-शयन से भी विशिष्ट साधकों का काम चल सकता है, सामान्य तौर से दो प्रहर छ घ टे की निद्रा–शयनरूप विश्राम भी अनेक साधकों के लिये पर्याप्त होता है । अतिश्रम, विहार आदि कारणों से अधिकतम आठ घ टे शयन–निद्रा कदाचित्क हो सकते हक्त । खास करके साधनाशील साधकों को अधिकतम अप्रमत्त दशा में स्वाध्याय ध्यान में लीन रहना होता है तथापि न्यूनतम तीन घ टे विश्राम-निद्रा करना औदारिक शरीर स्वभाव से उनको भी योग्य होता है । तीर्थंकर सरीखे विशिष्ट साधकों के लिये निद्रा लेने का कोई न्यूनतम नियम भी नहीं होता है ।

सामान्य मानव को कभी १–२ दिन-रात निद्रा न करके जागरण करना आवश्यक हो जाय तो भी शरीर स चालन चल सकता है अति जागरण भी निर तर हो जाने से अनेक रोगोत्पत्ति के कारण बन सकते हक्त । अति निद्रा लेने से भी शरीर के आवश्यक स चालनों में अधिक अवरोध होता है वह भी स्वास्थ्य के लिये क्षम्य नहीं होता है । पाचन शक्ति के व्यवस्थित स चालन के लिये शरीर के हलनचलन आदि की अनेक प्रक्रियाएँ आवश्यक होती है, अधिक सोने से उनमें अव्यवस्था होती हक्त, जो रोगोत्पत्ति में निमितभूत बनती है । अत: सार यह है कि विवेक युक्त योग्य मर्यादा का ध्यान रखते हुए ही निद्रा एव जागरण किया जाना निरोग रहने के लिये श्रेयस्कर होता है ।

(५–६) मल-मूत्र की बाधा को रोकने से– स्वस्थ शरीर में पाचनत त्र की सु दरता से मलमूत्र का विसर्जन स केत स्वत: हो जाता है उसमें कुछ सीमित समय अवधारण की सहज क्षमता शरीरावयवों की होती ही है । शरीर बाधा को अधिक रोकने से अनेक विचित्र रोग उत्पन्न हो सकते हक्त, अत: व्यक्ति को अपने शरीर स्वभाव और समयानुसार शौच निवृत्ति की या लघुश का निवृत्ति की सुविधा का ध्यान अवश्य रखना चाहिये । साधुजीवन में गमनागमन के कार्य प्राय: दिन में करने के होते हक्त तथापि शारीरिक बाधा कहाँ कब हो जाय इसके लिये शास्त्र में पहले से ही स्पष्ट सूचना की गई है कि साधु जहाँ भी रहे, वहाँ आसपास में मल-मूत्र विसर्जन की, परठने की जगह का आवश्यक रूप से निरीक्षण-प्रतिलेखन कर लेवे ।

(७) अति चलने से– शरीर की अपनी क्षमता होती है उसका ध्यान रखकर मर्यादा युक्त ही चलना चाहिये । इसकी मर्यादा प्रत्येक व्यक्ति

की क्षमता अभ्यास के अनुसार होती है । अतः बिना विचारे कभी कोई भी निमित्त से मर्यादातीत ३०-४०-५०-७०कि.मी. चलने से परेशानी हो सकती है, अतः चलने में विवेक युक्त निर्णय करना चाहिये ।

(८) भोजन की प्रतिकूलता से– रात्रि भोजन आदि किसी कारण से गलत पदार्थ भोजन में खाने में आ जाने से, खाद्यपदार्थ की समय मर्यादा अधिक हो जाने से उसमें विकृति हो गई हो, सड गये हो या लीलन-फूलन उत्पन्न हो गई हो, कीडी-मक्खी आदि जीवयुक्त हो या विषयुक्त हो ऐसे पदार्थ खाने में आ जाय तब अनेक प्रकार की बिमारियाँ उत्पन्न हो सकती है । समय पर खाना न मिले, भूख से स तप्त रहना पडे या खुद की आदत-प्रकृति अनुसार अथवा शरीर की आवश्यकतानुसार आहार-पानी, औषध-भेषज आदि न मिले; इत्यादि भोजन की प्रतिकूलताओं से भी रोगोत्पत्ति होती है । अतः सामान्यतया व्यक्ति को अपने भोजन की व्यवस्था का, समय का, मात्रा का एव पदार्थों का विवेक पूर्वक ध्यान रखना चाहिये ।

(९) इन्द्रियों का, शरीर के अवयवों का अति उपयोग या गलत ढ ग से उपयोग-दुढपयोग करने से– अति वाजि त्र श्रवण, अति नाटक, सिनेमा, टी.वी. देखना, अति सुग धी पदार्थों का प्रयोग, अति भाषण, अति मात्रा में प खा-कूलर, ए.सी. का उपयोग, अति अग्निताप अति कामभोग सेवन, अति मानसिक चि ता-शोक आदि ये सभी इन्द्रियों के अति उपयोग और दुढपयोग भी रोगोत्पत्ति के कारण बनते हक्त, अतः इन सभी प्रवृत्तियों में विवेक ज्ञान और मर्यादित व्यवहार का ध्यान रखना चाहिये ।

सामान्यतया ९ की स ख्या के अ तर्गत ये कारण कहे गये हक्त, अन्य अनेक कारणों का समावेश इनमें यथायोग्य कर लेना चाहिये । विशेष में व्यक्ति के अपने शुभ-अशुभ कर्मोदय ही इसमें मुख्य कारण बनते हक्त । जिससे कभी ये गलतियाँ करने पर भी रोग न होवे और कभी ये गलतियाँ नहीं करने पर भी रोग हो जावे, ऐसा शक्य है । तथापि सामान्यतया शरीर स्वभाव की अपेक्षा से कही गई इन बातों का ध्यान रखने से व्यक्ति अनेक रोगों से सुरक्षित रह सकता है । व्यवहार सापेक्षता की अपेक्षा ये निमित्त कारण भी महत्त्वशील है, इसीलिये शास्त्र में यथाप्रस ग इनका स केत किया गया है ।

साधक के साधना जीवन में स्वस्थ रहना साधना की सफलता में अत्य त महत्त्व रखता है । इसलिये आत्म साधकों को भी इन बातों का अपने क्षयोपशम प्रमाणे अवश्य विवेक रखना चाहिये ।

प्रश्न–५ : हमारी ज्ञात दुनियाँ में जो अनेक दिशाओं में समुद्र है वही ज बूद्वीप के चौतरफ वाला लवण समुद्र है या अन्य ?

उत्तर– हमारी दुनियाँ के सभी द्वीप ज बूद्वीप के भरतक्षेत्रीय विभाग हक्त, इनके बीच में या आस-पास जो भी समुद्र है वे जैनागमों में कथित लवण समुद्र रूप नहीं है कि तु कोई समुद्र, नदियों के पानी के जमाव रूप है और कोई समुद्र, लवण समुद्र के पानी के ज बूद्वीप में भर जाने से बने हुए हक्त । ज बूद्वीप के किनारे चौतरफ गोलाकार आठ योजन (हजारों किलोमीटर)ऊँचा परकोटा(जगती) है जो १२ योजन (हजारों कि.मी.)का जाडा विस्तार वाला है । जैनागमों का लवण समुद्र इस विशाल जगती–परकोटा से बाहर है ।

प्रश्न होता है कि ज बूद्वीप के अ दर के विभाग में आये समुद्रों का पानी खारा क्यों है ? प्रस्तुत अध्याय के सूत्र–१७ से यह स्पष्ट होता है कि जिसतरह किसी बहुत बडे बा ध(डेम) के चौतरफ अनेक श्रोत पानी आने के होते हक्त तथा कई पानी निकलने-निकालने के श्रोत भी होते हक्त । ठीक उसी प्रकार ज बूद्वीप और लवण समुद्र के बीच में हजारों योजन जाडी और ऊँची जगती(परकोटा)है तो भी उसमें नीचे से नदियों का पानी जाने के अनेक मार्ग है । बडी नदियों की अपेक्षा स पूर्ण जगती में १४ बडे मार्ग है । जिसमें से बडी नदियाँ लवण समुद्र में जाकर मिलती है और वे मार्ग जघन्य साडे बासठ योजन की विशालता से लेकर उत्कृष्ट ५०० योजन के विस्तार वाले हक्त । इसके अतिरिक्त भी कुछ मार्ग जगह-जगह चौतरफ है । लवण समुद्र में भरती आने पर उन मार्गों से पानी ज बूद्वीप के अ दर, भरत-ऐरावत क्षेत्र में प्रविष्ट होता रहता है, घटता-बढता रहता है । उसी से आगमोक्त मागध–वरदाम–प्रभास नाम के तीन बडे तीर्थ स्थान देवाधिष्ठित है तथा हमारे चौतरफ दिखने वाले खारे पानी के समुद्र भी उसी प्रविष्ट पानी के प्रभाव से हक्त । प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है इन मार्गों के द्वारा लवण समुद्र से ज बूद्वीप में उत्कृष्ट ९ योजन (१०८ कि.मी.) प्रमाण के बडे मच्छ प्रवेश कर सकते हक्त । जघन्य–मध्यम की अपेक्षा

अनेक छोटे-बडे मच्छ लवण समुद्र से ज बूद्वीप में इन छिद्रों से–मार्गों से प्रवेश करते रहते हक्त ।

प्रश्न–६ : विगय किसे कहते है और वे विगयपदार्थ कौन-कौनसेहक्त ?

उत्तर– पाचन त त्र में कम श्रम से शरीर में ज्यादा पुष्टी करने वाले पदार्थों को जैनागमों में **विगय** कहा गया है । इस शास्त्र में स ख्या के प्रस ग से अनेक स्थानों में विगयों का कथन अलग-अलग अपेक्षा से हुआ है । तो भी इस नवमें स्थान में सभी विगयों का एक साथ स कलन किया गया है, यथा– १. दूध २. दही ३. मक्खन ४. घृत ५. तेल ६. गुड ७. मधु–शहद ८. मद्य ९. मा स । पूर्व के स्थानो में– १. चार महाविगय २. चार गौरस विगय ३. चार स्निग्ध विगय और ४. पाँच विगयों का कथन है । उस सभी के मिलने पर भी ९ की स ख्या बनती है ।

यहाँ कहे गये **गुड** शब्द से इक्षु–गन्ने के रस से बनने वाले शक्कर,गुड,मिश्री,खा ड आदि सभी प्रकार ग्रहित किये जाते हक्त । महाविगय में कहे गये दो पदार्थ मद्य-मा स को अखाद्य एव मानव के लिये त्याज्य तथा इसभव–परभव के लिये अहितकारक पदार्थ कहा गया है । मक्खन औ र शहद ये दो महाविगयों को सर्वथा त्याज्य नहीं गिना गया है । इन्हें साधु-साध्वियों के लिये औषध प्रयोग रूप से आगम में ग्राह्य कहे हक्त । चार गोरस विगय में पशुजन्य–दूध, दही, मक्खन और घृत को गिनाया गया है । स्नेह विगय के अ दर चिकने पदार्थ की अपेक्षा– घृत, तेल, मक्खन एव वशा–चर्बी को गिनाया गया है । इन चार में से वशा को यहाँ ९ की स ख्या के विगय पदार्थों में नहीं गिनाया गया है । इसमें स ख्या के सिवाय अन्य कोई कारण नहीं है । अत: अपेक्षा से कुल १० विगय होती हक्त ।

प्रश्न–७ : पुण्य कितने हक्त और उनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– प्रस्तुत स्थान के सूत्र–२४ में नव प्रकार के पुण्य कहे हक्त । पुण्य शब्द का प्रयोग जैन साहित्य में तीन प्रकार से अर्थात् तीन अर्थ में हुआ है, यथा–पुण्य प्रकृति, पुण्य प्रवृत्ति, पुण्य ब ध । **(१) पुण्य प्रकृति**– कर्मों की १४८ प्रकृतियों में जो शुभ फलदायी है वे पुण्यकर्म प्रकृति रूप गिनी गई है और जो अशुभ फलदायी है वे पाप प्रकृति गिनी गई है ।चार घातीकर्मों की सभी प्रकृतियाँ पाप प्रकृति रूप गिनी गई है, ४ अघातीकर्मों की प्रकृतियें दोनों प्रकार की है अर्थात् १. शाता-अशाता

वेदनीय २.देवायु-नरकायु ३.शुभनाम-अशुभनाम ४.ऊँचगोत्र-नीचगोत्र ।

(२) पुण्य प्रवृत्ति– जिस प्रवृत्ति में दूसरों को सुख पहुँचाने का उद्देश्य होता है, आत्मा के परिणाम शुभ होते हक्त एव जिस प्रवृत्ति से आत्मा में शुभ कर्मब ध की अर्थात् पुण्य प्रकृति ब ध की मुख्यता होती है वे सभी प्रवृत्तियाँ पुण्य प्रवृत्तियाँ कही जाती है ।अपेक्षा से यहाँ उन पुण्य प्रवृत्तियों को ९ भेदों में समाविष्ट करके ९ प्रकार के पुण्य अर्थात् ९ प्रकार की पुण्य प्रवृत्तियाँ कही गई है ।

(३) पुण्यब ध– जीवों को प्रत्येक समय, प्रत्येक प्रवृति से कर्मब ध होता रहता है । प्रथम गुणस्थान से लेकर नवमें गुणस्थान तक के सभी जीवों के सात कर्म का ब ध निर तर होता ही रहता है और आयुष्य कर्म का ब ध तो प्रत्येक जीव को एक जीवन में एक बार ही होता है । इस अपेक्षा से मिथ्याद्दष्टि सम्यग्द्दष्टि श्रमणोपासक और नवमें गुणस्थान तक के श्रमणों के कर्मप्रकृति के ब ध की अपेक्षा पुण्य प्रकृति ब ध और पाप प्रकृति ब ध सभी प्रवृत्तियों में कुछ न कुछ होता ही रहता है अर्थात् ९ प्रकार की प्रस्तुत सूत्रोक्त पुण्य प्रवृत्ति, १८ प्रकार के पापों की प्रवृत्ति तथा व्रत प्रत्याख्यान युक्त श्रावक साधु की स वर निर्जरा की प्रवृत्तियों के समय में भी दोनों प्रकार का ब ध होता रहता है । तथापि उसमें अलग-अलग विशेषता होती है, यथा– (१) प्रस्तुत ९ पुण्य कार्यों में पुण्य प्रकृतिब ध की अधिकता–मुख्यता होती है, पापप्रकृति ब ध की न्यूनता-गौणता-नगण्यता होती है ।(२) १८ पाप की प्रवृत्तियों में पाप प्रकृति ब ध की मुख्यता–अधिकता होती है, पुण्य कर्म प्रकृतिब ध की न्यूनता-गौणता होती है । (३) धार्मिक अनुष्ठानों में व्रत-महाव्रत, त्याग-तप में कर्मनिर्जरा(कर्मक्षय)की मुख्यता-अधिकता होती है, साथ ही ब ध विभाग में पुण्य प्रकृतिब ध की अधिकता और पाप प्रकृति ब ध की न्यूनता होती है । इस प्रकार प्रकृति ब ध की अपेक्षा पुण्य का स्वरूप समझना चाहिये ।

प्रतिप्रश्न– पुण्य के कार्य में पाप प्रकृति का ब ध क्यों एव पाप कार्यों में पुण्य प्रकृति का ब ध क्यों और धर्म की प्रवृतियों में स वर निर्जरा के साथ पुण्य और पाप प्रकृतियों का ब ध क्यों होता है ? **समाधान–** नवमें गुणस्थान तक जीव के सूक्ष्म या स्थूल रूप में कषाय उदय चालु रहता है, योग प्रवृत्ति भी चालु रहती है जिससे कितने ही जीवों को

सुख-दुःख पहुँचता रहता है । स सार की पाप प्रवृत्तियाँ करते हुए भी जीव पारिवारिक, कर्मचारी जीवों को सुख पहुँचाता रहता है और पुण्य की प्रवृत्तियाँ करते हुए भी जीव उन प्रवृत्तियों से कितने ही जीवों को कष्ट भी पहुँचाता है । आर भ-समार भ की प्रवृत्तियाँ एव योगजन्य गमनागमन आदि प्रवृत्तियों में सूक्ष्म स्थूल रूप से हिंसा भी होती है । इसीलिये उपरोक्त सापेक्ष कथन किया गया है कि पुण्य आदि तीनों प्रकारनी प्रवृत्तियों में भी दोनों प्रकार के कर्म प्रकृतिब ध होते रहते हक्त।

प्रस्तुत में पुण्य प्रवृत्तियाँ ९ प्रकार की कही हक्त, यथा– **(१) अन्न पुण्य**–आहार की इच्छा वाले जीवों को भोजन सामग्री देना । यथा– प्रदेशीराजा के समान दानशाला–भोजनशाला चलाना, हमेशा पक्षियों को दाना डालना, पशुओं को घास डालना, गाय, कुत्ते को रोटी देना इत्यादि अन्नपुण्य की प्रवृत्तियाँ है । **(२) पानपुण्य**– प्राणियों को पानी पिलाना, प्याउ चलाना, पशुओं के लिये जगह-जगह पानी की कु डिया भरवाना, दुष्काल के समय घरों में पानी पहुँचाना; इत्यादि **पानपुण्य** की प्रवृत्तियाँ है । **(३) लयनपुण्य**– मकान का दान, बेघरबार लोगों के लिये घर बनवाना या उसमें मदद करना । राहगीरों के लिये मार्ग में, ज गल में विश्रामस्थान बनाना । सामाजिक पौषधशाला या धर्म स्थानक वगैरह बनाना या उसमें मदद करना । **(४) शयनपुण्य**– बैठने सोने के साधनों का दान करना । बिस्तर, रजाई, क बल, चादर, पल ग आदि का दान करना, गरीबों को बा टना । **(५) वस्त्र पुण्य**– पहनने ओढने के कपडे का दान, स्कूल ड्रेस, सर्दी में स्वेटर आदि का वितरण करना या घर पर मा गने आये गरीब भिखारी लोगों को नया-पुराना वस्त्र देना । **(६–८) मन, वचन, काया पुण्य**–जीवों के प्रति शुभ पवित्र भाव, अनुक पाभाव, आदरभाव, अहोभाव रखना मनपुण्य है । प्राणियों को आन द होवे वैसे मनोज्ञ एव अनुकूल वचन प्रयोग करना । आओ, पधारो वगैरह सन्मानसूचक शब्दों का प्रयोग करना **वचनपुण्य** है । शरीर से रोगी, अशक्त, वृद्ध को सहयोग करना तथा मार्ग भूले हुए को साथ चलकर ग तव्य मार्ग या स्थान बता देना आदि **कायपुण्य** है । **(९) नमस्कार पुण्य**– माता, पिता, वडील को नमस्कार करना; घर में आग तुक को, रास्ते में मिलने वाले स्नेही परिचित को नमस्कार करना, जय जिनेन्द्र कहना, सन्मान देना **नमस्कारपुण्य** ह्क।

इन नव प्रकार के कार्यों में अनुक पा भावों की, निःस्वार्थ भावों की, नम्र भावों की तथा प्रेम-मैत्री भावों की आत्मा में पुष्टी होती है । ये कार्य अन्य जीवों को सुख पहुँचाने वाले हक्त । जिससे मुख्य रूप से शुभ कर्मों का ब ध होता है, अतः उन्हें पुण्य कार्य कहा गया है ।

प्रश्न–८ : पापश्रुत किसे कहा जाता है और वे कितने हक्त ?

उत्तर– जिनसे सा सारिक वृत्तियों का पोषण होता है, जो विकथाओं रूप हो, जिससे राग या द्वेषभावों की वृद्धि होती हो वे पापश्रुत कहे जाते हक्त । अथवा जो मिथ्यामति के द्वारा बने हो, मिथ्यात्व के प्रेरक या पापकार्यों के प्रेरक हो, वे मिथ्याशास्त्र भी पापश्रुत कहे जाते हक्त । प्रस्तुत स्थान के २६ वें सूत्र में ९ पापश्रुत प्रस ग कहे हक्त । आठवें स्थान के सूत्र–२६ में आठ महानिमित कहे गये हक्त और समवाया ग सूत्र के २९ वें समवाय में २९ पापश्रुत कहे हक्त । इनमें परस्पर कुछ समानता कुछ भिन्नता है । प्रस्तुत में ९ पापश्रुत प्रस ग इस प्रकार कहे हक्त– **(१)** उत्पात श्रुत–प्रकृति विप्लव या राष्ट्र विप्लव सूचकशास्त्र । **(२)** निमित्त श्रुत–भूत भविष्य वर्तमान के फल सूचक शास्त्र । (३) म त्रश्रुत– म त्र, विद्या प्रतिवादक शास्त्र । **(४)**आख्यायिक श्रुत–मनोर जक कथा-विकथा रास आदि के आख्यान कारक शास्त्र । **(५)** चिकित्सा श्रुत–रोग निवारक औषधिदर्शक आयुर्वेद आदि शास्त्र । **(६)** कला श्रुत–स्त्री पुढष की कलाओं को बताने वाला शास्त्र । **(७)** आवरण श्रुत–मकान बनाने स ब धी वास्तु विद्या शास्त्र । **(८)** अज्ञानशास्त्र–नृत्य नाटक स गीत आदि के शास्त्र । **(९)** मिथ्या प्रवचन श्रुत– मिथ्या मतप्रवर्तक शास्त्र । इन शास्त्रों से आत्मकल्याण के भावों की उत्पत्ति या वृद्धि न होकर मात्र स सारी ढचि, मोहभावों की वृद्धि होती है, इस अपेक्षा से इन्हें पापश्रुत प्रस ग कहा गया है ।

प्रश्न–९ : विशेषज्ञ कितने प्रकार के होते हक्त ?

उत्तर– किसी भी विषय के सर्वांगीण ज्ञाता, तत्स ब धी स पूर्ण समाधान देने वाला व्यक्ति 'विशेषज्ञ' कहा जाता है, प्रस्तुत में ९ विशेषज्ञ–निपुण पुढष कहे हक्त– (१) स ख्यान नैपुणिक– गणितशास्त्र के विशेषज्ञ । (२) निमित्त नैपुणिक– ज्योतिष गणित के हानि-लाभ भूत भावि के कथन करने में, समझाने में निपुण । (३) काय नैपुणिक– जीव विज्ञान के विशेषज्ञ । (४) पुराण नैपुणिक– इतिहास शास्त्र पुराण शास्त्र में निपुण ।

(५) पारहस्तिक नैपुणिक– स्वभाव से ही सभी कार्यों में दक्ष । (६) पर-प डित नैपुणिक– अनेक शास्त्रों में स्वमत-परमत में प्रवीण ।(७) वादी– शास्त्रार्थ करने में कुशल । (८) भूतिकर्म नैपुणिक– रक्षा पोटली के द्वारा बुखार, यक्षावेश आदि का निवारण करने वाला । (९) चिकित्सा निपुण– कुशल वैद्य, डोक्टर । इसमें भी अलग-अलग विषय के निपुण-विशेषज्ञ होते हक्त।

प्रश्न–१० : भगवान महावीर स्वामी के समय में कितने गण थे?

उत्तर– भगवान का शासन अविभक्त श्रमणों वाला होता है । सभी श्रमण एक ही शासन अनुशासन में गिने जाते हक्त । फिर भी अध्ययन-अध्यापन आदि की व्यवस्था दृष्टि से जितने गणधर होते हक्त उतने गण बना लिये जाते हक्त । कदाचित् गणधरों से गण की स ख्या कम भी होती है तब एक गण के श्रमणों की अध्यापन व्यवस्था दो गणधर मिलकर चलातेहक्त। आगामी चौबीसी में भी प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ(श्रेणिक के जीव) के शासन में नव गण और ११ गणधर होंगे । भगवान महावीर के ग्यारह में से प्रार भ के ७ गणधरों के १-१ स्वत त्र गण था। आठवें नवमें गणधर का सम्मिलित १ गण था और दसवें, ग्यारहवें गणधर का भी एक गण था । इन गणों में सभी साधुओं का समावेश हो जाता था । नई दीक्षा होने पर उन्हें यथायोग्य गण में सम्मिलित कर लिया जाता है । साध्वियों के भी अध्ययन-अध्यापन आदि व्यवस्था के लिये विभाजन की आवश्यकता स्वतः सिद्ध है कि तु उनका वर्णन उपलब्ध नहीं है । इन गणों के नाम प्रस्तुत सूत्र–२८ में कहे गये हक्त । ये नामकरण किस आधार से किये गये थे उसका कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है । नामकरण–क्षेत्र, काल या व्यक्ति के मानस अनुसार कोई भी प्रकार के हो सकते हक्त– जाति से, गोत्र से, पिता, माता के अनुकरण से, गाँव-नगर से या अन्य भी यथेच्छ हो सकते हक्त । प्रस्तुत में कहे ९ गणों के नाम इस प्रकार हक्त– (१) गोदासगण (२) उत्तर बलिस्सह गण (३) उद्देहगण (४) चारणगण (५) उद्दवादिकगण (६) विश्ववादिकगण (७) कामर्द्धिगण (८) मानवगण (९) कोटिक गण ।

प्रश्न–११ : नवकोटि शुद्ध आहारपाणी किसे कहते हक्त ?

उत्तर– आहार ९ प्रकार की प्रक्रिया से अशुद्ध, अकल्पनीय बन सकता है । ९ प्रकार से अशुद्ध, अकल्पनीय नहीं बना हुआ आहार नवकोटि

परिशुद्ध आहार कहा जाता है।९ दोष प्रक्रिया इस प्रकार है– **(१–३)** साधु के लिये जीवों का हनन हुआ हो अर्थात् सचित्त जीवयुक्त पदार्थ को साधु के लिये अचित्त किया हो, कराया हो, अनुमोदन किया हो(सहायक बना हो) । **(४–६)** साधु के लिये सचित्त-अचित्त पदार्थ रा धे हो, अग्नि परिपक्व किये हो, कराये हो, अनुमोदन किया हो (सहायक बना हो) **(७–९)** साधु के लिये कोई भी पदार्थ खरीदा हो खरीदाया हो खरीदने का अनुमोदन किया हो(सहायक बना हो); ऐसा साधु के उद्देश्य भाव से युक्त या मिश्रित आहार नवकोटि अशुद्ध होता है । इन नव में से कोई भी प्रक्रिया साधु के लिये नहीं की गई हो, साधु के उद्देश्य स कल्प बिना मात्र गृहस्थ के लिये ही ये कोई भी प्रक्रिया की गई हो तो वह आहार नवकोटि परिशुद्ध आहार कहा जाता है । यह आर भ-हिंसा और क्रीत दोष की प्रधानता से कथन किया गया है । अन्य अपेक्षा से उद्गम, उत्पादना, ऐषणा के दोषों से परिशुद्ध तथा परिभोगेषणा मा डला के ५ दोषों से परिशुद्ध आहार करने का कथन अन्य अनेक जगह आगमों में हुआ है । अतः सभी विधानों के समन्वय पूर्वक साधु को अपने स यमाचार की सम्यग् आराधना करनी चाहिये ।

प्रश्न–१२ : आयुष्य के अनुसार ही अन्य कितने ही परिणाम होते है वे कौन से हक्त ?

उत्तर– जीव ने जैसा आयुष्य बा धा होता है उसी अनुसार, वहीं पर वह पहुँचता है और जहाँ का आयुष्य भोग रहा है उसीके स्वभाव अनुसार वह आगामी आयु स ब धी ब ध करता है । इन सभी बातों का स ग्रह करते हुए प्रस्तुत स्थान के सूत्र–३६ में आयुष्य स ब धी स्वभाव–परिणाम के नौ प्रकार कहे हक्त– **(१)** गति परिणाम– जिस गति का आयुष्य बा धा है वह आयुष्य कर्म उसे उसी गति में पहुँचा देता है । **(२)** गति ब धन परिणाम– जिस गति का आयुष्य जीव भोग रहा है वहाँ के स्वभाव अनुसार आगे की गति का आयुब ध होगा । यथा– नरकायु भोगता नारकी जीव अपने स्वभाव प्रमाणे मनुष्य–तिर्यंच के आयु का ब ध करता है, नारकी देवता का आयुष्य नहीं बा धता है। **(३)** स्थिति परिणाम– जितनी स्थिति का आयुष्य ब ध किया हो उसके अनुसार जीव पहुँचता है यथा– नरकगति में ३ सागरोपम का

आयुष्य बा धा है तो वह आयुष्य प्रथम नरक पार करवा कर दूसरी नरक के उस आयुष्य स्थान तक पहुँचा देता है यह आयुष्य कर्म का स्थिति परिणाम–स्वभाव है । **(४)** स्थिति ब ध परिणाम– जिस आयुष्य को जीव भोग रहा है उसके स्वभाव अनुसार ही आयुष्य की स्थिति का ब ध करता है, यथा– तिर्यंच प चेन्द्रिय जीव देवायु का ब ध करे तो तिर्यंचायु के स्वभावानुसार उत्कृ ष्ट १८ सागरोपम का ब ध करता है, नरकायु का ब ध करे तो उत्कृष् ट ३३ सागरोपम का ब ध कर सकता है । **(५-७)** ऊर्ध्व आदि गौरव परिणाम– जीव अपने स्थान से उपर, नीचे या तिरछे जिस दिशा में जाने योग्य आयुष्य का ब ध किया होगा वह उसी दिशा में गमन करेगा यह आयुष्य का ऊर्ध्व गौरव आदि परिणाम–स्वभाव कहा गया है । **(८-९)** दीर्घ-ह्रस्व गौरव परिणाम– जीव ने जितनी दूरी का या नजीक का आयुब ध किया अर्थात् जो स्थान निश्चित्त करके आयुष्य बा धा है वह आयुष्य का स्वभाव दीर्घ या ह्रस्व गौरव(गति) परिणाम कहा गया है । तात्पर्य यह है कि आयुष्य ब ध के उसके ये परिणाम–स्वभाव भी नियत हो जाते है, यहाँ उन्हें ९ की स ख्या से कहा गया है । छट्ठे स्थान में ६ प्रकार के आयुष्य परिणाम (ब ध)भी कहे है, वे इनसे कुछ भिन्न तरह के हक्त । अत: वे भेद अलग अपेक्षा के है और यहाँ की अपेक्षा भिन्न है, ऐसा समझना चाहिये । स ख्या स ब धी इन प्रकरणों में अपेक्षा भेद से प्रकारों की भिन्नता अनेक बोलों में कही गई है । इसे सापेक्ष अनेका तिक कथन समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–१३ : भगवान महावीर स्वामी के शासन में किन-किन जीवों ने तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का ब ध किया था ?

उत्तर– भगवान के शासन में ९ जीवों ने तीर्थंकर गोत्र नामकर्म का ब ध किया था । वे सभी एक भव करके दूसरे भव में तीर्थंकर बनेंगे । उनके नाम– (१) श्रेणिक राजा (२) सुपार्श्व–भगवान के काका (३) उदायी राजा–श्रेणिक के पौत्र और कोणिक के पुत्र (४) पोट्टिल अणगार– ज्ञाता सूत्र में वर्णित । (५) दृढायु– सर्वानुभूति नामक पाँचवाँ तीर्थंकर बनेंगे । इनका परिचय अप्राप्त है । (६) श ख–यह भी अज्ञात है, सातवाँ तीर्थंकर बनेंगे । भगवान के प्रमुख श्रावक श ख थे, वे तो महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करेंगे । (७) शतक– इनके विषय में टीका में स्पष्ट

किया है कि पुष्कली श्रावक का ही अपर नाम शतक था । ये शतकीर्ति नामक दसवाँ तीर्थंकर बनेंगे । (८) सुलसा– सारथी पत्नि थी । उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करके देव ने उसे ३२ गुटिका दी थी, एक साथ खाने से उसके ३२ पुत्र हुए थे, वह आगामी चोवीसी में **निर्मम** नामक सोलहवाँ तीर्थंकर बनेगी । (९) रेवती– भगवान के लिये बीजोरापाक वहोराने वाली श्राविका थी, चित्रगुप्त नामक सत्रहवाँ तीर्थंकर बनेगी ।

श्रेणिक राजाने तीर्थंकर नाम कर्म बा धने योग्य दो मुख्य कार्य किये थे– (१) जीवों की दया पाली थी अर्थात् अपने राज्य में प चेन्द्रिय जीवों के वध का निषेध कर दिया था । (२) दीक्षा की दलाली प्रेरणा करी और खुद की २३ पत्निएँ दीक्षित हुई तो भी सहर्ष स्वीकृति दे दी थी । वे नरकायु बा ध चुके थे, अत: प्रथम नरक से निकल कर आगामी चौवीसी सें प्रथम तीर्थंकर महापद्म बनेंगे । उम्र, दीक्षापर्याय वगैरह सभी भगवान महावीर के समान होगी । ग्यारह गणधर, ९ गण आदि भी भगवान महावीर के समान होंगे । दीक्षा के पहले राजा होंगे, यह विशेषता होगी । तब उनके दो देव पूर्णभद्र और मणिभद्र सेवा में रहते हुए सेनाकर्म करेंगे । छद्मस्थ काल और केवलज्ञान पर्याय भी भगवान महावीर के समान होगी । परीषह–उपसर्गों की, गौशालक-जमाली की समानता नहीं कही गई है । उत्सर्पिणी के दूसरे आरे के ३ वर्ष साडे आठ महीने बीतने पर महापद्म तीर्थंकर का जन्म होगा और ७५ वर्ष साडे आठ महीने पूर्ण होने पर निर्वाण होगा ।

इन नौ भावी तीर्थंकरों के सिवाय भी अन्य कुछ (९) जीवों का कथन सूत्र–५३ में हक्त वे सभी जीव आगामी भव में मनुष्य बनकर चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा करके मोक्ष जायेंगे । वे इस प्रकार हक्त– (१) कृष्ण वासुदेव–आगामी उत्सर्पिणी में १३ वाँ तीर्थंकर होंगे । (२) कृष्ण-वासुदेव के भाई बलराम १४ वा तीर्थंकर होंगे । (३) उदक पेढालपुत्र– सूयगडा ग सूत्र में इनका वर्णन है । (४-५) पोट्टिल और शतक– ये मध्यम तीर्थंकर बनकर चातुर्याम धर्म का निरूपण करेंगे । (६) दासक– यह भी अज्ञात है । कृष्ण के पुत्र दासक मुनि तो मोक्ष गये हक्त । (७) सत्यकी– यह विद्याधर राजा था । (८) अ बड– ये महाविदेह क्षेत्र में चातुर्याम धर्म का निरूपण करके मोक्ष जायेंगे, तीर्थंकर नहीं बनेंगे । अत: तीर्थंकर बनने वाले अ बड अन्य समझना जो आगामी उत्सर्पिणी

में तीर्थंकर बनेंगे । (९) सुपार्श्वा आर्या– पार्श्वनाथ भगवान के शासन की साध्वी थी । यहाँ ९ की स ख्या मात्र से ये ९+९=१८ जीवों के भावी का कथन है । जीवन वर्णन या परिचय सभी का नहीं मिलता है । कुछ का वर्णन अन्यान्य शास्त्रों में मिलता हक्त । टीकाकार के समय भी उनके जीवन वर्णन की पर परा प्राप्त नहीं थी । शास्त्र लेखन के ६०० वर्ष बाद टीकाकार हुए थे ।

प्रश्न–१४ : इस स्थान में अन्य भी किन-किन विषयों का निरूपण हक्त ?

उत्तर– उपरोक्त प्रश्नोत्तर के अतिरिक्त भी अनेक नूतन विषयों का स केत यहाँ पर ९ की स ख्या के अनुस धान में किया गया है। यथा–**(१)** आचारा ग प्रथम श्रुतस्क ध के नव अध्ययनों को ही ब्रह्मचर्य स ज्ञा दी गई है और कहा गया है **नव ब भचेरा पण्णत्ता** । नव अध्ययन के नाम– १. शस्त्रपरिज्ञा, २. लोकविजय, ३. शीतोष्णीय, ४. सम्यक्त्व, ५. आव ती, ६. धूत, ७. विमोक्ष, ८. उपधान, ९. महापरिज्ञा । यहाँ कहा गया नववाँ **महापरिज्ञा** अध्ययन विच्छिन्न है, अनुपलब्ध है । आचारा गसूत्र में इस नाम से सातवाँ अध्ययन विच्छेद होना दर्शाया है और आठवाँ **विमोक्ष** तथा नवमा **उपधानश्रुत** अध्ययन उपलब्ध है । यहाँ क्रम भिन्नता क्यों है उसका कारण अज्ञात है । अत: भूल से या जानकर विच्छिन्न अध्ययन को अ तिम दर्शाया गया है, ऐसी शक्यता है । **(२)** चौथे तीर्थंकर का शासन नव लाख क्रोड सागरोपम प्रमाण चला था । पार्श्वनाथ भगवान की अवगाहना ९ धनुष प्रमाण थी । विमलवाहन कुलकर ९०० धनुष के ऊँचे थे । इस अवसर्पिणीकाल के ९ क्रोडा-क्रोड सागरोपम प्रमाण काल व्यतीत होने के बाद धर्म प्रवर्तन हुआ था । इतने समय तक युगलिक काल होने से धर्माचरण प्रवर्तन नहीं था ।

(३) नव तत्त्व कहे गये हक्त– जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, स वर, निर्जरा, ब ध, मोक्ष । **१.** ज्ञान एव उपयोग गुण से युक्त सुख-दु:ख का अनुभव करने वाला चेतना स्वभावी तत्त्व **जीव** है । **२.** चेतना लक्षण रहित जीव के अतिरिक्त जडपदार्थ **अजीव** हक्त। **३.** अन्य को सुख पहुँचाने की मनोवृत्ति से की जाने वाली प्रवृत्ति **पुण्य** तत्त्व है । **४.** सूत्रोक्त १८ पापों का आचरण, अन्य को पीडा कष्ट देने की मनोवृत्ति के आचरण **पाप** तत्त्व है । पुण्य प्रवृत्ति का परिणाम जीव को शुभ

मिलता है और पाप प्रवृत्ति का परिणाम जीव को अशुभ होता है । **५.** पुण्य और पाप की प्रवृत्तियों से आत्मा में कर्मों का आगमन का जो माध्यम मार्ग बनता है, पुद्गलों का आगमन होता है वह **आश्रव** तत्त्व है । **६.** शुभाशुभ कर्मों के आश्रव को व्रत प्रत्याख्यान निवृत्ति के द्वारा रोकना **स वर** है । **७.** आये हुए कर्मवर्गणा पुद्गलों का आत्मा के साथ प्रकृति आदि रूप से ब ध होना **बध** तत्त्व है । **८.** ब धे हुए कर्मों को बाह्य आभ्य तर तप एव शुभ भावों के द्वारा हीनाधिक अ श में क्षय करना, आत्मा से हटा देना **निर्जरा** तत्त्व है और ९. उन कर्मों का स पूर्ण क्षय करके आत्मा को सदा के लिये कर्म मुक्त कर लेना यह **मोक्ष** तत्त्व है । इन नव तत्त्वों का स क्षिप्त–विस्तृत ज्ञान स योग अनुसार करते रहना चाहिये और उनकी यथार्थ आगमानुसार श्रद्धा-निष्ठा भी रखनी चाहिये । क्यों कि इन तत्त्वों का सम्यग् ज्ञान और सम्यग् श्रद्धान होने पर ही सम्यक्त्व की उपलब्धि एव सुरक्षा स भव होती है और सम्यक्त्व के होने पर ही देशविरति एव सर्वविरति रूप स यम आचरण सफल होता है । अत: धर्मिष्ठ आत्माओं को इन तत्त्वों का ज्ञान अवश्य करना चाहिये ।

(४) औदारिक शरीर के ९ श्रोत स्थान अर्थात् छिद्रवाले स्थान है– दो कान, दो आँख, दो नासिका छिद्र, मुँह, मुत्रेन्द्रिय एव अपानद्वार (मलद्वार) । **(५)** ईशानेन्द्र के वढण लोकपाल के नव अग्रमहिषी है । ईशानेन्द्र की अग्रमहिषी की स्थिति ९ पल्योपम की होती है । ईशान देवलोक में परिग्रहीता देवियों की उत्कृट स्थिति ९ पल्योपम की होती है । जघन्य साधिक एक पल्योपम होती है । **(६)** लोका तिक देवसमूह (जाति) ९ है– १. सारस्वत २. आदित्य ३. वन्हि ४. वढण, ५. गर्दतोय ६. तुषित ७. अव्याबाध ८. आग्नेय–मढत ९. रिष्ट–अरिष्ट । **(७)** नव ग्रैवेयक देवोंके नाम– १. भद्र २. सुभद्र ३. सुजात ४. सोमनस ५. प्रियदर्शन ६. सुदर्शन ७. अमोघ ८. सुप्रतिबद्ध ९. यशोधर ।

(८) ग्रह नामक ज्योतिषी ८८ है उनमें शुक्र ग्रह ९ महाग्रहों में प्रसिद्ध है । २८ नक्षत्र है जिसमें अभिजित नक्षत्र का सीमा विस्क भ अत्यल्प होने से उसके सिवाय २७ नक्षत्रों के साथ यह शुक्र महाग्रह योग जोडता है, साथ चलता है । २७ में से प्रत्येक ३ के साथ एक प्रकार की वीथि से(मार्गाकृति–गमन विधि से) चलता रहे तो २७ के साथ

९ प्रकार की वीथि से चलता है ऐसा यहाँ सूत्र-७६ में कहा गया है । उन ९ वीथियों के नाम- १. अश्ववीथि, २. गजवीथि, ३. सर्पवीथि, ४. बैलवीथि,५. गोवीथि(गाय या अन्य पशु) । ६. उरग-अजगरवीथि, ७. घेटा-बकरावीथि, ८.मृगवीथि, ९. वैश्वानरवीथि ।

इसके अतिरिक्त अन्य आगम में आये अनेक विषयों का सूचन इस स्थान में है, यथा- ९ जीव के भेद और उनकी गतागति आदि, नक्षत्र, ज्योतिषी, बलदेव-वासुदेव-प्रतिवासुदेव, नवनिधि, पडिमा, प्रायश्चित्त, कूट, अ तर्द्वीप आदि। इनका वर्णन यथास्थान किया जायेगा।

स्थान-१०

प्रश्न-१ : इस स्थान का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस स्थान में १० की स ख्या से स ब धित अनेक विस्तृत एव स क्षिप्त सूत्र हक्त, जिसमें अन्य शास्त्रों में एव पूर्व स्थानों में आये विषय भी अनेक हक्त और नये विषय भी बहुत हक्त । उद्देशक विभाग बिना कुल १६२ सूत्र इस स्थान में है । इस शास्त्र का यह अ तिम अध्याय है ।

प्रश्न-२ : कितने तत्त्व लोक स्वभाव से होते हक्त, वे कौन कौन से हक्त ?

उत्तर- यहाँ प्रथम सूत्र में १० लोक स्वभाव के तत्त्व इस प्रकार कहे है- (१) जीव लोक में मरते रहते हक्त और जन्मते रहते हक्त, पुनः पुनः इसतरह जन्म-मरण करते ही रहते हक्त यह भी एक लोक स्वभाव है। (२) जीव निर तर(१० वें गुणस्थान तक) पापकर्म(पापक्रिया) करते रहते हक्त, सूक्ष्म या स्थूल रूप से पाप(कषाय या योगजनित)क्रिया जीव के सदा चालु रहती है । यह भी लोक स्वभाव है । (३) जीव मोहनीय कर्म का ब ध निर तर करते ही रहते हक्त यह भी लोक स्वभाव है । (४) लोक में स्थित जीव कभी अजीव नहीं बन जाते हक्त और अजीव कभी जीव नहीं बन जाते हक्त । अजीव को, पुद्गल को जीव ग्रहण करता है परिणमाता है और काला तर में छोड भी देता है, जीव के साथ रहने से अजीव में चेतना तत्त्व दिखता है पर तु वह जीव के अस्तित्व का है, जीव के निकल जाते ही वहाँ अजीव तत्त्व की स्वत त्रता हो जाती है । इस तरह जीव-अजीव में ग्राह्य-ग्राहकता होती है पर तु अजीव

जीव नहीं बनता है और जीव भी अजीव नहीं बनता है । जीव एक अजीव पुद्गलों में से निकल कर अन्य अजीव पुद्गलों को ग्रहण करके रहता है । (५) ऐसा कभी भी नहीं होता कि त्रसप्राणी समाप्त होकर सभी स्थावरप्राणी बन जाय अथवा स्थावर प्राणी समाप्त होकर सभी त्रस प्राणी बन जाय । यह भी लोक स्वभाव है कि दोनों तरह के प्राणी सदा रहते ही हक्त । (६) लोक कभी अलोक नहीं बनेगा और अलोक कभी लोक नहीं बनेगा अर्थात् लोक सदा लोक ही रहेगा और अलोक सदा अलोक ही रहेगा । यह भी लोक स्वभाव है । (७) लोक अलोक में प्रविष्ट होकर कभी नष्ट नहीं होगा और अलोक लोक में प्रविष्ट होकर कभी नष्ट-विलीन नहीं होगा, दोनों यथावत् रहेंगे । यह भी एक लोक स्वभाव है । (८) जहाँ जहाँ जीव है वहीं तक लोक है और जहाँ जहाँ लोक है वहीं तक जीव जाते रहते हक्त, यह भी एक लोक स्वभाव है । (९) जहाँ तक जीव-अजीव गमनागमन करते हक्त वहीं तक लोक है और जहाँ तक लोक है वहीं तक जीव और पुद्गल गति करते हक्त । (१०) लोका त में पहुँचते ही जीव और पुद्गल ढक्ष स्वभाव में परिणत हो जाने से वे लोका त में गमन नहीं कर सकते अर्थात् उनकी गति स्थगित हो जाती है ढक्षता से, धर्मास्तिकाय के अभाव से इत्यादि । १० की स ख्या के लक्ष्य से ये दस बोल लोक स्वभाव के यहाँ कहे है, अन्यत्र और भी अनेक अपेक्षा के लोक स्वभाव कहे गये है, इस प्रकार अनेकानेक लोक स्वभाव के तत्त्व है ।

प्रश्न-३ : देवलोक में देवों के चैत्यवृक्ष या कल्पवृक्ष क्या होते हक्त ?

उत्तर- इस सूत्र के आठवें स्थान में आठ व्य तर देवों के आठ चैत्यवृक्ष कहे हक्त और दस भवनपति देवों के दस चैत्यवृक्ष प्रस्तुत दसवें स्थान के सूत्र-७४ में कहे हक्त । तीसरे स्थान के सूत्र-२३ में कहा है कि अपने कल्पवृक्ष की का ति फीकी-झा खी लगने से देवों को अपने च्यवन(मृत्यु) होने का ज्ञान हो जाता है ।

इन वर्णनों से ऐसा ज्ञात होता है कि देवों की सुधर्मासभा के बाहर पृथ्वीकाय के चबूतरे सहित रत्नमय वृक्ष होते हक्त । भवनपति एव व्य तर जाति के देवों के इन वृक्षों को चैत्यवृक्ष कहा गया है। ये वृक्ष देवों के चित्त को आन दित करने वाले होने से चैत्यवृक्ष कहे जाते हक्त । भवनपति व्य तर देवों में इन सभी चैत्यवृक्षों के नाम जो पीपल आदि

कहे गये हक्त वे उन देवों के अपने पस दगी को प्रगट करते हक्त । वहाँ उन जाति के वे वृक्ष पृथ्वीकाय के होते हक्त और शाश्वत होते हक्त । तथा उन-उन देवों के मुकुट में एव वस्त्रों में भी अपने उस पस दगी के वृक्ष चिन्हित होते हक्त ।

ज्योतिषी वैमानिक देवों के चैत्यवृक्षों का कथन यहाँ नहीं आया है । उन देवों के च्यवन होने के ज्ञानस ब धी सूत्र में कल्पवृक्ष का कथन है । **च्यवन** रूप मरण शब्द प्रयोग शास्त्र में ज्योतिषी वैमानिक के लिये ही होता है । अत: यह स्पष्ट हुआ कि चारों जाति के देवों के ये वृक्ष होते है उसमें भवनपति-व्य तर देवों के वृक्ष को चैत्यवृक्ष कहा गया है और उनकी एक-एक वृक्षजाति(पीपल आदि) नाम भी होता है । ज्योतिषी वैमानिक के इन वृक्षों को मात्र कल्पवृक्ष कहा गया है, अत: उन सभी के एक ही जाति के कल्पवृक्ष रूप वृक्ष होते है । ये भी रत्नों की अद्भुत का ति शोभा से युक्त होते है और उन देवों को परम आह्लादकारी होते हक्त । स्थान ३-१-३२ में चैत्यवृक्ष चलित होना कहा है। ३-३-२३ में **कप्पढक्खग मिलायमाण** कहा है, यहाँ की व्याख्या-टीका में लिखा है कि **कप्प ढक्खग ति चैत्यवृक्ष ।**

मृत्यु समय में देवों के अपने अपने इन वृक्षों की, शरीर की और वस्त्राभरणों की का ति-शोभा मुरझाई हुई दिखती है अर्थात् चमक फीकी लगने लगती है । दश भवनपति के दश चैत्यवृक्षों के नाम क्रमश: इस प्रकार है-(१) अश्वस्थ(पीपल) (२) सप्तपर्ण (३) शाल्मली (४) उम्बर (५) शिरीष (६) दधिपर्ण (७) अशोक(ब जुल) (८) पलाश (९) लाल एर ड (व्याघ्र) (१०) कनेर ।

प्रश्न-४ : मानव के सुख कितने प्रकार के कहे गये हक्त ?

उत्तर- इस दसवें स्थान में १० प्रकार के सुख कहे गये हक्त, यथा- (१) आरोग्य (२) दीर्घायु (३) ऋद्धिम त (४) कामसुख (५) भोगसुख (६) स तोष (७) उपलब्धि (८) सुखभोग (९) निष्क्रमण-दीक्षा का स योग (१०) अव्याबाधसुख मुक्ति की प्राप्ति ।

यहाँ प्रथम सुख आरोग्य कहा है । शरीर का स्वस्थ रहना, उसमें किसी प्रकार के रोग या पीडा का न होना, आरोग्य कहलाता है । शरीर का निरोगी होना सब सुखों में श्रेष्ठ कहा गया है, क्यों कि जब शरीर निरोगी होगा तब ही आगे के नौ सुख प्राप्त किये जा सकते हक्त । शरीर के

आरोग्य बिना दीर्घायु, विपुल धनस पत्ति तथा विपुल भोगसामग्री सुख रूप प्रतीत नहीं होते । सुख के साधन तथा उत्तमोत्तम भोजन भी रोगी को दु:ख रूप प्रतीत होते हक्त । शरीर के आरोग्य बिना धर्म ध्यान होना तथा स यम सुख या मोक्ष सुख का प्राप्त होना भी अस भव सा बन जाता है। इसलिये शास्त्रकारों ने दस सुखों मे शरीर की नीरोगता रूप सुख को प्रथम स्थान दिया है । व्यवहार में भी ऐसा कहा जाता है कि- **पहला सुख निरोगी काया** । अत: सब सुखों में आरोग्य सुख प्रधान है ।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-२३ में केशीस्वामी को उत्तर देते हुए गौतमस्वामी ने कहा- **सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ॥ जा उ अस्साविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी । जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥** इस कथन का तात्पर्य है कि मानव शरीर नावा है, जीव नाविक है, स सार समुद्र पार करना है । निश्छिद्र नावा ही समुद्र पार करा सकती है, छिद्रों वाली नावा से समुद्र पार करना अशक्य सा होता है । वैसे ही यहाँ पर शरीर का स्वस्थ होना ही निश्छिद्र नावा के समान है, रोगी होना छिद्र वाली नावा समान है । अत: स सार समुद्र पार करने के लिये शरीर का निरोग होना आवश्यक है। अत: स यम साधना, धर्म आराधना के साथ प्रत्येक साधक को शारीरिक स्वास्थ्य के लिये खान-पान, रहन-सहन का विवेक व्यवहार ज्ञान भी होना आवश्यक है ।

रोग आने के ९ कारण नवमें स्थान के प्रश्न-४में वर्णित है । उसका ध्यान से अध्ययन करके धर्म साधकों को अपना खाना, सोना, जागना, विहार आदि क्रियाओं में सर्वत्र विवेक एव मर्यादा का ध्यान रखना चाहिये । उस प्रश्नोत्तर का सार भी यही है कि अति खाना, विरोधी खाना, अति सोना, अति जागरण, अति विहार आदि रोगोत्पत्ति के कारण बनते हक्त । अत: जैसे प्रथम सुख निरोगी काया है तो निरोगी रहने में भी प्रथम विवेक खान-पान का है । व्यक्ति कम खाने से बिमार नहीं होता पर तु ज्यादा खान-पान से ही बीमारियों को निम त्रण दिया जाता है । अत: मोक्ष साधकों के जीवन में खान-पान विवेक एव तप त्यागमय आचरण, मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य में म जिल की सफलता प्राप्त कराने में परम उपयोगी सिद्ध होता है ।

यहाँ दस की स ख्या के लक्ष्य से 'काम' 'भोग' और सुखभोग

तथा उपलब्धि इन्हें ४ विभागों में गिना गया है । इनका एक ही वाक्य में तात्पर्य यह है कि- कामभोग सुख सामग्री की प्राप्ति होना वह भी प्राणी के सा सारिक सुखी जीवन का एक अ ग गिना गया है । इसके अतिरिक्त यहाँ पर स यम ग्रहण को भी एक सुख में गिना गया है जो स सार के सुखों की अपेक्षा इस जीवन का सर्वोच्च आत्मसुख है, उसी के सम्यग् आराधन से आगे का दसवाँ बोल रूप अव्याबाध सुख की अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है । **स तोषी सदा सुखी** की कहावत भी लोक में प्रचलित है, और यहाँ भी स तोष को दस सुखों में गिनाया गया है । अत: प्रत्येक साधक को भौतिक साधनों की एव खान-पान, सुख-सामग्री की उपलब्धि में अत्यधिक स तुष्ट-अल्पेच्छा वाला रहना चाहिये, क्यों कि स तोषी रहना ही उत्तम दर्जे का सुख है ।

प्रश्न-५ : शस्त्र के कितने प्रकार कहे गये हक्त ?

उत्तर- जीव को पीडा पहुँचाने वाले, प्राण रहित करने वाले, सचित्त वस्तु को अचित्त करने वाले पदार्थ एव आत्मा को कर्मब ध के द्वारा क्लेशित-द डित करने वाले यहाँ शस्त्र की स ज्ञा से कहे गये हक्त । इसमें द्रव्य और भावशस्त्र दोनों मिलाकर कुल दस शस्त्र कहे हक्त । तलवार, ब दूक, भाला, चाकू-छुरी ये हथियार रूप शस्त्र हे । लोक व्यवहार में इन्हें शस्त्र समझा और कहा जाता है, अत: दस प्रकारों में इनके सिवाय को शस्त्र शब्द से कहा गया है । (१) अग्नि शस्त्र- यह सचित्त अचित्त सभी पदार्थों को जलाकर नष्ट कर देती है । (२) विषशस्त्र- जहरीले खाद्यपदार्थ । (३) लवणशस्त्र- वनस्पति आदि को या प चेंद्रिय शरीर को लवण गालने वाला, नष्ट करने वाला होता है । (४) स्नेहशस्त्र- घृत आदि पदार्थ भी त्रस जीवों के मारक है । घृत का अ श भी मक्खी आदि प्राणी के प ख, शरीर पर लग जाय तो वह प्राय: मर जाते हक्त । वनस्पति पृथ्वी आदि के जीवों के लिये भी स्नेहिल पदार्थ शस्त्र का कार्य करते हक्त, उन्हें अचित्त बना देते हक्त । (५) क्षारशस्त्र- सज्जीखार, काष्टिकक्षार, राख आदि क्षार पदार्थ हक्त । ये भी सजीव पदार्थों के लिये शस्त्र का काम करते हक्त, सचित्त को अचित्त बना देते हक्त । (६) अम्लशस्त्र- खट्टे पदार्थ आँवला, छाछ, इमली, नींबू आदि भी पानी वगैरह के जीवों के लिये शस्त्र रूप अर्थात् अचित्त बना देने वाले होते हक्त । (७-९) दुष्प्रयुक्त मन, वचन, काया-अशुभ योग ये आत्मा के लिये भावशस्त्र

हक्त (१०) अविरति- व्रत-प्रत्याख्यान ग्रहण नहीं करने रूप **अविरति भाव** यह दसवाँ आत्मभाव शस्त्र है । यों कुल १० में से ६ द्रव्य शस्त्र प्रार भ में कहे हक्त । अ तिम चार भाव शस्त्र कहे हक्त । अत: मन, वचन और काया को शुभ में केंद्रित करने से, अशुभ की और जाते हुओं का निग्रह करने से वे मन, वचन, काया आत्मा के लिये शस्त्र रूप नहीं बनते हक्त । क्यों कि यहाँ दुष्प्रयुक्त विशेषण युक्त मन आदि कहे हक्त ।

धर्म श्रवण आदि के द्वारा आत्मा को स स्कारित करके, अविरति भावों को समझकर, विरति भावों में आ जाना चाहिये अर्थात् व्रत, त्याग, प्रत्याख्यान की ढचि बढाकर देश विरति या सर्व विरति रूप श्रावक-साधु जीवन की साधना में आगे से आगे बढते रहना चाहिये । तब अशस्त्रभूत स यम तप के आश्रय में पहुँची हुई आत्मा मृत्यु जय होकर सदा के लिये अजर-अमर स्थान ऐसे मोक्षगति को प्राप्त कर लेती है ।

प्रश्न-६ : दान कितने प्रकार के कहे गये हक्त ?

उत्तर- यहाँ दस प्रकार के दान बताये गये हक्त । वे इस प्रकार है- (१) अनुक पा दान- कढणाभाव से जीवों को सुख पहुँचाना या कुछ देना। दीन-अनाथ, र क, आपत्तिग्रस्त एव रोगी वगैरह को उनके आवश्यक इच्छित पदार्थ दया भाव से देना यह अनुक पा दान है ।अनुक पा यह जीव का शुभ गुण है और समकित का व्यावहारिक मुख्य लक्षण है । (२) समूह दान- जलप्रकोप, भूक प, दुष्काल, महामारी रोगातक आदि से ग्रसित अनेक लोगों की सामुहिक सेवा सहकार रूप दान को समूह दान कहा गया है । (३) भय दान- किसी के भय से दिये जाने वाला दान । (४) शोक-काढण्य दान- माता-पिता आदि पारिवारिकजनों के शोक से मृतभोजन वगैरह रूप से दिया जाने वाला दान । (५)लज्जा दान- लोक लज्जा से, रिवाज से दिया जाने वाला लोक दिखाउ दान या देखा-देखी दान । (६) यश के लिये या बडप्पन दिखाने के लिये दिया जाने वाला दान **गौरव दान** है । (७) अधर्म दान- पाप रूप दान । अधर्म प्रेरित होकर दिया जाने वाला हिंसा रूप, कुशील रूप दान । पापी अधर्मी लोगों के सन्मान रूप दिया जाने वाला दान । ऐहिक चाहना या स्वार्थमूलक दिया जाने वाला दान **अधर्म दान** है । (८) धर्म दान- मोक्ष मार्ग आराधना हेतु दीक्षा दान, दीक्षा सहाय दान, श्रमणों को दिया जाने वाला निर्दोष आहारादि १४ प्रकार का दान

आदि **धर्मदान** है । धर्माराधना के सहयोगी उपकरण आदि का, शय्या स्थान आदि का श्रावकों को, स घ आदि को समर्पण करना, चतुर्विध स घ के धर्माराधन में सहयोगी बनने रूप उदारवृत्ति रखना, यह भी **धर्मदान** है अर्थात् मोक्षाराधना में लगे धर्मी पुढषों के सहयोगी बनने रूप समस्त दान धर्मदान है । **(९)** करिष्यति दान– भविष्य में अपने सहाय की अपेक्षा रख कर दिया जाने वाला दान । **(१०)** कृतज्ञता दान– किसी के उपकार को याद करके उसे दिया जानेवाला दान ।

इन दानों में शुभ-अशुभ, अच्छे-खराब, हेय-उपादेय सभी प्रकार के दानों का स ग्रह १० की स ख्या में किया है । इनका स्वरूप समझकर श्रेष्ठ दानों को अपनी योग्यता अनुसार स्वीकार करना चाहिये ।

प्रश्न–७ : दस प्रत्याख्यान कौन-कौन से होते हक्त ?

उत्तर– नवकारसी से दिवसचरिम प्रत्याख्यान पर्यंत के दस प्रत्याख्यान आवश्यक सूत्र के छट्ठे प्रत्याख्यान आवश्यक में कहे गये हक्त । यहाँ पर प्रत्याख्यान के अन्य दस प्रकार अपेक्षा से कहे गये हक्त– (१) अष्टमी पक्खी के उपवास आदि प्रत्याख्यान को कोई कारण से पहले कर लेना **अनागत प्रत्याख्यान** है ।(२) वैसे ही उन्हें बाद में करना **अतिक्रा त** प्रत्याख्यान है । (३) उपवास, बेला आदि निर तर वर्षभर या आजीवन करना यह **कोटिसहित प्रत्याख्यान** अर्थात् पारणा के बाद तुर त उपवास, यों लडी युक्त स लग्न तप । (४) निश्चित्त दिन ही बिना छूट-छाट के तप कर लेना **निय त्रित प्रत्याख्यान** है ।(५) प्रत्याख्यान के पाठ में रहे आगारों का सेवन युक्त तप करना या अन्य भी कोई जरूरी आगार रखकर तप करना, **सागार प्रत्याख्यान** है ।(६) प्रत्याख्यान के पाठ में कहे गये आगार या अन्य आगारों का सेवन नहीं करते हुए तपस्या करना **अनागार प्रत्याख्यान** है। (७) दत्ति स ख्या, द्रव्य स ख्या आदि परिमाण निश्चित एव स क्षिप्त करके ऊणोदरी वगैरह तप करना **परिमाण कृत प्रत्याख्यान** है। (८) चारों प्रकार के आहार का या किसी पदार्थ का स पूर्ण त्याग करना **निरवशेष प्रत्याख्यान** है। (९) स केत प्रत्याख्यान– गा ठ खोलू नहीं जब तक, अ गूठी नहीं निकालू तब तक, तीन नवकार नहीं गिनु तब तक चारों आहार का त्याग करना, **स केत प्रत्याख्यान** है। (१०) अद्धाप्रत्याख्यान– नवकारसी के सिवाय पोरसी आदि छट्ठे आवश्यक वाले प्रत्याख्यान करना, यह अद्धा प्रत्याख्यान अर्थात् समय

मर्यादा वाले प्रत्याख्यान कहे गये हक्त । उपवास से लेकर ६ मासखमण पर्यंत तप भी **अद्धा प्रत्याख्यान** है ।

प्रश्न–८ : इस दसवें स्थान में अनेक शास्त्रों के या अध्ययनों के नाम किस प्रकार गिनाये हक्त ?

उत्तर– दस की स ख्या को आधार बनाकर जिनशास्त्रों में १० अध्ययन है उन शास्त्रों का यहाँ नाम निर्देश किया गया है साथ ही उन सभी (दसों ही) शास्त्रों के अध्ययनों के नाम भी दर्शाये गये हक्त । वे शास्त्र इस प्रकार है– (१) कर्मविपाक दशा– इस शब्द से दु:खविपाक सूत्र का कथन किया गया है ।सुखविपाक के अध्ययनों का कथन यहाँ कोई भी कारण से नहीं है । क्यों कि दस अध्ययन वाले दस ही शास्त्र यहाँ दस की स ख्या के अनुढप कहे गये हक्त । अत: दस अध्ययन वाले अन्य दशवैकालिक, सुखविपाक सूत्र वगैरह शास्त्र भी होते ही हक्त । (२-५) उपासक, अ तगड, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण सूत्र ये चारों अ गशास्त्र है ।(६) आचारदशा– यह दशाश्रुतस्क ध का अपरनाम है । (७) ब धदशा (८) दोगिद्धिदशा (९) दीर्घदशा (१०) स क्षेपिक दशा ।

अध्ययनों के नाम :– दशों शास्त्रों के दस-दस अध्ययनों के नाम सूत्र–१०३ से ११२ तक में स्पष्ट है । जिसमें– (१) उपासकदशा सूत्र (२) दशाश्रुत स्क ध के नाम विवाद रहित आज भी उपलब्ध है ।(३) दु:खविपाक सूत्र के नामों में से अ तिम तीन नामों में भिन्नता है, यह भिन्नता अनेक नामों के कारण या अध्ययन के नामकरण के आशय की भिन्नता से है, ऐसा व्याख्याकारों ने स्पष्ट किया है । (४) अ तगड सूत्र के दस नाम पूर्णत: अन्य ही है । उसका कारण अज्ञात है । (५) अनुत्तरोपपातिक सूत्र– इसमें २–३ नाम में साम्यता है, शेष नाम अन्य है । वर्तमान में उपलब्ध इस शास्त्र में तीन वर्ग है । पहले, तीसरे वर्ग में दस-दस अध्ययन है, दूसरे वर्ग में १३ अध्ययन है, कुल ३३ अध्ययन है, जब कि प्रस्तुत प्रकरण में मात्र १० अध्ययनों के नाम हक्त और वर्ग विभाग का कथन नहीं है । इस विभिन्नता का कारण भी अज्ञात है । (६) प्रश्नव्याकरण सूत्र के दस नाम जो लिखे है, वे स पूर्णत: अन्य है, वर्तमान में ५ आश्रव, ५ स वर स्थान रूप अध्ययन नाम है और नाम के अनुरूप ५ पाप और ५ महाव्रतों का वर्णन है । प्रस्तुत सूत्र कथित १० अध्ययन नाम वाला प्रश्नव्याकरण सूत्र देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के

समय तक उपलब्ध रहा होगा । बाद में विद्याओं के कारण इस शास्त्र के मौलिक अध्ययनों को हटाकर नये १० अध्याय रखे गये हक्त ऐसा उपलब्ध आगम से इतिहास चि तकों का मार्गदर्शन मिलता है । ये दस अध्ययन के नाम जो यहाँ है वे न दी में तथा समवायाँग सूत्र में भी मिलते हक्त । अतः वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र स पूर्ण नया है, जिसे पूर्वधरों ने मिलकर निर्णित किया है ऐसी पर परा मान्य है । पूर्व में रहे प्रश्नव्याकरण के विद्याओं सिवाय के विषयों के स कलन से दो शास्त्र बने हक्त– (१) उत्तराध्ययन सूत्र (२) ऋषिभाषित सूत्र । इन दोनों सूत्रों के नाम न दी सूत्र में मिलते हक्त । ऋषिभाषित सूत्र भी प्रकाशित उपलब्ध होता है । जिसमें ४५ उपदेशी अध्ययन हक्त । उत्तराध्ययन में ३६ उपदेशी अध्ययन हक्त । किसी कारणवश या अनुपलब्धि के कारण ऋषिभाषित सूत्र को आगम स ख्या ३२ या ४५ में नहीं स्वीकारा गया है । (७–१०) ये चार सूत्रों के नाम अन्य किसी शास्त्र में नहीं है । न दीसूत्र में दसवें सा क्षेपिक दशा सूत्र के दस अध्ययनों के नाम दस स्वत त्र शास्त्र के नाम से आज भी मिलते हक्त । उसी प्रकार उपा गसूत्र नामक शास्त्र के ५ वर्गों के नाम भी ५ शास्त्र रूप में न दी में मिलते है, न दी की कोई प्रतो में ६ वर्ग के नाम से ६ शास्त्र नाम भी मिलते हक्त ।

तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत में कथित सातवाँ आठवाँ नववाँ तीन शास्त्र न दी सूत्र में नहीं है, दशवें सूत्र के १० अध्ययनों के नाम न दी में है, शास्त्र का नाम नहीं है । सातवें **ब धदशा शास्त्र** के सातवें आठवें अध्ययन का नाम **भावना और विमुक्ति** है । वे दोनों अध्ययन लेखनकाल में या उसके पूर्व में कभी भी आचारा ग के अ तिम अध्ययन रूप में रख दिये गये हक्त। जो आज भी आचारा ग सूत्र में उपलब्ध है ।

इस प्रकार यहाँ वर्णित ये दश शास्त्र और उनके अध्ययनों के नामों की गहन विचारणा से यह फलित होता है कि शास्त्र लेखन समय में पूर्वधरों की पारस्परिक विचारणा से, योग्य स शोधन–स पादन भी अधिकार पूर्वक किया गया है । कुछ शास्त्र विच्छिन्न भी हुए हक्त और कुछ के नामों में मतिभ्रम और लिपिदोष भी हुआ है ।

प्रश्न–९ : अपने भविष्य को सु दर बनाने के लिये किन-किन सावधानियों का एव कर्तव्यों का ध्यान रखना चाहिये ?

उत्तर– दस की स ख्या के अनुस धान में यहाँ सूत्र–१२५ में ऐसे ही दस

कर्तव्यों का कथन किया गया है, यथा– **(१)** निदान नहीं करना– सयम-तप के फल रूप भौतिक सुख समृद्धि की स कल्प पूर्वक चाहना– मा गणी नहीं करना । तप-स यम की साधना को भौतिक सुखों के लिये दाव पर नहीं लगाना। **(२)** देव गुढ धर्म एव शास्त्रों के प्रति अपनी दृष्टि, विचारणा सम्यग् रखना । जीवन में सदा सम्यग्दृष्टि को सुरक्षित रखते हुए सुदृष्टि स पन्न रहना, उसमें विकृति नहीं होने देना । **(३)** लिये हुए नियम-व्रतों का शुद्ध, परिपूर्ण पालन करना । **(४)** कष्ट उपसर्गों को क्षमाभाव के साथ सहन करना। **(५)** इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होकर इन्द्रिय स यम रखना; शब्द रूप आदि पाँच इन्द्रिय विषयों में आसक्ति नहीं रखना, जितेन्द्रिय बनना । **(६)** माया-कपट रहित सरल स्वभावी रहना । **(७)** व्रत-नियमों में स यम शिथिलता–पासत्थापन नहीं करना । **(८)** सयम का श्रेष्ठ यथार्थ पालन करना । **(९)** जिनशासन के प्रति परम आदरभाव, भक्तिभाव, अहोभाव रखना। **(१०)** जिनशासन की प्रभावना करना, उसे दीपाना, अनेक लोगों को धर्मानुरागी, जिनानुयायी, धर्मप्रेमी, व्रतनिष्ठ बनाना । इन दस गुणों में से एक या अनेक गुणों से स पन्न व्यक्ति अपना भविष्य सु दर सुखद बनाने वाला होता है ।

प्रश्न–१० : साधु-स तों की, ऋषि महात्माओं की आशातना करने वाला किस प्रकार नष्ट-विनष्ट, भस्मीभूत होता है ?

उत्तर– त्यागी–तपस्वी यथार्थ श्रमण-माहन की आशातना से जीव अशुभ कर्मों का ब ध करके उनके फलस्वरूप स्वतः नष्ट-विनष्ट होता है । दुर्गतिगामी बनकर दुःख स सार की वृद्धि करता है । कभी कोई मुनि के कोप का भाजन बनकर भस्मीभूत हो जाता है अथवा कोई देव उसे ऐसा कृत्य करते देखकर ढष्ट होकर भस्मीभूत कर सकता है, उपद्रवित पीडित कर सकता है । कभी कोई का रोष भाजन नहीं बने तो भी अपनी भवपर परा दुःखपर परा वृद्धि कर दुर्गतिगामी बनता है, अपार अशुभ कर्मों का स ग्रह कर लेता है । प्रस्तुत में अपेक्षा से १० प्रकार से दुःखी भस्मीभूत होने का कथन किया गया है– (१)आशातना से कुपित मुनि तेजोलब्धि से तत्काल भस्मीभूत कर सकता है । (२) देव कुपित होकर तेजोलेश्या से तत्काल भस्म कर सकता है । (३) मुनि और देव दोनों के परिकुपित होने पर दोनों के द्वारा तेजोलेश्या फेंक कर भस्म किया जाता है । (४-५) मुनि या देव के द्वारा तेजोलेश्या प्रयोग से गूमडे

उत्पन्न होकर फिर उन फोडों के फूटने पर वह विनष्ट हो जाता है । (६) दोनों के द्वारा तेजोलेश्या प्रयोग से फोडों के फूटने पर विनष्ट होता है। (७-९) मुनि, देव और दोनों के द्वारा तेजोलेश्या प्रयोग से फोडे उत्पन्न होते हक्त, उनके फूटने पर फु सिया उत्पन्न होती है और उनके फूटने पर वह आशातना करने वाला सड-सड कर नष्ट-विनष्ट एव भस्मीभूत बनता है। (१०) कोई आशातना करते हुए स्वय तेजोलब्धि मुनि पर फेंके तब वह तेजोलेश्या मुनि के तप तेज प्रभाव से उनके शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकती है, ढक जाती है । तब वह लेश्या मुनि का अभिवादन करके प्रदक्षिणा करके उपर आकाश में चली जाती है फिर लौट कर फेंकने वाले के शरीर में प्रवेश करके जलन-जलन पैदा करके उसे ही भस्मीभूत कर देती है ।

इस प्रकार यहाँ तीव्र आशातना का, द्वेष युक्त व्यवहार का लब्धि द्वारा दुष्परिणाम दर्शाया गया है । लब्धि स योग न होवे तो वह स्वकृत कर्मब ध के फल से स्वत: दु:खी बनता है, दुर्गतिगामी बनकर, भव पर परा-स सार भ्रमण बढा लेता है ।

प्रश्न-११ : अच्छेरे होने का क्या तात्पर्य है और वे कौन से तथा कब, कहाँ हुए हक्त ?

उत्तर- लोक स्वभाव से जो कृत्य प्राय: नहीं होने योग्य होते है वे अन त काल से कभी कदाचित् हो जाय, उन्हें अच्छेरे कहा गया है । लोक व्यवहार में भी कभी अनहोनी घटनाएँ बन जाती है उन्हें आश्चर्यकारी घटना कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में भी अन तकाल से कभी-कदापि होने वाली अनहोनी घटना-बनाव को आश्चर्य-अच्छेरे के नाम से कहा गया है और यहाँ १० की स ख्या के प्रास गिक ऐसे १० अच्छेरों का निरूपण स क्षिप्त शब्दों में किया गया है । उन घटनाओं का विस्तृत स्पष्टीकरण व्याख्याकारों ने स कलित स पादित किया है । जिनका भावार्थ इस प्रकार है-

(१) उपसर्ग- सामान्यतया पुण्यशाली केवली तीर्थंकरों को उपसर्ग नहीं आते हक्त तथापि भगवान महावीर स्वामी को १४ वर्ष की केवली पर्याय होने पर भी गौशालक द्वारा उपसर्ग हुआ था ।जो पूर्व प्रश्न-१० में दर्शायी गई दसवीं आशातना और उसके परिणाम रूप बनाव बना था ।जिससे गौशालक स्वय अपनी ही फेंकी गई लेश्या के पुन: अपने

शरीर में प्रवेश करने पर सातवें दिन मर गया था और तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ६ महीने तक उस लेश्या की झापट से तनिक ढग्ण बने रहे थे । ६ महीने बाद स्वस्थ होकर फिर साडे प द्रह वर्ष विचरण किया था । उस विस्तृत घटना का वर्णन भगवती सूत्र, शतक-१५ में है ।

(२) गर्भहरण- भगवान महावीर दसवें देवलोक से आयुष्य पूर्ण कर देवान दा ब्राह्मणी के गर्भ में आये थे । वहाँ ८२ रात्रि व्यतीत होने के बाद ८३ वें दिन हरिणेगमेषी देव ने वहाँ से भगवान का स हरण करके त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में रखा था । यह कथन आचारा ग सूत्र के भावना अध्ययन में है। **(३) स्त्री तीर्थंकर-** उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ भगवान स्त्रीशरीर में थे । मल्लिभगवती का विस्तृत जीवन वर्णन श्री ज्ञातासूत्र के आठवें अध्ययन में उपलब्ध है । शास्त्र के इस स्पष्ट वर्णन को भी दिग बर जैन विद्वान अस्वीकार करके मल्लिनाथ भगवान को पुढष मानते हक्त यह उनकी आगम स ब धी उपेक्षा है ।

(४) अभावित परिषद्- तीर्थंकर प्रभु के प्रवचन में कोई भी व्रत-प्रत्याख्यान या दीक्षा प्रस ग अवश्य होता है कि तु भगवान महावीर की प्रथम देशना-प्रथम प्रवचन में मात्र देव ही पहुँचे थे और देव कोई व्रत धारण नहीं कर सकते । अत: उसे **अभावित परिषद्** कहा गया है ।**(५) दो वासुदेवों का** श ख द्वारा मिलन या कृष्ण वासुदेव का अन्य वासुदेव के राज्य की अमरक का नगरी में जाना । यह वर्णन ज्ञातासूत्र के १६ वें अध्ययन में विस्तार से किया गया है । **(६) चद्र-सूर्य अवतरण-** भगवान महावीर स्वामी के स थारे की अचानक ज्ञात हो जाने से व्यग्रता के कारण सम्यग्दृष्टि च द्र-सूर्य दोनों इन्द्र अपने भ्रमणशील शाश्वत विमान सहित पृथ्वी पर पहुँच गये थे। सामान्यतया देव मनुष्यलोक में आने के लिये अपने यान-विमान से या विकुर्वित विमान से आते हक्त कि तु सूर्य-च द्र दोनों इन्द्र कार्तिक वदी अमास को एक साथ आकाश में परिक्रमा करते हुए भरतक्षेत्र की सीमा को उपर से पार करते हुए भगवान महावीर के स थारे की नगरी के सीध से निकल कर शाम को आगे बढ रहे थे कि उनके शरीर में अ ग स्फुरणा होने से, अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से, भगवान के स थारे की जानकारी होने पर, अत्य त निकट में ही होने से, व्यग्रता और उपयोग शून्यता से, देव विधि को भूलकर च द्र-सूर्य दोनों अपने मूल विमान

सहित उस नगरी के उपर आकाश में विमान को रोककर, स्वय दोनों अपने अपने विमान से उतर कर भगवान के समवसरण में उपस्थित हुए थे । स ध्या का समय था कुछ समय भगवान की पर्युपासना की, पर्षदा में बैठे, प्रवचन सुना और पुन: विमानों को लेकर यथास्थान पहुँचकर पुन: पूर्ववत् परिक्रमा में चलने लगे । नगरी से जाने के समय उस क्षेत्र का सूर्यास्त समय हो चुका था । विमानों का नगरी में उपर ही स्थित रहने से दिन जैसा बना रहा और चले जाने पर अचानक शीघ्र अमावश की रात्रि का स ध्या समय प्रार भ हो गया था । उस समय मृगावती आर्या भी अपने साध्वी समूह के साथ समवसरण में थी । सूर्य विमान के वहाँ होने से सूर्यास्त का ज्ञान नहीं हो सका । अचानक स ध्या समय हुआ जानकर मृगावतीजी आर्या शीघ्र वहाँ से निकलकर अपने उपाश्रय में च दना आर्या के सा निध्य में पहुँच गई थी । देरी से आने के कारण उपाल भ भी सुनना पडा था । उसी उपाल भ और भूल की विचारणा में रात्रि के समय सभी के निद्राधीन हो जाने पर भी मृगावती धर्म जागरणा करती रही थी । उसी जागरणा में अमावश की अ धेरी रात्रि में उसे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था । च दना आर्या के पास से सर्प को जाते हुए ज्ञान से देखा और उनका हाथ सर्प के चलने के रास्ते में होने से मृगावती ने हाथ उठाकर ठीक से रख दिया, सा प चला गया कि तु च दना आर्या की निद्रा भ ग हो गई, वह उठ गई; हाथ उठाने का कारण पूछा । मृगावती के सत्य उत्तर-प्रत्युत्तर से मालुम पडा कि इसे केवलज्ञान हो गया है, तब च दना आर्या को भी शुभ अध्यवशायों से क्रमश: आगे बढते हुए केवलज्ञान उत्पन्न हो गया । उसी रात्रि में अ तिम प्रहर के अ तिम विभाग में भगवान महावीर स्वामी निर्वाण पधारे और गौतम स्वामी को भी उसी दिन केवलज्ञान केवल-दर्शन उत्पन्न हुआ । कार्तिक सुदी एकम के दिन ६४ ही इन्द्र अपने देव देवी समूह के साथ आये । भगवान के पार्थिव देह का अ तिम स स्कार, दाह स स्कार, निर्वाण महोत्सव मनाकर चले गये । उपरोक्त समस्त वर्णन व्याख्या ग्र थों, इतिहास ग्र थों में अन्य अन्य तरह से मिलता है । उन सभी का परिप्रेक्षण कर स क्षिप्त सार रूप में यहाँ सूचित किया है ।

(७) हरिव शकुलोत्पत्ति– सामान्यतया युगलिक मनुष्यों की व श पर परा, व श विस्तार नहीं होता है । हम दो और हमारे दो की व्यवस्था

ही चलती है अर्थात् प्रत्येक युगलिक के उम्र के ६ महीना शेष रहने पर दो स तान पुत्र-पुत्री होते हक्त और वे ही बडे होने पर पति-पत्नि रूप व्यवहार करते हक्त । फिर वे भी दो स तान को जन्म देकर ६ महीने बाद मर जाते हक्त । इस प्रकार व श-विस्तार नहीं होकर दो की पर परा ही चलती है । एक बार हरिवर्ष क्षेत्र के हरि-हरिणी नामक युगलिक को एक वैरी देव ने उठाकर भरत क्षेत्र में च पानगरी में रख दिया और उन्हे राजा-राणी बनाने की व्यवस्था करके चला गया । फिर उस राजा के अन्केक स तति पर परा चली ।उसका व श हरिव श रूप में विख्यात हुआ । देव ने पूर्वभव के वैर के फलस्वरूप युगलिक को दु:खी करने के लिये यह तरीका अपनाया था। क्यों कि युगलिक क्षेत्र स्वभाव से वहाँ उसे दु:ख नहीं पहुँचाया जा सकता था और वहाँ से मरकर भी वह युगलिक मनुष्य देव बनेगा तो अपने से बडा देव बनने से उसे वहाँ भी दु:ख नहीं पहुँचा सकूँगा । ऐसा जानकर शत्रु देव ने युक्ति निकाली और शरीर की अवगाहना छोटी करके भरत क्षेत्र में लाकर राजा बना दिया और मद्य-मा साहारी भी बना दिया, जिससे वह राजा मरकर नरक में गया । इस प्रकार देव ने अपना वैर पूर्ण किया । कि तु लोक में यह अनहोनी घटना बन गई कि युगलिक का इस प्रकार परिवर्तन हुआ, हरिव श पर परा चली । यह समस्त वर्णन भी व्याख्याग्रंथों में मिलता है ।

(८) चमर उत्पात– चमरेन्द्र ने देव रूप जन्म धारण करते ही शक्रेंद्र के साथ द्वेषभाव रखकर अकेला ही उनका अपमान करने के लिये पहले देवलोक में पहुँच गया। उसके सामानिक देवो ने मना भी किया कि तु वह जन्मते ही अपनी ऋद्धि के गर्व में नशे में चूर हो गया और भगवान महावीर स्वामी का शरण लेकर गया । कि तु शक्रेंद्र के बल के सामने हार खाकर वापिस आना पडा । इस प्रकार चमरेंद्र ने प्रथम देवलोक में जाने के लिये महान उत्पात किया था । १ लाख योजन का राक्षसी रूप बनाया था । इस घटना को यहाँ सूत्र में **चमरोत्पात** कहा गया है । इसका विस्तृत वर्णन भगवती सूत्र शतक–३ में है । यह भी अनहोनी घटना हुई थी इसलिये यहाँ १० आश्चर्य में इसे कहा गया है।

(९) **एक समय में उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष वालों का एक साथ १०८ सिद्ध होना**– भगवान ऋषभदेव के निर्वाण के समय यह घटना बनी थी । भरत-ऐरावत दोनों क्षेत्र के तीर्थंकर, भरत-बाहुबली

को छोडकर शेष ९८ भाई तथा ऋषभदेव भगवान के ८ पौत्र ये कुल २+९८+८=१०८ एक सूक्ष्म समय में साथ में मोक्ष पधारे । इन सभी की अवगाहना सरीखी थी, उम्र हीनाधिक थी जो एक साथ समाप्त हो गई थी । यह गणित भी पर परा से प्राप्त है । सामान्यतया ५०० धनुष की अवगाहना वाले एक समय में उत्कृष्ट २ ही सिद्ध हो सकते हक्त ।

(१०) **अस यमी पूजा**– नववें तीर्थंकर से लेकर प द्रहवें तीर्थंकर के शासन में तीर्थ का विच्छेद हुआ अर्थात् उनके शासन काल में साधु-साध्वी की पर परा अविच्छिन्न नहीं चली, बीच-बीच में विच्छिन्न हुई थी । यों कुल सात तीर्थंकरों के शासन में साधु-साध्वी के अभाव में अस यतियों द्वारा धर्म चलाया गया । तब उन अस यतियों को स यती जैसा मान-सन्मान पूजा-प्रतिष्ठा का व्यवहार प्राप्त हुआ था । सामान्य रूप से हमेशा २४ तीर्थंकरों का शासन अविच्छिन्न रूप से चलता है । इस अवसर्पिणी में ही शासन विच्छेद की घटनाएँ बनी थी । इसी के अ तर्गत भगवान महावीर के शासन में भी मध्यकाल में अस यती पूजा का माहोल अनेक वर्षों तक रहा था । उसके लिये कहा जाता है कि कल्पसूत्र अनुसार भगवान के निर्वाण समय में भगवान के जन्म नक्षत्र पर **भस्मराशि** नामक ग्रह का स योग था, जिसके प्रभाव से दो हजार वर्ष पर्यंत भगवान का शासन अवनतोवनत चला । फिर दो हजार वर्ष बाद पुन: उन्नतोन्नत धर्मशासन प्रवहमान हुआ था । इस अपेक्षा से दसवें अच्छेरे का प्रभाव भगवान के शासन में भी कुछ समय रहा ऐसा स्वीकार किया जा सकता है ।

कहा जाता है कि ऐसी अनहोनी घटनाएँ अन तकाल में कभी अवसर्पिणी काल में हो जाती है । सदा सभी अवसर्पिणी काल में नहीं होती है तथा जब होवे तब १० ही होवे ऐसा भी नियम नहीं है। एव इन १० में से ही होवे वैसा भी नियम नहीं है, अन्य भी कोई नई घटनाएँ भी हो जाती है । इन घटनाओं स ब धी निरूपण में वक्ताओं के समझभ्रम से कुछ-कुछ भिन्नताएँ प्राप्त होती है । वैसे तो कथानकों में वक्ता की वक्तव्यशैली से अ तर होना स्वाभाविक है तथापि विद्वान पाठक उपर निर्दिष्ट आगम स्थलों को ध्यान से पढकर सही तत्त्व समझने का प्रयत्न करेंगे । जिन घटनाओं के लिये आगम प्रमाण नहीं होकर व्याख्या ग्र थों का आधार है उनके लिये व्याख्याकारों आदि के

कथनशैली से यहाँ भिन्नताएँ नजर आवे तो विद्वान पाठक अपनी तर्क बुद्धि से सही आशय समझने का प्रयत्न करेंगे एव सत्य निर्णय करने में अपनी स्वत त्रता समझेंगे । क्योंकि आगम प्रमाण के अभाव में छद्मस्थ जिज्ञासुओं को अपने बुद्धि एव क्षयोपशम अनुसार ही समझना अवशेष न्याय से यथोचित होता है । जिस विषय में आगम अध्ययन स्पष्ट होवे वहाँ पर पर परा का या अपनी तर्कबुद्धि का आग्रह नहीं रखकर आगम अध्ययन अनुसार ही समझना, स्वीकारना चाहिये ।

प्रश्न–१२ : क्या नक्षत्र स योग से ज्ञानवृद्धि स भव होती है ?

उत्तर– प्रस्तुत स्थान के १५६ वें सूत्र में शास्त्रकार ने निरूपण किया है कि १० नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले होते हक्त ।

नक्षत्र २८ हक्त, उनकी भ्रमणगति च द्र से कुछ अधिक है । अत: क्रमश: एक-एक नक्षत्र च द्र की सीध में साथ में भ्रमण करते हुए आगे निकल जाते हक्त । यों एक महीने में सभी नक्षत्र च द्र के साथ योग करके उसे पार कर जाते हक्त । दूसरे महीने में पुन: क्रमश: सभी का वही क्रम चलता है । जिस दिन आकाश में जो नक्षत्र च द्र के साथ गमन करता है वह लौकिक प चा ग में बताया होता है ।

कई लोग **नेगेटीव पोइ ट** से चलते हुए अपने को होशियार और धर्मज्ञ समझते हक्त । कि तु जैनागम अधिकतम पोजिटीव पोइ ट वाले हक्त । वे भूतप्रेत भी मानते है, उनके द्वारा मानव को उपद्रव होना भी स्वीकारते हक्त । तेला करके देव को बुलाया जाना भी स्वीकारते हक्त । आगम सा प, बिच्छु के ड क के समाधान के लिये झाडा-फू कना भीस्वीकारतेहक्त । म त्र-त त्र, वशीकरण आदि भी जगत में होना जैनागम मानते हक्त । निमित्त ज्ञान का भी अपने स्थान पर महत्त्व होता ही है। आगम उनका भी अस्तित्व स्वीकारते हक्त । सूयगडा ग सूत्र में कहा गया है कि **कई निमित्तज्ञान के कथन सत्य भी होते हक्त और किसी का निमित्तज्ञान विपरीत भी निकल जाता है**। अत: मुनि इस निमित्त ज्ञान में न पडे क्यों कि उसे तो अध्यात्म साधना ही करना होता है । आगमों में ज्योतिष शास्त्र को भी स्थान प्राप्त है । भगवान महावीर के जन्म नक्षत्र पर भस्मग्रह स योग से २००० वर्ष तक जिनशासन पर असर हुआ था और उस स योग के हटने पर लोकाशाह द्वारा पुन: सत्य आचार उजागर हुआ था ।

इसी कारण प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि दस नक्षत्रों के च द्र स योग के दिन प्रार भ किया गया शास्त्र-अध्यनन श्रेष्ठ-सफल रहता है । ज्ञान के वृद्धिकारक नक्षत्र इस प्रकार है- (१) मृगशीर्ष (२) आर्द्रा (३) पुष्य (४) पूर्वाषाढा (५) पूर्वाभाद्रपद (६) पूर्वाफाल्गुनी (७) मूल (८) अश्लेशा (९) हस्त (१०) चित्रा । आगम निर्देश अनुसार नया अध्ययन इन नक्षत्र योग के समय प्रार भ करना चाहिये । निमित्त का अपना महत्त्व है, फिर भी पुढषार्थ एव कर्म क्षयोपशम आदि अनेका तिक स्वीकृति भी आवश्यक है ।

प्रश्न-१३ : इस स्थान में अन्य भी किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- उपरोक्त प्रश्नों में दर्शाये गये विषयों के अतिरिक्त भी अनेक नूतन विषयों का दस की स ख्या में इस स्थान में निरूपण है । यथा- **(१)** शब्द के १० प्रकार होते हक्त- १. रणकार रहित २. रणकार युक्त ३. कौवे जैसा कर्कश शब्द ४. टूटता शब्द ५. जर्जरित शब्द ६. दीर्घ शब्द ७. ह्रस्व शब्द ८. पृथक् शब्द ९. कोयल जैसा तीक्ष्ण शब्द १०. घूघरों के शब्द । **(२)** स वर दस- पाँच इन्द्रिय, तीन योग, उपकरण स वर, सूई आदि छोटी वस्तु स ब धी स वर **(३)** स यम दस-पृथ्वी आदि पाँच, बेइन्द्रिय आदि चार, अजीवकाय स यम ।

(४) अनुयोग दस- अर्थ परमार्थ की विचारणा या विवेचना करना उसे अनुयोग कहते है । अनुयोगद्वार सूत्र में इसके चार द्वार कहे हक्त । आचारा ग टीका में विषय विभाजन की अपेक्षा द्रव्यानुयोग आदि ४ अनुयोग कहे हक्त । प्रस्तुत में द्रव्यानुयोग के दस भेद कहे हक्त- १. द्रव्य गुण पर्याय का ज्ञान २. मातृकापद- मौलिक अक्षरों स ब धी ज्ञान ३. एकार्थक पर्याय शब्दों का ज्ञान ४. कार्य निष्पत्ति में साधन रूप करण या पाँच समवाय रूप करण का ज्ञान ५. मुख्य-गौण स ब धी ज्ञान- विचारणा ६. अन्य द्रव्य से प्रभावित अप्रभावित होने स ब धी ज्ञान ७. सदृशता-भिन्नता स ब धी ज्ञान ८.शाश्वत-अशाश्वत स ब धी ज्ञान, विचारणा ९. सत्य तत्त्वों की विचारणा १०. मिथ्यामती द्वारा निर्दिष्ट अयथार्थ तत्त्वों की विचारणा ।

(५) उत्पात पर्वत- दस भवनपति के २० इन्द्रों के, उनके लोकपालों के, १० वैमानिक इन्द्रों के तथा उनके लोकपालों के उत्पात पर्वत हक्त। ये मनुष्य क्षेत्र के बाहर हक्त । वे इन्द्र आदि तिरछे लोक में आने के लिये

पहले अपने अपने इन पर्वतों पर उतरते हक्त फिर मनुष्य क्षेत्र में आते हक्त।

(६) व्रतों में दोष लगाने रूप प्रतिसेवना १० प्रकार से होती है । अपने दोषों की आलोचना करने में भी दस दोष युक्त आलोचना होती है । आलोचना सुनने वाले के तथा आलोचना करने वाले के १०-१० गुण होते हक्त । आलोचना आदि ये प्रायश्चित्त के १० प्रकार है ।

(७) दस मिथ्यात्व- जीव को अजीव समझे, अजीव को जीव समझे, इसी तरह धर्म-अधर्म, साधु-असाधु, मोक्षमार्ग-स सारमार्ग, सिद्ध-असिद्ध के विषय में विपरीत समझ मिथ्यात्व है । फोटो तसवीर, मूर्ति आदि निर्जीव पदार्थों को कुल पर परा से धूप-दीप, पूजा-भक्ति करना यह मिथ्या प्रवृति है, इसका गृहस्थ श्रावक को आगार होता है । ये प्रवृत्तियाँ अजीव को जीव मानने रूप मिथ्यात्व की प्रेरक होने से त्याज्य है, क्यों कि सावधानी के अभाव में इन प्रवृत्तियों में धर्म मानने के स स्कार प्रवेश कर सकते हक्त । अतः श्रावक आगार सेवन लाचारी से करे तो उपरोक्त १० प्रकार की मिथ्या समझ से दूर रहे । कुल पर परा के इन कार्यों को करते हुए फोटो, मूर्ति को जीव नहीं समझे, अजीव समझे; धूप-दीप को धर्म प्रवृत्ति नहीं समझे, अधर्म प्रवृत्ति समझे । तात्पर्य यह है कि आगारों का सेवन भी कमजोरी है ऐसा मानना चाहिये । विशिष्ट दर्जे के साधक कमजोरी हटाकर आगारों का भी त्याग करते हक्त, वे श्रेष्ठ श्रावक होते हक्त । कि तु वे आगार सेवन करने वालो की निंदा या तिरस्कार करे तो वह उनकी अयोग्यता है ।

(८) स क्लेश दस- १. उपधि स ब धी २. मकान स ब धी ३. कषाय स ब धी ४. आहारपानी स ब धी ५-७. मन, वचन, काया स ब धी ८-१०. ज्ञान, दर्शन, चारित्र स ब धी । इनके निमित्त से परस्पर स क्लेश की उन्पत्ति हो सकती है । साधक की अपनी सावधानी हो, ज्ञान और वैराग्य उपस्थित रहे तो इन दसों से स क्लेश नहीं होता है । **(९)** बल दस- पाँच इन्द्रिय स ब धी बल और पाँच ज्ञानादि स ब धी बल । **(१०)** वाद के दस सामान्य दोष एव दस विशेष दोष होते हक्त । इन दोषों से रहित वाद श्रेष्ठ हितकारी होता है । सूत्र में वे दोष गिनाये हक्त । **(११)** शुद्ध वाचनानुयोग दस है अर्थात् मूल पाठोच्चार में १० शुद्धि का ध्यान रखना चाहिये- १. च, वा का प्रयोग २. म, अनुस्वार प्रयोग ३. अपि, भी का प्रयोग, ४. **से** का प्रयोग यथा- उससे, किससे, जिससे, तुमसे

आदि ।५. सा का प्रयोग, यथा– जैसा, वैसा, कैसा आदि ।६-७. एकवचन, अनेक वचन के प्रयोग–घडा-घडे, स्त्री-स्त्रियाँ । ८. समास युक्त प्रयोग ९. स क्रामित प्रयोग– प्रथम वाक्य में जो बात विस्तार से कह दी हो उसे आगे के वाक्य में **'इसी प्रकार'** के शब्दप्रयोग से स क्षिप्त कथन करना । १०. भिन्न प्रयोग– सभी वाक्य विस्तृत कहना, स क्षेप में नहीं कहना । ये वाचना उच्चारण के शुद्ध प्रयोग रूप अनुयोग कहे गये हक्त । **(१२)** दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम का उत्सर्पिणी काल होता है, अवसर्पिणीकाल भी इतना ही होता है। **(१३)** आश सा,आका क्षा के दस प्रकार– १-७. इस लोक, परलोक, उभयलोक, जीवन, मरण, काम, भोग स ब धी आका क्षा । ८-१०. लाभ, पूजा, सत्कार की आका क्षा । ये सभी आका क्षाएँ त्यागने योग्य है । प्रत्येक साधक को आत्मसाधना, स यम साधना की का क्षारहित आराधना करनी चाहिये ।

(१४) धर्म–मर्यादाएँ दस प्रकार की होती है– गाँव स ब धी, नगर, राष्ट्र स ब धी धर्म, पाख डधर्म, कुलधर्म, गणधर्म, स घधर्म, श्रुतधर्म, चारित्र धर्म और अस्तिकायधर्म । समाचारी, नियम, कायदे और स्वरूप, इन सभी को यहाँ धर्म रूप में समाविष्ट किया है । श्रुत स ब धी स्वाध्याय अस्वाध्याय, वाचना के योग्य-अयोग्य आदि के नियम, ये श्रुतधर्म समझना । **(१५)** दस प्रकार के पुत्र– १. माता की अपेक्षा २. पिता की अपेक्षा(अनेक स्त्रियों की अपेक्षा) ३. गोद लिया पुत्र ४. अध्यापन शिष्य रूप पुत्र ५. स्नेह से स्वीकारा पुत्र ६. स बोधन करने मात्र का पुत्र ७. वीरता, गुणवाले को स्वीकारा हो वह पुत्र ८. भरणपोषण करने रूप पुत्र ९. प्रिय सेवक रूप पुत्र १०. धर्मंतेवासी शिष्य रूप पुत्र ।

(१६) स्थविर दस– १. गाँव के वडील २. नगर के माने हुए स्थविर ३. राष्ट्र के स्थविर ४. अनुशासक ५–७. कुल गण स घ के स्थविर ८-१०. उम्र, श्रुत, स यम पर्याय से स्थविर । **(१७)** जीवन के १०० वर्ष की अपेक्षा १०–१० वर्ष की दस दशाएँ कही है– १. बालदशा, २. क्रीडादशा, ३. म ददशा, ४. बलदशा, ५. प्रज्ञादशा या प्रौढता युक्त दशा, ६. हायनी, ७. प्रप चा, ८. प्राग्भारा– कमर झुकने की और चमडी में सल पडने की, ९. उन्मुखी–मृत्यु तरफ आशा–अपेक्षा वाली, १०. शायिनी–इन्द्रिय बल, काय बल परिक्षीण अवस्था, सोते रहने की अवस्था ।

(१८) वनस्पति के दस विभाग– १. मूल २. क द ३. स्क ध ४. त्वचा ५. शाखा ६. प्रशाखा(प्रवाल) ७. पत्र ८. पुष्प ९. फल १०. बीज ।

(१९) कृतिका नक्षत्र बाहर से दसवें च द्रम डल में है, अनुराधा नक्षत्र आभ्य तर म डल से दसवें च द्र म डल में है । उसी म डल में परिभ्रमण करते हक्त । ये नक्षत्र प्रतिपक्ष से गिनने पर छट्ठे च द्र म डल में हक्त ।

(२०) रत्नप्रभा पृथ्वी के १६ रत्नका ड है– १. रत्नका ड २. वज्रका ड ३. वेडूर्य ४. लोहिताक्ष ५. मसारगल्ल ६. ह सगर्भ ७. पुलक ८. सोग धिक ९. ज्योतिरस १०. अ जन ११.अ जनपुलक १२. रजत १३. जातरूप १४. अ क १५. स्फटिक १६. अरिष्टका ड ।

(२१) अन त दस– १. नाम २. स्थापना ३. द्रव्य–जीवादि अन त ४. गणना–१से अन त ५. प्रदेश अन त(पुद्गल के और आकाश के) ६. एक दिशा अन त– अलोक पर्यंत ७. दोनों तरफ(पूर्व-पश्चिम) अन त ८. एक देश अन त– प्रतर में भी अन तप्रदेश अलोक में । ९. सर्व प्रदेश अन त–लोकालोक के ।१०. शाश्वत अन त– काल की अपेक्षा ।

(२२) स ख्या गणित के १० प्रकार– १. परिकर्मगणित–जोड, बाकी, गुणा, भाग । २. व्यवहारगणित–सवाया, दोढा, ढाया, ऊँठा, ढ चा, दर्जन, ग्रुस आदि । ३. रज्जूगणित(क्षेत्रगणित)– फुट, गज, मीटर, किलोमीटर । ४. राशिगणित– धान्यादि मापा-तोला । ५. सुवर्ण आदि के माप– कलागणित । ६. यावत्–तावत् गणित–उसी स ख्या के गुणा । यथा– २५×२५=६२५ । ४०×४०=१६०० । इसका भी पहाडा होता है । ७. वर्ग गणित– ४×४=१६ । ८. घन गणित–तीनबार गुणा ४×४×४=६४ । ९. वर्ग वर्ग, यथा– ५ का वर्ग २५, इसका वर्ग ६२५; यह वर्ग-वर्ग है । १०. कल्पगणित– वर्गमूल काढना, यथा– ६२५ का वर्गमूल–२५, इसका वर्गमूल–५ है ।

(२३) दस गति– नरकगति, नरकविग्रह गति यावत् सिद्धगति, सिद्ध विग्रहगति । **(२४)** तीसरे स भवनाथ तीर्थंकर के १० लाख क्रोड सागरोपम बीतने पर चौथे अभिन दन तीर्थंकर हुए । आठवें च द्रप्रभु तीर्थंकर की उम्र १० लाख पूर्व वर्षों की थी ।

इनके अतिरिक्त अन्य आगमों में वर्णित बहुत सारे विषय भी १० की स ख्या के अनुरूप होने से यहाँ स कलित है । यथा–इन्द्रियार्थ

ग्रहण, अच्छिन्न पुद्‌गल गति, क्रोधोत्पत्ति के कारण, मद दस(जाति आदि आठ+देवागमन–देवसहाय और अवधिज्ञान),समाधि–असमाधि, छ दा-रोषा आदि प्रव्रज्या के प्रकार, दस यतिधर्म, जीव-अजीव परिणाम, सूक्ष्म, चक्रवर्ती, उनकी राजधानी, अस्वाध्याय, मेढ, दिशा, लवणसमुद्र, पातालकलश, ज बूद्वीप में क्षेत्र, मानुषोत्तर, अ जनगिरि, दधिमुख,रतिकर,ढचकवर आदि पर्वत, अवगाहना, पूर्व, पडिसेवना, आलोचना, आलोचक, उपघात, विशोधि, सत्य-असत्य, मिश्र, दृष्टिवाद, मु डन, समाचारी, स्वप्न, भगवान महावीर के दस स्वप्न, दस ढचि, स ज्ञा, नरकवेदना, ज्ञानक्षमता, अन तरावगाढ आदि १० नैरयिक, नरकादि की स्थिति, अनुत्तर, क्षेत्र, सुसमा-दुसमा काल, १० वृक्ष, कुलकर, वक्षस्कार पर्वत, देवलोक, पडिमा, जीवभेद, वैताढ्य श्रेणी, ग्रैवेयक विमान, समुद्र, नदी, कुलकोडि, पापकर्म, स्क ध, पुद्‌गल इत्यादि का दस की स ख्या से कथन है । इन विषयों का विस्तार अन्य शास्त्रों में है ।

॥ स्थाना ग सूत्र स पूर्ण ॥

प्रश्नोत्तर के माध्यम से इन पुस्तकों में यथाशक्य आगम भावों के स्पष्टीकरण के साथ पाठकों को उत्पन्न होने वाली जिज्ञासाओं का भी अनुमान करके समाधान देने का प्रयत्न किया जाता है, तथापि छद्मस्थ साधकों के क्षयोपशम एक एक से बढकर होते हैं अत: स भव है किन्ही को अनेक जिज्ञासाएँ उत्पन्न हो सकती है जिनका समाधान करना आवश्यक लगे तो हमारे स पर्क सूत्र पर पत्रव्यवहार द्वारा समाधान पाने का प्रयत्न किया जा सकता है । आगम प्रश्नोत्तर प्रकाशन क्रम– अ गसूत्र, उपा गसूत्र, मूलसूत्र, छेदसूत्र, इस तरह १० भागों में हो रहा है । दश भागों का परिचय प्रत्येक पुस्तक के प्रथम पृष्ट पर दिया जाता है । प्रत्येक पुस्तक ३०० पृष्ट के आसपास होती है ।

दलतपतभाई रामानुज
९८९८२ ३९९६१

समवाया ग सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– ग्यारह अ गशास्त्रों में यह चौथा अ गशास्त्र है, अत: यह आगम गणधर रचित है, तथापि स ख्या दृष्टि से कोई वर्णन लेखन काल में पूर्वधर स्थविर स पादित भी है । इस सूत्र पर नवा गी टीकाकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि कृत प्राचीन टीका है । वर्तमान में आचा. श्री अमोलख ऋषिजी म.सा. आचा. श्री आत्मारामजी म.सा. आचा. श्री घासीलालजी म.सा. युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म.सा. आचार्य श्री तुलसी आदि द्वारा तथा स स्कृति रक्षक स घ ब्यावर, गुढप्राण फाउन्डेशन, राजकोट द्वारा यह शास्त्र अर्थ-विवेचन सहित स पादित, प्रकाशित है ।

प्रश्न–२ : इस समवाया ग सूत्र का विषय वस्तु क्या है ?

उत्तर– इस सूत्र में १ से लेकर एक करोड तक की स ख्या के आधार से कुछ विषयों का स कलन है जिसमें प्राय: स क्षिप्त सूचन रूप कथन है । कोई-कोई स ख्या-विषय का विस्तार भी है । इस स ख्या वर्णन के बाद जीवराशि, अजीवराशि एव स्थितियों, आवासों आदि विविध तत्त्वों का भी वर्णन है । तदन तर द्वादशा गी का परिचय भी न दी सूत्र के समान है, कुछ भिन्नता है । अ त में तीर्थंकर, कुलकर, चक्रवर्ती वगैरह महापुढषों के स ब धी जानकारियाँ दी गई है । इस सूत्र के विभागों-अध्ययनों को 'समवाय' स ज्ञा दी गई है । जो १०० समवाय तक है । उसके बाद प्रकीर्णक विषय है, समवाय स ख्या से विभाजन नहीं है ।

स्थाना ग सूत्र के समान इस सूत्र में भी स ख्या के आल बन से तत्त्वों का, आचारों का, क्षेत्र, उम्र, जीव, अजीव स ब धी वर्णन है तथा जीव और पुद्‌गल के अनेक परिणामों का स कलन है । अ त में स ख्या का आल बन छोडकर प्रकीर्णक वर्णन है । यों इस शास्त्र में अधिकतम विषय अन्य शास्त्रों में आया हुआ है, केवल कुलकर और महापुढषों का वर्णन इस शास्त्र की अपनी विशेषता है ।

समवाय-१ से ३३

प्रश्न–३ : इन समवायों में मुख्य किन-किन विषयों का वर्णन है ?

उत्तर–आवश्यक सूत्र के प्रतिक्रमण आवश्यक में चौथे श्रमणसूत्र पाठ में १ से लेकर ३३ तक की स ख्या से हेय, ज्ञेय और उपादेय तीनों प्रकार के तत्त्वों का कथन है । उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन–३१ में उन्हीं तत्त्वों का स केत पद्यमय शैली से किया गया है, दोनों स्थलो में उन विषयों का मात्र स क्षिप्त सूचन है । जब कि यहाँ इन १ से ३३ तक के समवायों में उन दोनों सूत्रों में निर्दिष्ट विषयों का खुलाशा किया गया है ।

एक से ३३ समवाय तक प्रत्येक समवाय में उसकी स ख्या के अनुरूप नारकी-देवता के १ पल्योपम से ३३ पल्योपम एव एक सागरोपम से ३३ सागरोपम तक के स्थिति स्थान कहे गये हक्त । उस स्थिति वाले वैमानिक देवलोकों के कुछ विमानों के नाम दर्शाकर वहाँ के देवो का श्वासोश्वास एव आहार का कालमान उस स ख्या में दर्शाया गया है । इसके अलावा सभी समवायो के अ त में एक भव करके कई जीव मोक्ष जायेंगे **यावत्** ३३ भव करके भी कई जीव मोक्ष जायेंगे, यह कथन किया गया है । तेतीस के बाद इस विषयक कथन नहीं है तथापि ३४ आदि सभी स ख्या वाले भव करके मोक्ष जाने वाले जीव लोक में हो सकते हक्त, निषेध नहीं समझना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त स ख्या के अनुरूप इन ३३ समवायों में– देव-देवलोक स ब धी, तीर्थंकर आदि स ब धी, नक्षत्र आदि स ब धी, कर्म स ब धी, द्वीप-समुद्र-पर्वत-क्षेत्र-नदी स ब धी, गुणस्थान स ब धी, स यम-श्रमण स ब धी वगैरह अनेक विषयों का स कलन है । जिसमें नये विषय कुछेक ही है बाकी अधिकतम विषय अन्य शास्त्रों में आये हुओं का ही कथन है । उनका महत्व यह है कि एक शास्त्र के लेखन वगैरह में कोई लिपिदोष या प्रेस मिस्टेक हो जाय तो दूसरी जगह के कथन से उसकी चर्चा-विचारणा करने का तथा कभी निर्णय करने का भी सु दर स योग बन जाता है । इस प्रकार स ख्यावाची कथन पद्धति वाले इस शास्त्र के पुनर्कथित विषयों का भी विशिष्ट महत्व है ।

अन्यत्र स क्षिप्त कहे गये कई विषय यहाँ विस्तृत कहे गये है

और अन्यत्र विस्तृत कहे विषयों का यहाँ स ख्या निमित्त से स क्षिप्त स केत–स कलन मात्र भी है ।

प्रश्न–४ : इन समवायों में विमानों के नाम कौन-कौन से बताये हक्त ?

उत्तर– प्रथम देवलोक से १२ वें देवलोक तक के अनेक विमानों के नाम सहित आहारेच्छाकाल एव श्वासोश्वास मान काल बताया गया है ।

प्रथम द्वितीय देवलोक– सागर, सुसागर, सागरक त, भव, मनु, मानुषोत्तर, लोकहित नामक विमान में १ सागरोपम की स्थिति, १००० वर्ष से आहार की इच्छा और एक पक्ष प्रमाण श्वासोश्वास का कालमान होता है । शुभ, शुभका त, शुभवर्ण, शुभग ध, शुभलेश्य, शुभस्पर्श, सौधर्माव-त सक विमान में २ सागरोपम की स्थिति है; २००० वर्ष से आहारेच्छा होती है एव दो पक्ष का उनका एक श्वासोश्वास कालमान होता है । दोनों देवलोकों की समभूमि और प्रतरतल एक ही है ।

तीसरा-चौथा देवलोक– आभ कर, प्रभ कर, आभ कर-प्रभ कर, च द्र, च दावर्त, च द्रप्रभ, च द्रका त, च द्रवर्ण, च द्रलेश्य, च द्रध्वज, च द्रशृ ग, च द्रशृष्ट, च द्र-कूट, च द्रोत्तरावत सक विमान में ३ सागरोपम की स्थिति है; ३००० वर्ष से आहारेच्छा होती है एव तीन पक्ष का एक श्वासोश्वास होता है । कृष्ठी, सुकृष्ठी, कृष्ठियावर्त, कृष्ठिप्रभ, कृष्ठिका त, कृष्ठीवर्ण, कृष्ठी लेश्य, कृष्ठीध्वज, कृष्ठिशृ ग, कृष्टिशृष्ट कृष्ठिकूट, कृष्ठुत्तराव-त सक विमान में चार सागरोपम की स्थिति होती है; ४००० वर्ष में आहारेच्छा होती है और ४ पक्ष का एक श्वासोश्वास होता है । वात, सुवात, वातावर्त, वातप्रभ, वातका त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृ ग, वातशृष्ट, वातकूट, वातोत्तरावत सक; इसी तरह सूर, सुसूर यावत् सूरोत्तरावत सक तक १२ नाम, ये कुल २४ विमान में देवों की उत्कृष्ट ५ सागरोपम की उम्र है । तदनुसार आहार तथा श्वासोश्वास भी जानना ।

स्वय भू, स्वय भूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्ठिघोष, वीर, सुवीर, वीरगत, वीरश्रेणिक, वीरावर्त, वीरप्रभ, वीरका त, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृ ग, वीरशृष्ट, वीरकूट, वीढत्तरावत सक विमान में छ सागरोपम की स्थिति है और तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास भी जानना । सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भास्वर, विमल, क चन कूड, सनत्कुमारावत सक विमान में सात सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति

होती है । तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास होता है । इन दोनों देवलोकों की भी समभूमि और प्रतरतल एक है, अत: इनके विमानों के नाम एक साथ कहे हक्त ।

पाँचवाँ देवलोक– अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभ कर, च द्राभ, सूर्याभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्निअर्चाभ, रिष्टाभ, अढणाभ, अढणावत सक विमान में आठ सागरोपम की स्थिति है, तदनुरूप आहार एव श्वासोश्वास है । पद्म, सुपद्म, पद्मावर्त, पद्मप्रभ, पद्मका त, पद्मवर्ण, पद्मलेश्य, पद्मध्वज, पद्मशृ ग, पद्मशृष्ट, पद्मकूट, पद्मोत्तरावत सक; उसी प्रकार सूर्य यावत् सूर्योत्तरावत सक तक १२ विमान, वैसे ही ढचिर यावत् ढचिरावत सक तक १२ विमान में देवों की उत्कृष्ट ९ सागरोपम की स्थिति होती है । तदनुसार आहार, श्वासोश्वास जानना ।

घोष, सुघोष, महाघोष, न दीघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यग् रमणीय, म गलावर्त, ब्रह्मलोकावत सक विमान में देवों की उत्कृष्ट १० सागरोपम की स्थिति है । तदनुरूप १० हजार वर्ष से आहारेच्छा तथा १० पक्ष का श्वासोश्वास होता है ।

छट्ठा देवलोक– ब्रह्म, सुब्रह्म यावत् ब्रह्मुत्तरावत सक तक १२ विमान में देवों की स्थिति ११ सागरोपम की होती है । तदनुरूप आहार और श्वासोश्वास समझना । महेन्द्र, महेन्द्रध्वज, क बु, क बुग्रीव, पु ख, सुपु ख, महापु ख, पु ड, सुपु ड, महापु ड, नरेन्द्र, नरेन्द्रका त, नरेन्द्रोत्तरावत सक विमान में देवों की उत्कृष्ट १२ सागरोपम की स्थिति होती है तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास जानना ।

इसी तरह वज्र, सुवज्र यावत् वज्रुत्तरावत सक तक १२ विमान; वइर, सुवइर यावत् वइढत्तरावत सक तक १२ विमान; लोक, सुलोक यावत् लोकोत्तरावत सक तक १२ विमान में देवों की १३ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है; तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास होता है । श्रीका त, श्री महित, श्री सोमनस, लात क, काविष्ट, महेन्द्र, महेन्द्रका त, महेद्रोत्तरावत सक विमान में १४ सागरोपम की स्थिति होती है । तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास होता है ।

सातवाँ देवलोक– न द, सुन द, न दावर्त यावत् न दुत्तरावत सक तक १२ विमान में १५ सागरोपम की स्थिति होती है । आवर्त, व्यावर्त, न दिकावर्त, महान दिकावर्त, अ कुश, अ कुशप्रल ब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र,

सर्वतोभद्र, भद्रोत्तरावत सक विमान में १६ सागरोपम की स्थिति होती है । सामान, सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पोंडरीक, महापोंडरीक, शुक्र, महाशुक्र, सि ह, सि हका त, सि हबीज तथा भावित विमान में १७ सागरोपम की स्थिति होती है । तदनुरूप आहार और श्वासोश्वास होता है । **आठवाँ देवलोक**– काल, सुकाल, महाकाल, अ जन, अरिष्ट, साल, समान, द्रुम, महाद्रुम, विशाल, सुशाल, पद्म, पद्मगुल्म, कुमुद, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पु डरीक, पु डरीक गुल्म, सहस्रारावत सक विमान में देवों की उत्कृष्ट १८ सागरोपम की स्थिति होती है, तदनुरूप आहारेच्छा एव श्वासोश्वास कालमान होता है ।

नववाँ देवलोक– आनत, प्राणत, नत, विनत, घन, झुसिर, इन्द्र, इन्द्रोका त, इन्द्रोत्तरावत सक विमान में देवों की १९ सागरोपम की स्थिति होती है । तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास होता है । **दसवाँ देवलोक**– सात, विसात, सुसात, सिद्धार्थ, उत्पल, भित्तिल, तिगि छ, दिशास्वस्तिक, प्रल ब, ढचिर तथा पुष्प, सुपुष्प यावत् पुष्पोत्तरावत सक तक १२ विमान में देवों की २० सागरोपम की स्थिति होती है । तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास होता है । **ग्यारहवाँ देवलोक**– श्री वत्स, श्रीदामका ड, मल्ल, कृष्ट, चापोन्नत, आरणावत सक विमान में देवों की २१ सागरोपम की स्थिति होती है; तदनुरूप आहार, श्वासोश्वास जानना ।

बारहवाँ देवलोक– महित, विसूहित, विमल, प्रभास, वणमाल, अच्युतावत सक विमान में देवों की २२ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है । १२ हजार वर्ष से आहारेच्छा होती है एव २२ पक्ष प्रमाण एक श्वासोश्वास होता है । नवग्रैवेयक में एव अणुत्तर विमान में नये विमान नाम नहीं कहे हक्त । स्थिति २२ सागरोपम से ३३ सागरोपम तक अलग-अलग है। स्थिति अनुसार उतने हजार वर्ष से आहारेच्छा होती है और श्वासोश्वास काल मान २२ पक्ष यावत् ३३ पक्ष(साडे सोलह महीना)का होता है।

प्रश्न–५ : भय के स्थान कितने और कौन से हक्त ?

उत्तर– आवश्यक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र तथा प्रस्तुत सातवें समवाय में सात भय स्थान कहे हक्त– **(१)** इहलोक भय– मनुष्यको चोर, डाकू और उद्द ड मनुष्यों का तथा अनेक स्वार्थी, कपटी और अनार्य, क्रूर

लोगों का भय होता है । **(२)** परलोक भय– मानव को सर्प, बिच्छु, शेर, चीता आदि हिंसक पशु-पक्षियों का, भूत, प्रेत आदि देवों का भय रहता है । **(३)** आदान भय– जमीन, जायदाद, धन, स पत्ति, कुटु ब, परिवार आदि अपने परिग्रह स ग्रह की सुरक्षा का भय रहता है । **(४)** अकस्मात् भय– दुष्काल, अतिवृष्टि, जलप्रलय, अनावृष्टि, भूक प, एक्सीडेंट का, गिरने पडने का तथा अनधारी आपत्ति रोग-महारोग का भय । **(५)** आजीविका भय– व्यापार-नौकरी, आवक-इन्कम का, खानपान आदि जीवन निर्वाह का भय होता है। **(६)** मरण भय– मरने का भय, इन्द्रिय क्षीणता, शक्ति क्षीणता का भय सभी प्राणियों को रहता है । **(७)** अश्लाघा भय– अपयश, अकीर्ति का भय । मानव को मान-सन्मान, यश-कीर्ति की अभिलाषा बनी रहती है । उसी कारण अपयश, बदनामी, निंदा से वह घबराता रहता है ।

शास्त्र में स यम को **अभय** कहा है । स यम की आराधना में दत्त चित्त साधक को कहीं भय रहता नहीं है । वह सदा सर्वदा सर्वत्र निर्भय बना रहता है एव स सार के समस्त छोटे बडे प्राणियों को भी वह अभयदान देकर अपने से निर्भय बना देता है । मन, वचन या काया से किसी भी जीव को स त्रस्त–भयभीत नहीं करता है ।

प्रश्न–६ : इन तेतीस समवायों में १–३३ स ख्याओं से आधारित तीर्थंकर आदि से स ब धी निरूपण क्या-क्या है ?

उत्तर– इन समवायों में तीर्थंकर, गणधर आदि स ब धी निरूपण इस प्रकार है–(१) श्रमण भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना ७ हाथ की थी अर्थात् उत्सेधा गुल के २ धनुष प्रमाण थी। **उत्सेधा गुल–** यह माप आधा पाँचवाँ आरा बीतेगा, उस समय के मानव के अ गुल से होता है । **अवगाहना मापने का तरीका–** प जे के बल खडे रहकर हाथ उपर फैलाने से जितनी ऊँचाई होती है उसे अवगाहना कहतेहक्त। उत्सेधा गुल वाले मनुष्यों का हाथ एक फुट का करीब होता है ऐसा समझ लेना चाहिये । (२) पार्श्वनाथ तीर्थंकर के आठ गण और गणधर– शुभ, शुभघोष, वशिष्ट, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यश । (३) पार्श्वनाथ भगवान की अवगाहना ९ हाथ की थी । (४) अरिष्ट नेमिनाथ तीर्थंकर की अवगाहना १० धनुष (४० हाथ) की थी । कृष्ण वासुदेव और बलराम की भी इतनी ही अवगाहना-ऊँचाई थी ।

(५) भगवान महावीर के ११ गणधर ९ गण थे । (६) बलराम (कृष्ण के भाई) बलदेव की उम्र १२०० वर्ष की थी । (७) भगवान महावीर के उत्कृष्ट १४ हजार की श्रमण स पदा थी । (८) इक्कीसवें तीर्थंकर की १५ धनुष की अवगाहना-ऊँचाई थी । (९) पार्श्वनाथ तीर्थंकर के १६ हजार की साधु स पदा थी । (१०) बावीसवें तीर्थंकर के १८००० की साधु स पदा थी ।(११) १९ तीर्थंकर राजा बनने के बाद दीक्षित हुए ।१२ वें, उन्नीसवें, बावीसवें, तेवीसवें और चौवीसवें ये पाँच तीर्थंकर राजकुमार अवस्था में दीक्षित हुए थे ।(१२) मुनिसुव्रत तीर्थंकर २० धनुष के ऊँचे थे । (१३) तेवीस तीर्थंकर पूर्व भव में ११ अ गसूत्रों के धारक थे । प्रथम तीर्थंकर पूर्वभव में १४ पूर्वी थे । तेवीस तीर्थंकर पूर्व भव में मा डलिक राजा थे । श्री ऋषभदेव पूर्व भव में चक्र-वर्ती थे । (१४) मल्ली भगवती की अवगाहना २५ धनुष की थी । (१५) म डितपुत्र छट्ठे गणधर तीस वर्ष स यम पालन करके मोक्ष गये । (१६) अठारहवें अरनाथ भगवान की ३० धनुष की अवगाहना थी । (१७) २३ वें, २४ वें तीर्थंकर ३० वर्ष की उम्र में दीक्षित हुए थे । (१८) सत्रहवें कु थुनाथ तीर्थंकर के ३२३२ केवलज्ञानी की स पदा थी ।

प्रश्न–७ : इन समवायों में नक्षत्र एव ज्योतिषी स ब धी क्या निरूपण है?

उत्तर– यहाँ च द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र ज्योतिषी स ब धी अनेक वर्णन है, यथा– (१) २८ नक्षत्रों में अभिजित आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक हक्त अर्थात् इन सात नक्षत्रों का च द्र स योग हो तब पूर्व दिशा में गमन करना योग्य होता है । इसी प्रकार अश्विनी आदि ७ नक्षत्र दक्षिण द्वारिक, पुष्य आदि ७ नक्षत्र पश्चिम द्वारिक और स्वाति आदि ७ नक्षत्र उत्तर द्वारिक कहे गये हक्त । (२) २८ नक्षत्रों में से अनेक नक्षत्र १ तारे(विमान) वाले हक्त । कई दो तारे(विमान) वाले हक्त । यों ३,४,५,६,७,११,३२ और १०० तारे(विमान) वाले नक्षत्र भी हक्त । इनका मौलिक वर्णन श्री ज्योतिषगण राजप्रज्ञप्ति सूत्र में है । (३) च द्र के साथ नक्षत्र स ब धी योगदिशा एव योगसमय का कथन किया है। (४) समभूमि से ज्योतिष म डल का उपरी तारा विमान ९०० योजन ऊँचा है। (५) नित्यराहु च द्र की एक-एक कला १५ दिन तक वद पक्ष में ढा कता है और सुद पक्ष में एक-एक कला उघाडता है । उसी से तिथि बनती है । (६) सूर्य उपर-नीचे कुल १९ सो योजन तपता है । समभूमि से ९०० योजन उपर और

समभूमि से १००० योजन नीचे सलिलावती विजय तक तपता है । (७) शुक्र महाग्रह पश्चिम में उदय होकर १९ नक्षत्रों के साथ(बहुत रात्रिएँ बिताकर) गमन करके फिरकाला तर से पश्चिम में ही(दीर्घकाल तक के लिये) अस्त होता है। (८)सूर्य उत्तरायण(स क्रा त)के दिन २४ अ गुल की पोरसी छाया करता है अर्थात् १४ जून को २४ अ गुल ल बी वस्तु की २४ अ गुल छाया होवे तब पोरसी आती है । श्रावण सुद सातम के दिन २४ अ गुल वस्तु की २७ अ गुल सूर्य छाया करे तब पोरसी आती है। (९) अभिजित नक्षत्र को छोडकर शेष २७ नक्षत्रों से व्यवहार होता है क्यों कि अभिजित नक्षत्र उत्तराषाढा में समाविष्ट कर दिया जाता है। नक्षत्र मास २७ दिन का होता है। (१०) च द्रदिवस साधिक २९ मुहूर्त का होता है । आषाढ महीना २९ दिन का होता है उसीतरह भाद्रपद, कार्तिक, पोष, फाल्गुन एव वैशाख ये कुल ६ महीने २९ दिन के होते है क्यों कि इन महीनों में तिथि क्षय होती है। अभिवर्धित मास साधिक ३१ दिन का होता है। एक अहोरात्र ३० मुहूर्त का होता है । सूर्योदय से इन ३० मुहूर्तों के ३० नाम– प्रथम रौद्र, अ तिम राक्षस पर्यंत है । उनतीसवाँ मुहूर्त **सर्वार्थसिद्ध** है । इस मुहूर्त में भगवान महावीर मोक्ष पधारे थे । सूर्य मास देशोन ३१(३०॥) दिन का होता है ।

प्रश्न–८ : देव और देवलोकों स ब धी वर्णन इन समवायों में क्या है ?

उत्तर– (१) व्य तर देवों के चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊँचे हक्त । (२) ज बूद्वीप के विजय नामक पूर्वीद्वार के दोनों बाजु की बाहाओं पर ९– ९ भवन है । (३) व्य तर देवों की सुधर्मा सभा ९ योजन ऊँचाई वाली होती है। (४) चमरेन्द्र के अवतारिकालयन–राजभवन का सीमा-विस्तार सोलह हजार योजन का है । (५) प्राणतेंद्र देवेंद्र के २०,००० सामानिक देव है । (६) इन्द्र युक्त देवस्थान २४ है– दस भवनपति, आठ व्य तर, ५ ज्योतिषी, १ वैमानिक कल्पोपपन्न । कल्पातीत में देव गण अहमेंद्र, अनिन्द्र, अपुरोहित हक्त । (७) सौधर्म–ईशान देवलोक का पृथ्वीपिंड २७००० योजन का जाडा है। (८) ईशान देवलोक में २८ लाख विमान है । (९) आठवें देवलोक के सहस्रारेन्द्र के ३०,००० सामानिक देव हक्त । (१०) चमरेन्द्र की चमरच चा राजधानी के प्रत्येक द्वार के बाहर ३३-३३ भवन है ।

प्रश्न–९ : इन समवायों में श्रमण एव स यम स ब धी वर्णन क्या है?

उत्तर– दस यति धर्म– यति, मुनि, श्रमण, भिक्षु, साधु ये एकार्थक शब्द है। यहाँ यति शब्दप्रयोग से श्रमणों के १० मुख्य धर्म–मुख्य गुण धारण करने योग्य दर्शाये हक्त–

(१) ख ति– मुनि सहनशील बनकर अपार क्षमाभाव धारण करे; स्वपर के कर्मोदय स्वभाव की विचारणा को सदा उपस्थित रखे । किसी के कोई भी अशुभ व्यवहार की कषाय भावों में समीक्षा न करे, उपेक्षा भावों से अपनी समता में लीन रहे । मन, वचन, काया तीनों को समता में स तुलित रखे । विषमता के भावों को, व्यवहारों को, उत्पन्न नहीं होने देवे, उत्पन्न होने लगे तो तत्काल ज्ञाना कुश से वैराग्यवासित अ त:करण की विचारणा पूर्वक उस विषमता को विफल बना देवे ।

(२) मुत्ति– निर्लोभता । मुनि परिग्रह का सर्वथा त्यागी ही होता है, उसे स यम के अति आवश्यक मर्यादित उपकरण एव शरीर निर्वाहार्थ अल्प आहार, वस्त्र-पात्र ग्रहण करना होता है। मकान स स्तारक अल्प कालीन ग्रहण करके छोड देना होता है । समय प्रभाव से रखी जाने वाली अध्ययन सामग्री भी विहार में भारवृद्धि न हो उतनी ही सीमित रखना होता है। अत: मुनि अल्पेच्छा, अल्प आका क्षा वाला बनकर लोभ-लालच से मुक्त रहे, इच्छाओं को सीमित रखकर द्रव्यभाव से निष्परिग्रही बना रहे । **(३) अज्जवे**– आर्जव, सरलता । मुनि का मन वचन काया स ब धी समस्त योग व्यवहार सरलता, निष्कपटता से युक्त होना चाहिये। मुनि के अ दर-बाहर और कथनी-करणी सरलता से ओतप्रोत होने चाहिये । माया, कपट, प्रप च, वक्रता, धूर्ताई आदि सरलता का नाश करने वाले अवगुणों से मुनि को दूर रहना चाहिये ।

(४) मद्दवे– मार्दव, नम्रता । मुनि जीवन में विनय-नम्रता गुण का होना अत्य त आवश्यक है । शास्त्र में विनय को सब गुणों का मूल कहा गया है । विनय गुण से स पन्न व्यक्ति समस्त गुणों को हाँसिल कर सकता है । विनय-नम्रता के विकास के लिये जीवन में से मान कषाय, अह भाव, घम डभावों को तथा जाति, कुल, तप या ज्ञान के मद को छोडना जरूरी है और उसके लिये सदा आत्मा में अभ्यास, जागृति और स स्कारों को पुष्ट करते रहना चाहिये। अह कार व्यक्ति की नम्रता को नष्ट करने वाला है, अत: मार्दवगुण को धारण करने के लिये मुनि को मानकषाय से हमेशा दूर रहना चाहिये ।

(५) लाघवे– लघुभूत । मुनि स सार के भार से तो मुक्त हो गया होता है । उसे चाहिये कि वह स यम जीवन में भी मानसिक विचारणाओं एव कायिक प्रवृत्तियों से अभ्यासपूर्वक मुक्त होता जाय । अन्यत्र **लाघवे** के स्थान पर 'सोए' शौच शब्द है, जिसका अर्थ भी यही है कि विचारों से पवित्र रहे, शुद्ध-निर्मल भावों में रहे । इस तरह मानसिक बोझ से और कर्मब ध से मुनि हल्का फूल सा लघुभूत रहे । **(६) सच्चे**– मुनि सत्यनिष्ठ रहे। प्रत्येक आचरण में, वाणी में सत्यता ईमानदारी को धारण करे । झूठ–असत्य का सेवन कदापि नहीं करे । हास्य, भय से भी झूठ न बोले, झूठे कर्तव्य नहीं करे । हित, मित एव मर्यादित वचन बोले । **(७) स यमे**– महाव्रत, समिति, गुप्ति, इन्द्रिय निग्रह में पूर्ण सावधान रहे । स यम समाचारी का सम्यक् परिपालन करे ।

(८) तवे– उपवास आदि तथा विनय, स्वाध्याय आदि बाह्य एव आभ्य तर सभी प्रकार के तप में आत्मा को भावित करे । स यम जीवन के आवश्यक कार्य, गुढ आज्ञा तथा सेवा के अतिरिक्त अवशेष समय स्वाध्याय-अध्ययन में व्यतीत करे । **देह दुक्ख महाफल** इस सूत्र को लक्ष्य में रखकर शक्य हो जितना त्याग-तप अवश्य बढाते रहना चाहिये । किसी से उपवास न भी होता हो तो धीरे-धीरे अभ्यास से, वैराग्य से, मानस स स्कारित करने से तथा लगन धगस रखने से कुछ भी दुष्कर नहीं समझना चाहिये । इस प्रकार मुनि जीवन बाह्य आभ्य तर तप युक्त होवे । **(९) चियाए**– त्याग । इसमें कषायों का त्याग, खान पान के द्रव्यों का त्याग, प्राप्त आहारादि में से अन्य श्रमणों का दान-प्रदान समर्पण रूप त्याग वगैरह का समावेश होता है । स क्षेप में द्रव्यभाव–ऊणोदरी और व्युत्सर्ग तप में वृद्धि करना, गण-समूह, उपधि का त्याग करना, स यमी सहवर्तियों के लिये सदा उदारता रखना आदि गुणों का इसमें, त्याग में समावेश होता है । इसके स्थान पर 'अकि चनत्व' शब्द के द्वारा भी मूर्च्छा या स ग्रह के त्याग का ही कथन है ।

(१०) ब भचेरवासे– सब तपों में उत्तम तप ब्रह्मचर्य है । मुनि तीन करण तीन योग से शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करे । उसकी सुरक्षा के नियम रूप नववाड या दस ब्रह्मचर्य समाधिस्थान जो शास्त्र में कहे गये हक्त उनका पूर्णतया ध्यान रखे । तत्स ब धी स्पष्टीकरण स्थाना ग सूत्र

स्थान–९, प्रश्न–३ में किया गया हक्त, उन्हें लक्ष्य पूर्वक आत्मशात करके, ब्रह्मचर्य गुण को धारण करना चाहिये । यति के(मुनियों के) इन गुणों का धारण करना, पालन करना यह मुनियों का यतियों का धर्म है, कर्तव्य है । अतः इन्हें १० यति धर्म कहा गया है ।

श्रमणों के बारह स भोग व्यवहार– स्वधर्मी, समान समाचारी, एव एक गण के श्रमणों में परस्पर भोजन व्यवहार की प्रमुखता वाले १२ व्यवहार होते हक्त, उन्हें बारह स भोग व्यवहार कहा गया है । वे इस प्रकार है– **(१)** उपधि– वस्त्र-पात्र आदि उपयोगी उपकरणों का परस्पर आदान प्रदान । **(२)** श्रुत– शास्त्रों की वाचना देना-लेना। **(३)** भक्तपान– परस्पर आहार-पानी, औषध-भेषज का आदान प्रदान । **(४)** अ जलि-प्रग्रह– रत्नाधिक के सामने हाथ जोडकर खडे रहना अथवा सामने मिलने पर हाथ जोडकर मस्तक झुकाना । **(५)** दान– शिष्य का देना-लेना । **(६)** निम त्रण– शय्या-मकान, स स्तारक, उपधि, वस्त्र-पात्र आदि का निम त्रण करना । **(७)** अभ्युत्थान– रत्नाधिक श्रमण के आने पर खडे होना, आदर देना, सन्मान सूचक शब्द–आओ पधारो आदि बोलना । **(८)** कृतिकर्म– अ जलिकरण, आवर्तन, हाथ जोडकर मस्तक झुकाना, एव सूत्रोच्चारण पूर्वक विधि सहित व दन करना । **(९)** वैयावृत्य– आवश्यक होने पर परस्पर शारीरिक सेवा- परिचर्या करना, भिक्षा लाकर देना, वस्त्र प्रक्षालन, मल-मूत्र आदि परिष्ठापन रूप विविध सेवा-सुश्रूषा करना एव करवाना । **(१०)** समवसरण– एक ही उपाश्रय में निवास करना । साथ में रहना, बैठना आदि प्रवृत्ति करना । **(११)** सन्निषद्या– एक ही आसन, पाट आदि पर बैठना, बैठने के लिये परस्पर आसन का आदान-प्रदान करना । **(१२)** कथाप्रब ध– साथ में प्रवचन देना । सभा में एक साथ बैठना ।

एक ही गच्छ के साधुओं में परस्पर ये सभी व्यवहार आवश्यक होते हक्त । परिहार तप, प्रायश्चित्त वहन करने के समय तथा विशिष्ट अभिग्रह-प्रत्याख्यान वाले श्रमण गुढ आज्ञा से ये अनेक व्यवहार भी परस्पर नहीं करते हक्त; वह उनका विशिष्ट तप रूप आचार होता है ।

एक गच्छ के श्रमण और श्रमणियों में भी परस्पर ये १२ व्यवहार (प्रतिपक्षी लि ग होने से) पूर्णतः नहीं होते हक्त । सामान्यतः उत्सर्ग विधि से केवल ६ व्यवहार होते हक्त और शेष ६ व्यवहार पहला, तीसरा,

छट्ठा, नववाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ अपवादिक विशेष परिस्थिति से होते हक्त । समाज में या क्षेत्र में प्रतिष्ठित श्रमणों के साथ ११ व्यवहार (आहार को छोडकर) ऐच्छिक विवेकपूर्वक गुढ आज्ञा से हो सकते हक्त। श्रद्धाहीन,स्वेच्छाचारी, जिनशासन की हीलना करने या कराने वाले, शिथिल आचार वालों के साथ ये व्यवहार नहीं रखे जाते । कि तु मानवोचित सभ्यता का व्यवहार किया जा सकता है ।

उत्कृष्ट व दना के २५ अ ग– प्रतिक्रमण के समय गुढ को खमासमणो के पाठ से उत्कृष्ट व दना की जाती है, उस व दना के २५ अ ग यहाँ १२ वें समवाय में बारह आवर्तन की मुख्यता से गाथा द्वारा कहे हक्त ।

गाथा– *दुहओ णय जहाजाय , किइकम्म बारसावय ।*
चउसिर तिगुत्त च, दुपवेस एग णिक्खमण ॥

(१) यथाजात आसन अर्थात् उकडू आसन (२-३) दो अवनत–नमस्कार अर्थात् दो वार खमासमणो का पाठ करना (४-१५) बारह आवर्तन (आरती करते समय हाथ घुमाने के समान) (१६-१९) चार बार मस्तक झुकाना (२०-२२) मन वचन काया से गुप्त होना (२३-२४) दो बार प्रवेश (२५) एक बार निष्क्रमण ।

आवर्तन–१२ :– अ..हो, का..य , का...य, जत्ता...भे, जवणि..ज्ज च...भे ।६। ये ६ आवर्तन एक बार के खमासमणो पाठ में होते हक्त । दूसरी बार **खमासमणो** के पाठ में भी ये ६ आवर्तन होते हक्त । दोनों मिलकर १२ होते हक्त । इन तीन-तीन आवर्तन के बाद एक-एक बार मस्तक झुकाना होता है, जिससे चार बार हो जाता है । **दो प्रवेश**– दो बार बैठा जाता है । **एक निष्क्रमण**– एक बार खडे होना ।

सत्रह प्रकार का स यम–(१-५) पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर । **(६-९)** तीन विकलेन्द्रिय और प चेन्द्रिय इन ९ प्रकार के जीवों की मन वचन काया से हिंसा नहीं करना, इनकी यतना करना । इन जीवों को किसी भी प्रकार से बाधा-पीडा नहीं पहुँचाना । **(१०)** अजीव– पदार्थों का उपयोग यतनापूर्वक करना, उनको फेंकना, गिराना, टकराना आदि रूप से अयतना नहीं करना; यह अजीवकाय स यम कहलाता है । **(११)** प्रेक्षा– प्रत्येक वस्तु लेने, रखने में पहले देखना, खाने पीने की वस्तुएँ भी पहले देखना फिर उपयोग में लेना, यह प्रेक्षा स यम है । **(१२)** उपेक्षा स यम– मित्र-शत्रु, इष्ट-अनिष्ट, राग-द्वेषात्मक स योगों में तटस्थ भाव,

उपेक्षा भाव रखना, कर्मब ध कारक अध्यवसाय नहीं करके उसे भुला देना, देखा अनदेखा, सुना अनसुना, जाना अनजाना कर देना, यह उपेक्षा स यम है । **(१३)**अपहृत्य स यम–वस्तु का ग्रहण धारण और परित्याग विवेकपूर्वक करना अर्थात् चौथी-पाँचवीं समिति का सम्यग् पालन करना, यह अपहृत्य स यम कहा गया है । **(१४)** प्रमार्जना स यम– पात्रों को उपयोग में लेते समय उनका प्रतिलेखन, प्रमार्जन करना, रात्रि में बैठना, चलना, सोना हो तब भूमि, आसन का प्रमार्जन करना एव कोई भी उपकरण रात्रि में पूँजकर काम में लेना तथा सोने के समय शरीर का प्रमार्जन करना, यह प्रमार्जना स यम है । **(१५–१७)** मन को शुभ रखना, अशुभ में न जाने देना । वचन से हित-मित-असावद्य वचन बोलना या अल्पभाषी होना । काया की प्रवृति यतना से एव विवेकपूर्वक करना, सावद्य एव अयतनाकारी प्रवृत्ति नहीं करना । यह मन स यम वचन स यम और काय स यम है । इस तरह यह १७ प्रकार का स यम है । इसके विपरीत आचरण को ही १७ प्रकार का अस यम समझ लेना चाहिये ।

अठारह प्रकार का अब्रह्मचर्य त्याग– तीन करण, तीन योग से ९ प्रकार का मनुष्य स ब धी कुशील का त्याग, एव इसी प्रकार तिर्यंच स ब धी ९ प्रकार है ।

सत्तावीस अणगार गुण– (१-१४) पाँच महाव्रत पालन, पाँच इन्द्रिय निग्रह, चार कषाय त्याग । **(१५-१७)** भावसत्य, करणसत्य, योगसत्य अर्थात् इन तीनों को निष्पाप असावद्य रखना । **(१८-१९)** क्षमाव त तथा वैराग्यव त रहना अर्थात् वैराग्यभावों को सदा ताजे रखना । **(२०-२२)** मन, वचन और काया का सम्यक् रूप से अवधारण–उपयोग करना ।असम्यक् मन वचन काया का त्याग करना । **(२३-२५)** ज्ञान, दर्शन, चारित्र से स पन्न रहना अर्थात् अध्ययन, अनुभव, अभ्यास से रत्नत्रय का विकास करना । **(२६)** असाता वेदना को सम्यक् सहन करना, समभाव रखना, विषमभाव नहीं करना । कष्ट के समय में भी प्रसन्न रहना, यह वेदना सहनशीलता गुण है । **(२७)** मरण समय में भी कष्ट आपत्ति में परिपूर्ण सहनशील रहना, वह मारणा तिक वेदना सहनशीलता गुण है अर्थात् मारणा तिक कष्ट आने पर घबराना नहीं कि तु सावधानी पूर्वक आजीवन अनशन–स थारा धारण करना । इन

गुणों को धारण-अवधारण करने वाला अणगार अपने स यम की सु दर आराधना कर सकता है ।

बत्तीस योग स ग्रह– साधक के अभ्यास और विकास करने योग्य आचरण, आदर्श कर्तव्य बत्तीसवें समवाया ग में कहे गये है, यथा– (१) **आलोचना**– अपने प्रमाद का गुढ आदि के समक्ष निवेदन कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना । (२) **निरपलाप**– अन्य के आलोचित प्रमाद का अप्रकटीकरण । (३) **आपत्काल में दृढधर्मता**– दृढधर्मी बने रहना। (४) **अनिश्रितोपधान**– दूसरों की सहायता लिए बिना तपस्या करना । (५) **शिक्षा**– सूत्रार्थ का पठन-पाठन तथा क्रिया का आचरण । (६) **निष्प्रतिकर्मता**– शरीर की सार-स भाल या चिकित्सा का वर्जन । (७) **अज्ञातता**– अज्ञात रूप में तप करना, उसका प्रदर्शन या प्रख्यापन नहीं करना अथवा अज्ञात कुल की गोचरी करना । (८) **अलोभ**– निर्लोभता का अभ्यास करना । (९) **तितिक्षा**– कष्ट सहिष्णुता का और परीषहों पर विजय पाने का अभ्यास करना । (१०) **आर्जव**– सरलता । साफ दिल सरल होना । (११) **शुचि**– पवित्रता– सत्य, स यम आदि का आचरण । (१२) **सम्यग्दृष्टि**– सम्यग्दर्शन की शुद्धि । (१३) **समाधि**– स्वस्थ चित्त रहना, चित्त की प्रसन्नता बनाये रखना । (१४) **आचारोपगत**– आचार का सम्यग् प्रकार से पालन करना। (१५) **विनयोपगत**– विनम्र होना, अभिमान न करना । (१६) **धृतिमति**– धैर्ययुक्त बुद्धि रखना, दीनता नहीं करना, धैर्य रखना । (१७) **स वेग**– वैराग्यवृद्धि अथवा मोक्ष की अभिलाषा । (१८) **प्रणिधि**– अध्यवसाय की एकाग्रता, शरीर की स्थिरता रखना । (१९) **सुविधि**– सदनुष्ठान का अभ्यास । (२०) **स वर**– आश्रवों का निरोध । (२१) **आत्मदोषोपस हार**– अपने दोषों का उपस हरण, निष्कासन । (२२) **सर्वकाम-विरक्तता**– सर्व विषयों से विमुखता । (२३) **प्रत्याख्यान**– मूलगुण विषयक त्याग अथवा पाप त्याग । (२४) **त्याग**– उत्तरगुण विषयक त्याग अथवा नियमोपनियम बढाना । (२५) **व्युत्सर्ग**– शरीर, भक्तपान, उपधि तथा कषाय का विसर्जन। (२६) **अप्रमाद**– प्रमाद का वर्जन, अप्रमत्त भाव का अभ्यास । (२७) **लवालव**– समाचारी के पालन में सतत जागरूक रहना । (२८) **ध्यानस वरयोग**– ध्यान, स वर, अक्रियता की वृद्धि करना । (२९) **मारणा तिक उदय**– मारणा तिक वेदना में

क्षुब्ध न होना, शा त और प्रसन्न रहना । (३०) **स ग परिज्ञा**–आसक्ति का त्याग । शरीर, उपकरण, शिष्यादि में अनासक्त भाव का अभ्यास । (३१) **प्रायश्चित्तकरण**– दोषों की विशुद्धि करना, विशुद्धि में लिये हुए प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करना । (३२) **मारणा तिक आराधना**– मृत्युकाल में आराधना करना । स लेखना स थारा करने के स स्कारों को दृढ करना।

प्रश्न–१० : गुणस्थान १४ कौन से हैं और उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर– जीव की आध्यात्मिक उच्चावच्च अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हक्त ।ऐसे जीव के गुणस्थान चौदह कहे गये हक्त । जिसमें चौथे गुणस्थान से १४ वें गुणस्थान तक के ग्यारह गुणस्थान वाले जीव उन्नतिशील-प्रगतिशील आत्मस्थान में अवस्थित होते हक्त । शेष एक से तीन गुणस्थान वाले अवनत आत्मस्थान में होते हक्त । उन १४ गुणस्थानों का स्वढप इस प्रकार है–

(१) **मिथ्यात्व गुणस्थान**– जो परभव, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धा त और जीव का अनादि अस्तित्व नहीं मानता है । (२) अठारह प्रकार के पाप, २५ क्रियाएँ एव आठ प्रकार के कर्म का ब ध, उदय आदि नहीं मानता है । (३) जो सुदेव, सुगुढ, सुधर्म, सद्शास्त्र–आगम की श्रद्धा नहीं रखता है, स्वछ दता स्वेच्छा से कुदेव, कुगुढ, कुधर्म और कुशास्त्रों की श्रद्धा करता है । (४) श्रावक के १२ व्रत एव साधु के पाँच महाव्रतों की, समिति गुप्ति की एव अन्य भी अनेक छोटी-बडी जिनाज्ञाओं की सम्यग् श्रद्धा नहीं करता है ।(५) जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव-स वर, निर्जरा, ब ध, मोक्ष, इन तत्त्वों का तीर्थंकर भगवान द्वारा कथित स्वरूप के अनुसार श्रद्धान नहीं करता है । (६) ईश्वर को स सार का कर्ता मानता है । (७) यज्ञ, हवन, पशुबली आदि में धर्म मानता है, अन्य भी छोटी-बडी हिंसाकारी सावद्य प्रवृत्तियों को, छः काया के जीवों का स हार करने वाली प्रवृत्तियों को धर्म मानता है । (८) जिनेश्वर भगव तों के कथित सिद्धा तों से विपरीत या हीनाधिक प्ररूपणा करता है । (९) अनेका तिक सिद्धा तो से हटकर एका त के आग्रह में पडता है । सात नयों का ख्याल नहीं करके दुर्नय में पडता है । (१०) कलह, गुस्सा, र जभाव को दीर्घकाल तक टिकाये रखता है । (११) किसी भी पापकृत्य में अति आसक्त, गृद्ध, लीन बनता है अर्थात् लोभ, परिग्रह, निंदा(पर परिवाद), माया, झूठ, चोरी एव जीवहिंसा आदि किसी भी

पापकृत्य में तल्लीन हो जाता है ।(१२) जो जिनेश्वर भगव तो पर, उनके धर्म पर या उनके मार्ग पर चलने वाले धर्मगुढओं पर द्वेष रखता है इत्यादि । इन उक्त सभी अवस्थाओं वाला जीव व्यवहार से मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जानना चाहिए ।

निश्चय दृष्टि की अपेक्षा मिथ्यात्व रूप मोहनीय कर्म की प्रकृति के उदय होने से एव उदय रहने से जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में रहता है । यह जीव का प्रथम गुणस्थान है । इसमें रहने वाले जीवों की स्थिति की अपेक्षा इसके तीन भ ग है– १. अनादि अन त(अभवी जीवों के मिथ्यात्व आश्री) २. अनादि सा त(भवी जीवों के मिथ्यात्व आश्री) ३. सादि सा त(समकित से प्रतिपाती(पडिवाई) की अपेक्षा है) । इस तीसरे भ ग वाले मिथ्यात्वी की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन की होती है।

इस प्रथम गुणस्थान में मरने या आयुष्य बा धने वाला जीव चार गति में भ्रमण करता है । इस गुणस्थान में वर्तता हुआ जीव कर्मों का विशेष ब ध करता हुआ कर्म वृद्धि और स सार वृद्धि करता है । यह गुणस्थान पाँच अनुत्तर विमान के अतिरिक्त सभी स सारी जीवों में पाया जा सकता है ।

(२) सास्वादन गुणस्थान– जिस जीव ने चौथा गुणस्थान प्राप्त कर लिया है, फिर भी उसमें अथवा तो उससे उपर के किसी भी गुणस्थान में उक्त प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में कही गई किसी भी व्यवहार की अवस्था को प्राप्त करता है और निश्चय से मिथ्यात्व के उदयाभिमुख होता है, तब वह उन चौथे, पाँचवें आदि गुणस्थानों से गिर कर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है । उस समय चौथे आदि गुणस्थानों से च्युत होकर प्रथम गुणस्थान में पहु चने के बीच का जो क्षणिक काल एव आत्मा की अवस्था है वही दूसरा सास्वादन गुणस्थान है । यथा– वृक्ष से टूटा हुआ फल भूमि पर गिरने के पूर्व जो मार्ग में कुछ समय व्यतीत करता है, वैसी अवस्था दूसरे गुणस्थान की समझनी चाहिये। इस गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति छः आवलिका की होती है जो एक सेक ड के हजारवें भाग से भी कम स्थिति होती है । इसलिये इस गुणस्थान का अस्तित्व कि चित् मात्र होता है, जो छद्मस्थों के अनुभवगम्य नहीं है । यह गुणस्थान एकेन्द्रियों में नहीं होता है । शेष बेइन्द्रिय आदि

असन्नि प चेन्द्रिय पर्यंत के अपर्याप्त में होता है, सन्नी प चेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों में और चारों गति में होता है ।

(३) मिश्र गुणस्थान– समकित और मिथ्यात्व के मिश्र परिणामों वाली आत्मा की अवस्था को मिश्र गुणस्थान कहा गया है । जैसे– श्रीख ड खट्टे मीठे उभय स्वभाव वाला होता है, उसी प्रकार इस गुणस्थान वाला जिनेश्वर भगव त के धर्म की भी श्रद्धा रखता है एव जिनेश्वर भगव त के सिद्धा तो से विपरीत सिद्धा तो वाले धर्म की भी श्रद्धा करता है । सभी धर्मों को सु दर एव सही समझता है । ऐसे भोले स्वभाव वाली अनभिज्ञ आत्माओं को यह तीसरा गुणस्थान होता है । यह गुणस्थान भी जघन्य-उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट से कम समय तक ही रहता है । उसके बाद आत्मा के वे मिश्र परिणाम मिथ्यात्व में अथवा समकित में परिवर्तित हो जाते हक्त । तात्पर्य यह है कि इस गुणस्थान वाला शुद्ध सम्यक्त्व(सही समझ) के परिणामों में नहीं आवे तो स्वतः प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त करता है । यों पुनः कभी अ तर्मुहूर्त के लिये मिश्र गुणस्थान में और फिर ज्यादा समय मिथ्यात्व गुणस्थान में बिताता रहता है ।

यह गुणस्थान मिश्र परिणाम वाला होने से इसमें जीव मरता भी नहीं है एव आयुष्य भी नहीं बा धता है । यह गुणस्थान सन्नी जीवों के पर्याप्तावस्था में ही होता है । पाँच अणुत्तर विमानवासी देवों में यह गुणस्थान नहीं होता है । एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियों में भी नहीं होता है । युगलिकों में भी यह गुणस्थान नहीं होता है । यह गुणस्थान अनादि मिथ्यात्वी को नहीं आता है कि तु जिसने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त करली है फिर सम्यक्त्व से च्युत हो गया है ऐसे जीव में ही यह गुणस्थान अ तर्मुहूर्त के लिये पाया जा सकता है ।

(४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान– पहले गुणस्थान में जो आत्मा की अवस्था रूप लक्षण कहे गए हक्त उन अवगुणों की अवस्थाओं में नहीं रहने वाला इस गुणस्थान को प्राप्त करता है अर्थात् उन उक्त अवगुणों से विपरीत गुणों वाली आत्म अवस्था को व्यवहार की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहा गया है । निश्चय दृष्टि से दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृति एव चारित्र मोह की अन तानु-ब धी क्रोध मान माया लोभ ये चार; यों कुल ७ प्रकृति के क्षय, उपशम

या क्षयोपशम होने पर जीव को यह चौथा गुणस्थान प्राप्त होता है । इस गुणस्थान वाले की सभी प्रकार की समझ एव दृष्टिकोण सम्यग् ही होते हक्त, अत: इसे सम्यगदृष्टि कहा गया है। इस गुणस्थान वाला किसी भी प्रकार के प्रत्याख्यान भावों में परिणत या प्रगतिशील नहीं होता है, केवल सम्यग् श्रद्धान तक ही रहता है । इसलिये इसके सम्यग्दृष्टि गुण के साथ अविरत लग जाने से इसका परिपूर्ण नाम अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान होता है । इस गुणस्थान वाले को सम्यक्त्वी, समकिती, सम्यग्दृष्टि आदि नामों से भी कहा जाता है । इस गुणस्थान को गुण की मुख्यता से सम्यक्त्व या समकित ऐसा कथन भी कर दिया जाता है । यथा- एक बार **समकित** अर्थात् चौथा गुणस्थान आ जाने पर जीव अर्द्ध पुद्‌गल परावर्तन से ज्यादा स सार में भ्रमण नहीं करता है ।

इस गुणस्थान वाला जिनेश्वर भगव त भाषित सभी सिद्धा तो में ज्ञान चारित्र तप रूप सभी प्रवर्तनों में, जीवादि पदार्थों में, सम्यक् सही श्रद्धान रखता है, कथन या प्ररूपण भी सही करता है, हिंसा आदि पापकृत्यों में अति आसक्त नहीं होता है, उन पापजनक प्रवृत्तियों में, छ:काया के आर भजनक प्रवृत्तियों में कभी भी धर्म नहीं मानता है, कषायों को और कलह को दीर्घकालीन नहीं रखता है । इस गुणस्थान में आयुष्य बा धने वाला जीव जघन्य इस भव सहित तीसरे भव में मोक्ष जाता है । उत्कृष्ट १५ वें भव में मोक्ष जाता है । यह गुणस्थान चार गति के सन्नी जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों में होता है ।

निश्चय दृष्टि से इस गुणस्थान में सात प्रकृतियों के क्षय आदि के अनेक विकल्प होते है । क्षय आदि का अर्थ इस प्रकार है- १. **क्षय**- उस प्रकृति की आत्मा में से सत्ता समाप्त हो जाना । २. **उपशम**- उस प्रकृति का उदय ढक जाना, सत्ता में अवढद्ध रहना । ३. **क्षयोपशम**- उस प्रकृति का प्रदेशोदय होना, विपाकोदय ढकना ।४.**उदय**- उस प्रकृति का विपाकोदय होना उदय कहा जाता है । **पुनश्च**- १. क्षय- सर्वथा क्षय २. उपशम-सर्वथा अनुदय ३. क्षयोपशम-प्रदेशोदय ४. उदय-विपाकोदय ।सात प्रकृतियों से होने वाले विकल्प इस प्रकार है-

१. सात प्रकृति का क्षय- क्षायिक समकित । २. सात प्रकृति का उपशम-उपशम समकित ।३. छ प्रकृति का क्षय, एक का उदय-क्षायिक वेदक ।४. छ प्रकृति का उपशम, एक का उदय-उपशम वेदक ।

५. छ प्रकृति का क्षयोपशम, एक का उदय-क्षयोपशम समकित । ६. पाँच का क्षयोपशम, एक का उपशम, एक का उदय-क्षयोपशम समकित । ७. चार का क्षयोपशम, २ का उपशम, एक का उदय-क्षयोपशम समकित । ८.चार का क्षय, ३ का क्षयोपशम । ९. पाँच का क्षय, २ का क्षयोपशम । १०. छ प्रकृति का क्षय, एक का क्षयोपशम । ११. चार का क्षय, २ का क्षयोपशम, एक का वेदन(सूक्ष्म) १२.पाँच का क्षय, एक का क्षयोपशम, एक का वेदन(सूक्ष्मतर) । क्रमा क ८ से १२ के ५ भ ग क्षायिक समकित की पूर्व भूमिका के भ ग है, इनमें अन तानुब धी चतुष्क का सर्वथा क्षय नियमत: होता है । स क्षिप्त में, इन सभी भ गों का तीन समकित में समावेश होता है तब उक्त तीसरे भ ग से लेकर १२ वें तक के सभी भ गों का क्षयोपशम समकित में समावेश हो जाता है अर्थात् सातों का क्षय या सातों का उपशम नहीं हो वे सभी भ ग क्षयोपशम समकित के ही दर्जेहक्त ।

इस गुणस्थान में वर्तता हुआ जीव नरक-तिर्यंच का आयुष्य ब ध नहीं करता है, देव या मनुष्य यों दो गति का आयुष्य ब ध कर सकता है अर्थात् इस गुणस्थान वाले नारकी देवता केवल **मनुष्य का** एव तिर्यंच मनुष्य केवल **देवता का** ही आयुष्य ब ध करते हक्त । देव का आयुब ध करने वाले इस गुणस्थानवर्ती मनुष्य तिर्यंच दोनों केवल वैमानिक जाति के देवों का आयुब ध करते हक्त, भवनपति, व्य तर एव ज्योतिषी इन तीन जाति के देवों का आयुष्य नहीं बा धते हक्त । इस गुणस्थान वाला स्त्री वेद और नपु सक वेद का ब ध भी नहीं करता है । केवल पुढष वेद का ही ब ध करता है ।

इस गुणस्थान की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक ३३ सागरोपम की होती है (६६ सागरोपम कहना भ्रम पूर्ण है) । इतने समय के बाद यह गुणस्थान बदल जाता है अर्थात् वह जीव पाँचवें आदि गुणस्थानों में आगे बढ जाता है अथवा नीचे के गुणस्थानों में चला जाता है । एक भव में यह गुणस्थान हजारों बार आ सकता है और अस ख्य भवों में अस ख्य बार आ सकता है ।

क्षायिक समकित एक बार ही आती है । इसके आने के बाद मनुष्य कोई भी आयुष्य नहीं बा धता है और उसी भव में मोक्ष जाता है । यदि मनुष्य के क्षायिक समकित आने के पहले चारों गति में से

किसी गति का आयुष्य ब ध गया हो तो उस गति में जाना ही पडता है । नरक देव में गया हुआ क्षायिक सम्यक्त्वी फिर मनुष्य का भव प्राप्त कर मोक्ष जाता है । मनुष्य तिर्यंच का आयुष्य बा धा हुआ जीव वहाँ जाता है फिर उस भव में देव का आयुष्य बा धता है और देव भव के बाद मनुष्य बन कर मोक्ष जाता है । कि तु इन भवों के बीच में वह क्षायिक समकित कभी बदलती नहीं है अर्थात् एक बार प्राप्त हुई यह समकित मोक्ष पर्यंत सदा शाश्वत रहने वाली होती है । इस समकितकी प्राप्ति केवल मनुष्य गति में ही होती है अन्य तीन गति में नहीं ।

उपशम सम्यक्त्व जीव को एक भव में उत्कृष्ट २ बार एव अनेक भवों में कुल ५ बार ही आ सकती है । क्षयोपशम समकित की अपेक्षा ही यह गुणस्थान एक भव में हजारों बार एव अस ख्य भवों में अस ख्य बार आता है । उपशम समकित वाला ही मिथ्यात्व में जाते समय दूसरा गुणस्थान स्पर्श करता है । क्षयोपशम समकित वाला तो छट्ठे, पाँचवें, चौथे गुणस्थान से सीधा मिथ्यात्व गुणस्थान में जा सकता है और ७ वें, ८ वें, ९ वें, १० वें, ११ वें गुणस्थान वाला सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता है ।

(५) देश विरति(श्रावक) गुणस्थान– किसी भी सम्यक्त्व वाला जीव जब सम्यक् श्रद्धा के साथ व्रत प्रत्याख्यान की ढचि वाला होता है, कुछ न कुछ व्रत प्रत्याख्यान धारण करता है, पापों का देशतः त्याग करता है, उसे व्यवहार से पाँचवाँ देश विरति गुणस्थान प्राप्त होता है । इस गुणस्थान वाले को श्रावक या श्रमणोपासक कहा जाता है।

निश्चय दृष्टि से मोहनीय कर्म की अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क रूप चार प्रकृति का क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम होने पर यह गुणस्थान प्राप्त होता है अर्थात् सात प्रकृति चौथे गुणस्थान में कही गई है उनके सहित कुल ११ प्रकृति का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम होने से यह गुणस्थान प्राप्त होता है ।

इस गुणस्थान वाले में चौथे गुणस्थान वाले सभी लक्षण पाये जाते हक्त, विशेषता यह है कि इसमें व्रत धारण एव प्रत्याख्यान ढचि का विकास होता है । वह श्रावक के १२ व्रतों में से अनुकूलता अनुसार एक या अनेक अथवा सभी व्रतों को धारण करता है । आगे बढकर श्रावक की ११ प्रतिमाएँ धारण करता है । तीन मनोरथ चि तन करता है,

दैनिक १४ नियम धारण एव सामायिक करता है; महीने में कम से कम ६ पौषध करता है; जीव अजीव आदि तत्वों का ज्ञाता बनता है; क्रमशः अनेक शास्त्रों में, जिन मत में विशारद, कोविद, बहुश्रुत होकर देवों से भी वाद-विवाद कर विजय प्राप्त करने योग्य बन सकता है और अपने धर्म में ऐसी दृढ आस्था वाला बन जाता है कि देव दानव की स पूर्ण शक्ति से युक्त कष्ट झेलकर भी विचलित नहीं होता है ।

इस गुणस्थान वर्ती जीव अपने जीवन में दीक्षा लेने का सदा मनोरथ रखता है, दीक्षा लेने वालों का हार्दिक सहयोगी होता है एव दीक्षित श्रमण निर्ग्रंथों का हार्दिक स्वागत, भक्ति, विनय, व दन करता है, उनकी पर्युपासना–सेवा करता है, भक्ति और उत्साह के साथ उन्हें स यम योग्य कल्पनीय आहा-पानी, वस्त्र-पात्र, औषध-भेषज, मकान-पाट आदि का निर्दोष दान देकर प्रतिलाभित करता है । श्रमण निर्ग्रंथों को देखते ही, उनके दर्शन होते ही, उसकी आत्मा में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो जाती है । इसलिये इस गुणस्थान वाले को श्रमण+उपासक= श्रमणोपासक इस सार्थक नाम से कहा जाता है।

इस गुणस्थान में मरने वाला या आयुब ध करने वाला केवल वैमानिक देव रूप देवगति को ही प्राप्त करता है ।अन्य किसी भी गति अथवा द डक में नहीं जाता है । वैमानिक में भी १२ देवलोक एव नौ लोका तिक में ही जाता है । यह गुणस्थान जीव को एक भव में उत्कृष्ट अनेक हजार बार एव आठ भव में भी उत्कृष्ट अनेक हजार बार आ सकता है अर्थात् इतनी बार इस गुणस्थान को प्राप्त करना और छोड देना हो सकता है । छोडने में अनेक रास्ते है– १. आगे के गुणस्थानों में जाना २. मिथ्यात्व आदि रूप में नीचे जाना ३.आयु समाप्त हो जाने के कारण स्वतः इस गुणस्थान का छूट जाना और चौथे गुणस्थान का प्राप्त होना ।अर्थात् आयु समाप्त हो जाने पर इस गुणस्थान वाला देवलोक में जाता है और वहाँ पाँचवाँ आदि उपर के गुणस्थानों का स्वभाव नहीं होने से देवायुष्य के प्रारंभ होते ही स्वाभाविक चौथा गुणस्थान आ जाता है ।

इस गुणस्थान की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व वर्षों की होती है अर्थात् पूरे भव तक निर तर भी यह गुणस्थान रह सकता है । मनुष्य एव तिर्यंच यों दोनों गति में ही सन्नी जीवों के

पर्याप्त में यह गुणस्थान हो सकता है । तिरछे लोक में मनुष्य तिर्यंचों को यह गुणस्थान होता है । मनुष्य की अपेक्षा इस गुणस्थान वाले मनुष्य लोक में स ख्यात होते हक्त और ढाई द्वीप के बाहर के तिर्यंच की अपेक्षा अस ख्य होते हक्त । इस गुणस्थान में आयुष्य बा धने वाला या मरने वाला कम से कम तीन भव(वर्तमान भव सहित) उत्कृष्ट १५ भव करके मोक्ष जाता है ।

(६) प्रमत्त स यत गुणस्थान– जो मनुष्य भावपूर्वक स यम स्वीकार करता है, जिनशासन में प्रव्रजित होता है, मुनि बनता है और उसके बाद उत्तरोत्तर स यम गुणों का विकास करते हुए भगवदाज्ञा का पालन करता है उसे व्यवहार की अपेक्षा यह छट्ठा प्रमत्त स यत गुणस्थान प्राप्त होता है ।निश्चय दृष्टि से पूर्वोक्त ११ मोहकर्म की प्रकृति एव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क यों कुल १५ मोहकर्म की प्रकृति के क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम होने से यह गुणस्थान प्राप्त होता है । व्यवहार की अपेक्षा चौथे गुणस्थान में कहे गये सभी गुणों से तो यह सम्पन्न होता ही है । उन गुणों के अभाव में यह गुणस्थान या उपर के कोई भी गुणस्थान नहीं रहते हक्त ।

यह गुणस्थान और आगे के सभी गुणस्थान केवल मनुष्य गति में ही होते हक्त, शेष तीन गति में नहीं होते । एक जीव को यह गुणस्थान अधिकतम आठ भव में आ सकता है । एक भव में यह गुणस्थान स यम रहित होने की अपेक्षा सेकडों वार आ सकता है और आठ भवों में भी सेकडों बार आ सकता है और अप्रमत्त होने की अपेक्षा हजारों बार आ सकता है । इस गुणस्थान में आयुष्य बा धने वाला एव मरने वाला वैमानिक देव के ३५ स्थानों में उत्पन्न हो सकता है, अन्यत्र कहीं भी उत्पन्न नहीं होता है । इस गुणस्थान में जीव जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व वर्ष तक लगातार स्थिर रह सकता है ।

गुण स पन्न श्रमण एव श्रमणियाँ इस गुणस्थान के अधिकारी होते है । शरीर स ब धी प्रमाद रूप प्रवृतियों से युक्त होने के कारण इस गुणस्थान का नाम **प्रमत्त स यत** है । वे प्रवृतियाँ इस प्रकार है– गोचरी लाना, खाना एव मल-मूत्र त्यागना, सोना, वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का एव शरीर का परिकर्म, शुश्रूषा करना आदि ये मुनि जीवन के प्रमाद है । अन्य मद्य, निंदा, विषय, कषाय, विकथा आदि मुनि जीवन के

योग्य नहीं है, उन्हे यहाँ नहीं समझना चाहिये । यह गुणस्थान जब भी आता है तो सातवें गुणस्थान में होकर ही आता है । उसके सिवाय कोई भी गुणस्थान वाला सीधा इस गुणस्थान में प्रवेश नहीं करता है ।

इस गुणस्थान वाला पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, रात्रिभोजन त्याग एव अन्य अनेक भगवदाज्ञाओं का पालन करता है, स पूर्ण १८ पापों का त्यागी होता है; किसी भी पाप कार्य की, सावद्य कार्य की, छः काय जीवों की हिंसामूलक प्रवृतियों की प्रेरणा या प्ररूपणा भी नहीं करता है, तीन करण तीन योग से छोटी-बडी सभी सावद्य प्रवृतियों का मन-वचन-काया से त्याग करता है, सदा सरल, निष्कपट रहता है, यथासमय स्वाध्याय ध्यान में सदा प्रयत्नशील बना रहता है ।

(७)अप्रमत्त स यत गुणस्थान– छट्ठे गुणस्थान में कहे गये सभी लक्षणों से युक्त जीव जब शरीर और उपकरण स ब धी प्रमाद प्रवृतियों में नहीं होता है अथवा प्रवृतियों के होते हुए भी भावो में निस्पृह रहता है, तप, स्वाध्याय, ध्यान, आत्मचि तन में लीन होता है, आहारस ज्ञा, भयस ज्ञा आदि से रहित होता है, निकेवल आत्मलक्षी परिणामों में वर्तता है तब उस श्रमण को यह सातवाँ अप्रमत्त स यत गुणस्थान प्राप्त होता है । निश्चय दृष्टि से इसमें उक्त १५ प्रकृत्तियों का क्षय आदि छट्ठे गुणस्थान के समान ही रहता है ।

जीव के स यम भाव में प्रवेश करने पर सर्वप्रथम इसी गुणस्थान की प्राप्ति होती है । उसके बाद ही छट्ठा या आठवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है अर्थात् यह गुणस्थान स यम का प्रवेशद्वार है । यह गुणस्थान व्यवहार से श्रमण धर्म स्वीकार करने वालों में होने के अतिरिक्त कदाचित् गृहस्थलि ग में एव अन्य मतावल बी के लि ग–वेशभूषा में भी भावों से हो सकता है ।

इस गुणस्थान की स्थिति प्रार भ में (जीवन में पहली बार आने पर) जघन्य अ तर्मुहूर्त की होती है और बाद में पुनः पुनः आने पर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त की होती है । एक भव में यह गुणस्थान सेकडों-हजारों बार आ सकता है अर्थात् यह छट्ठे गुणस्थान में हजारों बार आता जाता रहता है ।

इस गुणस्थान में आयुब ध प्रार भ नहीं किया जाता है । छट्ठे

गुणस्थान में प्रार भ किया हो तो इसमें पूर्ण किया जा सकता है । इस अपेक्षा से इसमें आयुब ध और मरने पर गति केवल वैमानिक की ही होती है, जो छट्ठे गुणस्थान के समान है । यह गुणस्थान भी उत्कृष्ट आठ भव में ही आ सकता है । इस गुणस्थान वाला सीधा छट्ठे के अतिरिक्त नीचे के किसी गुणस्थान में नहीं जाता है कि तु आयुष्य समाप्त होने पर सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता है ।

(८) निवृत्ति बादर गुणस्थान – यह गुणस्थान निश्चय दृष्टि से ही आता है, व्यवहार दृष्टि से सात गुणस्थान ही जाने जाते हक्त। अत: शुक्लध्यान एव अपूर्वकरण गुणश्रेणी प्रार भ करने पर इस गुणस्थान की प्राप्ति होती है । मोहनीय कर्म की जो भी प्रकृत्ति सातवें गुणस्थान तक क्षयोपशम में होती है, वह यहाँ परिवर्तित हो जाती है अर्थात् इस गुणस्थान में मोहकर्म की प्रकृतियों का क्षय या उपशम ही रहता है कि तु क्षयोपशम नहीं रहता । इसलिये इस गुणस्थान में और आगे के गुणस्थानों में क्षयोपशम समकित नहीं होती है । उपशम और क्षायिक दो समकित ही होती है ।

अत: यहाँ से चारित्रमोह कर्म की अपेक्षा दो श्रेणियाँ होती है– १. उपशम श्रेणी २. क्षपक श्रेणी । उपशम श्रेणी करने वाला यथायोग्य प्रकृतियों का उपशम करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान तक बढता है और क्षपक श्रेणी करने वाला यथायोग्य प्रकृतियों का पूर्ण क्षय करता हुआ क्रमश: आगे बढता है किन्तु केवल ग्यारहवाँ गुणस्थान छोडकर सीधा बारहवें गुणस्थान में बढ जाता है ।

इस गुणस्थान में धर्मध्यान ही आगे बढते हुए शुक्लध्यान में परिवर्तित हो जाता है अर्थात् इसी गुणस्थान से शुक्लध्यान प्रार भ होता है । इस गुणस्थान में रहे जीव के हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा इन छ: मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का यथाक्रम से क्षय अथवा उपशम होता है ।

क्षपकश्रेणी प्रार भ करने वाला उसी भव में मुक्त होता है और उपशम श्रेणी करने वाला उस भव में मुक्त नहीं होता है किन्तु श्रेणी से गिर जाता है । सातवें आदि किसी भी गुणस्थान में पहुँचकर वहाँ की गति को प्राप्त करता है । इस गुणस्थान में और आगे के गुणस्थानों में आयुब ध नहीं होता है, मृत्यु हो सकती है । इस गुणस्थान में मरने

वाला पाँच अणुत्तर विमान में ही जाता है । इस गुणस्थान में काल करने वाला जघन्य तीसरे भव में उत्कृष्ट १५ वें भव में मोक्ष जाता है। इस गुणस्थान में काल नहीं करके कोई जीव नीचे के गुणस्थानों में चला जाय तो उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन जितना अन तकाल भी स सार में रह सकता है । यह गुणस्थान एक भव में उत्कृष्ट चार बार और तीन भवों में उत्कृष्ट नौ बार आ सकता है ।

इस गुणस्थान वाला श्रेणी चढते समय तो नववें गुणस्थान में ही जाता है पुन: गिरते समय वापिस आने पर सातवें में जा सकता है । अन्य किसी गुणस्थानों में सीधा जाता आता नहीं है । कभी भी काल करे तो उस समय सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता है ।

इस आठवें गुणस्थान का यह स्वरूप तो स्पष्ट समझ में आने जैसा है किन्तु इस गुणस्थान का और नौवें गुणस्थान का, इनके नामों से मतलब समझने लगें तो कई उलझने और समाधान खडे होते हक्त । अत: उस सूक्ष्मता में सामान्य पाठक को जाने की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में इन दोनों के नाम सही पर परागत है या नहीं है ? कभी लिपि प्रमाद से इधर-उधर तो नहीं हुए है ? इत्यादि निर्णय नहीं किया जा सकता । अत: नाम के विवाद में नहीं पडना चाहिये । इस गुणस्थान के प्रार भ में क्षयोपशम समकित समाप्त हो जाती है और समकित मोहनीय का उदय भी ढक जाता है । फिर यथाक्रम से हास्यादि ६ प्रकृतियों का उदय ढकने पर जीव आगे बढता है ।

(९) अनिवृत्ति बादर गुणस्थान– हास्यादि ६ प्रकृतियों के पूर्ण क्षय या उपशम हो जाने पर जीव इस गुणस्थान में प्रवेश करता है और यहाँ रहा हुआ जीव तीनों वेद एव स ज्वलन के क्रोध मान माया के उदय को यथाक्रम से रोकता है अर्थात् उनका क्षय अथवा उपशम करता है। अ त में स ज्वलन माया का उदय ढकने पर इस गुणस्थान वाला जीव दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । शेष इस गुणस्थान का वर्णन आठवें गुणस्थान के वर्णन अनुसार समझ लेना चाहिये ।

(१०) सूक्ष्म स पराय गुणस्थान– स पराय का अर्थ है कषाय । यहाँ स ज्वलन लोभ मात्र अवशेष रहता है, शेष स ज्वलन क्रोध मान माया का उदय समाप्त होने पर जीव नौवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । दसवें गुणस्थान के अ तिम समय तक लोभ का उदय

रहता है । उसके बाद उपशम श्रेणी वाला उसका उपशम करके ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है और क्षपक श्रेणी वाला उसका पूर्णतया क्षय करके बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । इस गुणस्थान की स्थिति, गति आदि सभी वर्णन आठवें गुणस्थान के समान है, विशेष यह है कि इस गुणस्थान वाला उपर दो गुणस्थान में जा सकता है, ग्यारहवें और बारहवें में । नीचे केवल नौवें में जा सकता है और काल कर जाय तो चौथे गुणस्थान में जाता है ।

यह गुणस्थान जीव को उत्कृष्ट तीन भवों में आ सकता है। एक भव में उत्कृष्ट चार बार और तीन भवों में उत्कृष्ट नौ बार आ सकता है । जिस भव में मोक्ष जाना होता है उस भव में तो एक बार ही आता है । आठवें, नौवें, दसवें गुणस्थान में परिणाम हायमान और वर्धमान दोनों तरह के होते हक्त । श्रेणी से गिरने वालों की अपेक्षा हायमान और श्रेणी चढने वालों की अपेक्षा वर्धमान परिणाम होते है । इस गुणस्थान वाले में ४ ज्ञान, ३ दर्शन= ७ हो सकते है किन्तु उपयोग केवल ज्ञानोपयोग अर्थात् साकारोपयोग ही होता है ।

(११) उपशा त मोह गुणस्थान– स ज्वलन लोभ के उपशम होने पर स पूर्ण मोहकर्म का उदय समाप्त हो जाता है । तब उपशम श्रेणी वाला दसवें गुणस्थानवर्ती जीव ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । अ तर्मुहूर्त मात्र समय के लिये ही लोभ कषाय का उपशम किया जाता है अत: इस गुणस्थान वाला लोभ कषाय का उपशम समाप्त होने पर अर्थात् उपशम की स्थिति पूर्ण होने पर पुन: उदयाभिमुखी होने से दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । इस गुणस्थान वाला आगे बारहवें गुणस्थान में नहीं जाता है । इस गुणस्थान वाले में मोह, रागद्वेष आदि नहीं होने से उसे वीतराग भी कहा जाता है । जिससे उसका पूर्ण नाम उपशा त मोह वीतराग गुणस्थान है ।

यह गुणस्थान एक भव में दो बार और उत्कृष्ट दो भव में चार बार आ सकता है । इस गुणस्थान में उपशम समकित और क्षायिक समकित दोनों हो सकती है । इस गुणस्थान के चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहा गया है। शेष वर्णन पूर्व के गुणस्थानों के समान है । यहाँ ग्यारह गुणस्थानों में मोहकर्म की अपेक्षा विचार किया गया है अन्य कर्मों का भी यथायोग्य उदय विचार अन्यत्र से जान लेना चाहिये ।

इस ग्यारहवें गुणस्थान में केवल साता वेदनीय कर्म के अतिरिक्त सभी कर्म का ब ध होना ढक जाता है । शाता वेदनीय कर्म भी केवल दो समय की स्थिति वाला ब धता है, जो ब ध नाम मात्र का ही है । इस गुणस्थान में केवल अवस्थित परिणाम ही रहते है । इस गुणस्थान की समय मर्यादा समाप्त होने के बाद हायमान परिणाम होते हक्त उस वक्त दसवाँ गुणस्थान प्रार भ हो जाता है ।

(१२) क्षीण मोह गुणस्थान– दसवें गुणस्थान में रहे हुए क्षपकश्रेणी वाले जीव, लोभ मोह के क्षय होने से मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृति क्षय हो जाने पर इस बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करते हक्त इसलीये इसे क्षीणमोह गुणस्थान कहा गया है । इस गुणस्थान के अ तिम समय में जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अ तराय कर्म इन तीन अवशिष्ट घातीकर्मों को क्षय करता है ।

इस गुणस्थान की जघन्य उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त की स्थिति होती है; एक समय की स्थिति नहीं होती है । इस गुणस्थान में कोई भी जीव मरता नहीं है । यहाँ केवल वर्धमान परिणाम ही होते है । हायमान एव अवस्थित परिणाम नहीं होते हक्त। स्थिति पूर्ण होने पर इस गुणस्थान वाला तेरहवें गुणस्थान में जाता है ।

(१३) सयोगी केवली गुणस्थान– बारहवें गुणस्थान के अ तिम समय में तीन कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट होते है तब जीव को यह तेरहवा गुणस्थान प्राप्त होता है । इस गुणस्थान वाला सर्वज्ञ-सर्वदर्शी कहा जाता है । इसकी स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व की होती है । इसमें अपेक्षित मन वचन काया का योग प्रवर्तित होता है, अत: इसे सयोगी केवली गुणस्थान कहा गया है । इस गुणस्थान में सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली दोनों होते है । ल बी उम्र वाले केवलज्ञान पर्याय में विचरण करते हक्त। मुहूर्त मात्र आयु शेष रहने पर केवली के आयोजीकरण होता है जिसमें मुक्त होने के पूर्व की प्रक्रियाएँ प्रार भ होती है । यथा– जिम्मेदारी के कर्तव्य पूर्ण करना, दूसरों की जिम्मेदारी के कार्य उसके सुपुर्द करना, आवश्यक हो तो केवली समुद्घात करना, पाट आदि प्रत्यर्पणीय चीजें पुन: यथास्थान लौटाना, फिर योग निरोध करना, जिसमें क्रमश: मन वचन काया के योगों का निरोध करना, शैलेषी अवस्था प्राप्त करना ।ये सारी प्रक्रियाएँ

इसी गुणस्थान में होती है । योग निरोध जब पूर्ण होता है और शैलेशी अवस्था प्राप्त होती है तब जीव के १३ वें गुणस्थान का समय पूर्ण हो जाता है । इस गुणस्थान में प्राय: अवस्थित परिणाम ही रहते हक्त किन्तु अ तिम समयों के अ तर्मुहूर्त में वर्धमान परिणाम होते हक्त, जिनमें योग निरोध होता है ।

(१४) अयोगी केवली गुणस्थान– तेरहवें गुणस्थान के अ तिम समयों में की जाने वाली प्रक्रियाओं में से योग निरोध क्रिया पूर्ण होकर शैलेषी अवस्था की प्राप्ति होने पर जीव १४ वें गुणस्थान में प्रवेश करता है । इस गुणस्थान में प्रार भ से ही शरीर के दो तिहाई भाग में आत्म-प्रदेश अवस्थित हो जाते हक्त, शरीर में उनका क पन भी ब द हो जाता है, श्वासोश्वास क्रिया भी ब ध हो जाती है । इस गुणस्थान में केवल वर्धमान परिणाम होते हक्त । इसकी अ, इ, उ, ऋ, लृ ये पाँच लघु अक्षर उच्चारण जितने समय की स्थिति होती है, इस स्थिति के पूर्ण होने पर अ तिम समय में चार अघातिकर्मों का क्षय करके, जीव स पूर्णकर्मरहित, निर जन, निराकार, परमात्म स्वढप को प्राप्त करता है ।

मुक्त होते हुए जीव, चार कर्मों की निर्जरा करते हुए, तीनों शरीरों को छोडते हुए, ऋजुश्रेणि से, अस्पर्शद् गति से साकारोपयोग में वर्तते हुए सिद्ध होता है, तब जीव १४ वें गुणस्थान को भी छोडकर आत्मस्वरूपी सिद्ध अवस्था में सदा के लिये सादि अन त स्थिति में लोकाग्र में अवस्थित हो जाता है । वहाँ सिद्धों के आत्मप्रदेश अ तिम शरीर के अनुसार दो तृतीयाँश भाग की अवगाहना में शरीर स स्थान के घन रूप में अवस्थित रहते हक्त ।

प्रश्न–११ : इन समवायो में गुणस्थान एव कर्म प्रकृति स ब धी क्या-क्या निरूपण है ?

उत्तर– **(१)** दशवें सूक्ष्म स पराय गुणस्थान में १७ कर्म प्रकृति का ब ध होता है– १–५. ज्ञानावरणीय, ६–९. दर्शनावरणीय, १०. शातावेदनीय, ११. यशोकीर्ति १२. उच्चगोत्र । १३–१७. पाँच अ तराय कर्म प्रकृति यों आयुष्य मोहनीय दो कर्म छोडकर छ कर्मों का ब ध होता है । **(२)** आठवें गुणस्थान वाले क्षायिक समकिती के २१ मोहकर्म प्रकृति की सत्ता रहती है । **(३)** मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय स क्लिष्ट परिणामी अपर्याप्त जीव नामकर्म की २५ प्रकृति का ब ध करता है– (१) तिर्यंच

गति । (२) विकलेन्द्रिय जाति । (३–५) तीन शरीर । (६) औदारिक अ गोपा ग । (७-८) एक स घयण, एक स स्थान । (९-१२) वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श नाम । (१३) तिर्यंचानुपूर्वी । (१४) अगुढलघु । (१५) उपघात । (१६-२४) त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति । (२५) निर्माणनाम । **(४)** अभवी जीव के मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृति की सत्ता होती है । सम्यक्त्व और मिश्र दो प्रकृति की सत्ता नहीं होती है । भवी जीवों के अट्ठावीस प्रकृति की सत्ता हो सकती है ।

(५) जीव देवगति का ब ध करता हुआ नाम कर्म की २८ प्रकृति का ब ध करता है– (१) देवगति । (२) प चेन्द्रिय जाति। (३-५) तीन शरीर । (६) एक स स्थान । (७) एक अ गोपा ग । (८-११) वर्णादि चार शुभ । (१२) देवानुपूर्वी । (१३) अगुढलघु । (१४) उपघात । (१५) पराघात । (१६) उश्वास । (१७) शुभविहायोगति । (१८–२१) त्रस चतुष्क । (२२) स्थिरास्थिर । (२३) शुभाशुभ । (२४) आदेय अनादेय; इन दो-दो में से एक एक ब ध । (२५–२७) सुभग, सुस्वर, यशोकीर्ति । (२८) निर्माण नाम । यहाँ पर औदारिक शरीर नहीं होने से स घयण का ब ध नहीं कहा गया है तथा शुभ त्रिक में दोनों में से कोई भी एक ब ध सकता है अर्थात् समुच्चय जीवों की अपेक्षा दोनों का ब ध है, एक जीव की अपेक्षा १–१ का ब ध होता है । **(६)** इसी प्रकार नरकगति नाम कर्म बा धने वाला जीव भी नाम कर्म की २८ प्रकृति का ब ध करता है । विशेषता यह है कि अशुभ विहायोगति, हु डस स्थान, अस्थिर आदि अशुभ ही कहना । **(७)** तीर्थंकर नामकर्म बा धने वाला भवी जीव देवगति की २८ सहित कुल २९ नामकर्म प्रकृति का ब ध करता है और देवगति में उत्पन्न होता है ।

प्रश्न–१२ : आचार प्रकल्प के कौन-कौन से अर्थ है एव २८ आचार प्रकल्प किस प्रकार होते हक्त ।

उत्तर– इस शब्द के विविध अर्थ हक्त– (१) आचार स ब धी विशेष कल्प अर्थात् नियम, उपनियम, मर्यादाओं का वर्णन करने वाला शास्त्र– 'आचारांग सूत्र' । (२) आचार और प्रायश्चित्त का कथन करने वाला 'निशीथ अध्ययन सहित आचारा ग सूत्र' । (३) आचारा ग सूत्र का प्रकल्प अर्थात् निकालकर अलग किया हुआ अध्ययन विभाग

रूप 'निशीथ सूत्र' । (४) आचार अर्थात् स यमाचरण में लगे दोषों का प्रकल्प अर्थात् प्रायश्चित्त विकल्प । इन चार अर्थों में से प्रथम के दो अर्थ से २८ आचार प्रकल्प अध्ययन रूप होते है– आचारा ग सूत्र के क्रमश: २३ अध्ययन+निशीथ के ५ अध्ययन– लघु, गुढमासिक, लघु, गुढचौमासिक, आरोपणा । अथवा क्रमश: २५ अध्ययन+निशीथ के तीन अध्ययन लघु, गुढ, आरोपणा ।

चतुर्थ अर्थ से २८ प्रकार के आरोपणा प्रायश्चित्त स्थान है, यथा–(१) पाँच दिन का प्रायश्चित्त (२) दस दिन का (३) प द्रह दिन का (४) बीस दिन का (५) पच्चीस दिन का (६) एक मास का (७) एक मास पाँच दिन (८) एक मास दस दिन (९) एक मास १५ दिन (१०) एक मास बीस दिन (११) एक मास पच्चीस दिन (१२) दो मास (१३) दो मास पाँच दिन (१४) दो मास दस दिन (१५) दो मास प द्रह दिन (१६) दो मास बीस दिन (१७) दो मास पच्चीस दिन (१८) तीन मास (१९) तीन मास पाँच दिन (२०) तीन मास दस दिन (२१) तीन मास प द्रह दिन (२२) तीन मास बीस दिन (२३) तीन मास पच्चीस दिन (२४) चार मास । (२५) लघु(अल्पतम) (२६) गुरू (महत्तर) (२७) स पूर्ण प्रायश्चित्त आरोपणा (२८) कुछ कम प्रायश्चित्त आरोपणा (रियायत) यथा– एक मास की १५ दिन आरोपणा और दो मास की बीस दिन आरोपणा ।

प्रश्न–१३ : बाल, पंडित, आत्मघात आदि कुल मरण कितने कहे हक्त ?

उत्तर– शास्त्रों में अनेक जगह विभिन्न अपेक्षा से मरण के प्रकार कहे गये हक्त । यहाँ सत्रहवें समवाय में उन्हें मिलाकर अपेक्षा से १७ प्रकार के मरण का एक साथ कथन है, यथा– **(१) आवीचि मरण–** प्रतिक्षण आयुष्य कर्म दलिक उदय में आकर क्षय होते हक्त यह देश आयुक्षय रूप निर तर मरण ही आवीचिमरण कहा गया है । **(२) अवधि मरण–** कुछ काल के लिये मरकर काला तर से उसी योनि में पुन: जन्म- मरण करना है तो उसे अवधि मरण कहा गया है । **(३) आत्य तिक मरण–** भविष्य में उस आयुष्य को कभी प्राप्त नहीं करने रूप मरण अर्थात् मोक्षपर्यंत जहाँ पुन: जन्म-मरण नहीं करना है तो वह आत्य तिक मरण है । **(४) वलय मरण–** गले को दबाकर या मोडकर मरने या मारने को वलय मरण कहते हक्त । स यम छोडकर या व्रती जीवन का त्याग कर अव्रत

में मरण, यह **भाववलय मरण** है । **(५) वशार्त मरण–** कोई वस्तु की या इन्द्रिय विषय की आसक्ति के कारण, उसकी अप्राप्ति से दु:खी होकर आर्तध्यान में मरना । कोई व्यक्ति के मोह में उसके मरने के पीछे दु:खी होकर मरना, ये वशार्त मरण कहे गये हक्त । **(६) अ तोशल्य मरण–** भाला, तलवार आदि शस्त्र से मरना । अथवा माया, निदान, मिथ्यादर्शन रूप शल्य युक्त मरना या व्रत के दोषों की आलोचना प्रायश्चित्त किये बिना मरना, ये सभी अ तोशल्य मरण कहेगयेहक्त । **(७) तद्भव मरण–** जो जैसा पशु या मानव रूप में है, मरकर वैसाही बन जाय उसी योनि–गति पर्याय में उत्पन्न होवे उस मरण को तद्भव मरण कहा गया है । यह मरण नारकी देवता के नहीं होता है । अथवा इस भव में स ब धी कोई भी इच्छा रखकर काशी करवत लेकर मरना भी तद्भवमरण है । **(८) बाल मरण–** सम्यग् दृष्टि या मिथ्यादृष्टि अव्रती का मरण **(९) बाल प डित मरण–** देशविरति श्रावक अवस्था का, पाँचवें गुणस्थान का मरण । **(१०) प डित मरण–** स यम अवस्था में, छट्ठे या उससे आगे के स यत गुणस्थानों में मरना, वह प डित मरण है अथवा स लेखना स थारा आलोचना शुद्धिपूर्वक मरण को व्यवहार से, सामान्य रूप से पडित मरण कहा जाता है । **(११) छद्मस्थ मरण–** केवलज्ञान हुए बिना ग्यारवें गुणस्थान तक मरना । **(१२) केवली मरण–** केवलज्ञानी का चौदहवें गुणस्थान में मरना । **(१३) वैहायस मरण–** गले में फा सा लगाकर मरना, फा सी की सजा से मरना वैहायस मरण है । **(१४) गिद्ध स्पृष्ट मरण–** जिसके मृत शरीर को गिद्ध आदि पक्षी खावे ऐसा मरण अथवा जीवित ही गीध आदि पक्षियों से या सि ह आदि पशुओं से खाया जाकर मरना, गिद्ध स्पृष्ट मरण है । **(१५-१७)** भक्तप्रत्याख्यान, इ गिनी मरण एव पादपोपगमन स थारा, आजीवन अनशन स्वीकार कर मरना । इन तीनों का वर्णन आचारा ग सूत्र अध्ययन–९ में है । इसके अतिरिक्त आचारा ग एव निशीथ सूत्र में गिरिपडण, तढपडण, अग्नि-फ दण, जलप्रवेश, विषभक्षण आदि द्वारा बाल मरणों का कथन है उन सभी का यहाँ आठवें बालमरण में समावेश कर लेना चाहिये ।

प्रश्न–१४ : सिद्धों के कितने गुण शास्त्र में कहे गये हक्त ?

उत्तर– पर परा में सिद्धों के आठ गुण गिने जाते है पर तु शास्त्रों में अनेक जगह सिद्धों के ३१ गुण कहे गये हक्त । प्रचलित आठ गुण– (१) अन त-

ज्ञान (२) अन तदर्शन (३) अन त सुख-अव्याबाध सुख (४) क्षायिक समकित (५) अक्षय स्थिति(अटल अवगाहना) (६) अमूर्ति (७) अगुढ-लघु (८) अन तवीर्य । ये भी शास्त्रानुसारी है, आचार्यों द्वारा गिनाये गये हक्त । शास्त्रोक्त ३१ गुण- (१-५) क्षीण मतिज्ञानावरण आदि । (६-१४) क्षीण चक्षुदर्शनावरण आदि । (१५-१६) क्षीण शाता-अशाता वेदनीय । (१७-१८) क्षीणदर्शन-चारित्र मोहनीय । (१९-२२) क्षीण नरकायु आदि । (२३-२४) क्षीण शुभ-अशुभ नाम । (२५-२६) क्षीण ऊँच-नीच गोत्र । (२७-३१) क्षीण दाना तराय आदि; इन सभी कर्मप्रकृतियों से मुक्त होना, ये ही सिद्धों के गुण माने गये हक्त , कहे गये हक्त।

प्रश्न-१५ : अन्य किन-किन विषयों का निरूपण इन ३३ समवायों में है?

उत्तर- उपरोक्त प्रश्नोत्तरों के सिवाय अन्य विषय इस प्रकार है- **(१)** मेढ से ११२१ योजन दूर ज्योतिषी विमान परिक्रमा का प्रार भ है जो लोका त से ११११ योजन अ दर तक है । **(२)** सर्वार्थसिद्ध विमान के उपरी शिखर से १२ योजन उपर जाने पर सिद्ध शिला है । जिसके १२ नाम है । **(३)** मेढ पर्वत के १६ नाम है । **(४)** मानुषोत्तर पर्वत १७२१ योजन ऊँचा है और चूडी के आकार गोल है । वेल धर अणुवेल धर आवास पर्वत भी १७२१ योजन ऊँचे हक्त । **(५)** लवण समुद्र अपने तल से लेकर शिखर तक कुल सत्रह हजार योजन ऊँचा है । इसी कारण ज घाचारण विद्याचारण आदि लब्धिवाले उत्कृष्ट साधिक १७ हजार योजन(सलिलावती विजय और शिखा की अपेक्षा)ऊँचे उडकर फिर आगे न दीश्वर द्वीप पर्यंत गति कर सकते है । **(६)** चमरेन्द्र-बलीन्द्र के उत्पात पर्वत ११२१ योजन ऊँचे हक्त । **(७)** ग गा-सिंधु नदी २५ गाउ के विस्तार वाले घडे के मुख से निकलती हुई कु ड में गिरती है । रक्ता-रक्तवती नदी मगर मुखाकृति से इतने ही विस्तार से कु ड में गिरती है ।

(८) पापश्रुत २९ हक्त- आठवें स्थान में कहे आठ निमित्त शास्त्र को यहाँ पापश्रुत कहा है । वे आठ सूत्र रूप, आठ वृत्ति रूप और आठ वार्तिक रूप यों ८×३=२४ । **२५.** विकथानुयोग श्रुत- स्त्री, आहार-पानी वगैरह की कथा करने वाले एव अर्थ काम वगैरह की प्ररूपणा करने वाले पाकशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र वगैरह । **२६.** विद्यानुयोग श्रुत-रोहिणी, प्रज्ञप्ति अ गुष्ट प्रश्न आदि विद्या साधन विधि एव उसके उपयोग बताने वाला शास्त्र । **२७.** म त्रानुयोग श्रुत-लौकिक प्रयोजन

सिद्धि के अनेक प्रकार के म त्रों की साधना बताने वाले शास्त्र । **२८.** योगानुयोग-स्त्री, पुढष को वश करने के एव रूप बदलने के गुटिका, चूर्ण आदि बताने वाला शास्त्र । **२९.** अन्यतीर्थिक प्रवृत्तानुयोग- अन्य-मतावल बियों द्वारा रचे गये शास्त्र । जो मिथ्यात्व पोषक, विकथाओं से परिपूर्ण, पूर्वापर विढद्ध, कल्पनामूलक, तर्क से अस गत, सर्वज्ञ वचनों से विढद्ध तत्त्वों से भरे, ऐसे शास्त्र सम्यक्दर्शन एव मोक्ष की आराधना में अवरोध पैदा करने वाले होने के कारण अपेक्षा विशेष से ये पाप-श्रुत कहे गये है । क्योंकि इन शास्त्रों के पढने सुनने या अध्ययन करने से मोक्षार्थी साधक अपनी साधना से भटक सकता है । इसलिये आत्म साधक इन शास्त्रों में लुभावित न बने ।

(९) नाट्य विधि के ३२ प्रकार है । **(१०)** गुढ रत्नाधिक की अपेक्षा ३३ आशातनाएँ कही हक्त । **(११)** महाविदेह क्षेत्र का विस्तार साधिक ३३ हजार योजन का है । **(१२)**पोष महीने में दिन और आषाढ महीने में रात्रि सर्व जघन्य १२-१२ मुहूर्त के होते हक्त । चैत्र और आसोज महीने में दिन-रात्रि दोनों एक-एक बार १५-१५ मुहूर्त के होते हक्त । पोष महीने में एक १८ मुहूर्त की रात्रि होती है और आषाढ महीने में एक १८ मुहूर्त का दिन होता है ।

(१३) आचारा ग सूत्र के १८००० पद(शब्द) कहे गये है अर्थात् इतने पद प्रमाण सूत्र का मूल पाठ है । व्याकरणशास्त्र अनुसार **सुब्तिग त पद** अर्थात् विभक्ति या प्रत्यय युक्त शब्द को पद कहा जाता है । **(१४)** ब्राह्मीलिपि भी १८ प्रकार से लिखी जाती है अर्थात् इस लिपि के१८ प्रकार होते हक्त । **(१५)** अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ, छट्ठा आरा २१-२१ हजार वर्ष का होता है । वैसे ही उत्सर्पिणी का पहला, दूसरा आरा भी २१-२१ हजार वर्ष का होता है । **(१६)** पुद्गल परिणाम २२ प्रकार के कहे गये है- वर्णादि २० बोल एव २१ वा अगुढलघु स्पर्श तथा २२ वा गुढलघु स्पर्श । **(१७)** आचारा ग सूत्र के कुल २५ अध्ययन कहे गये हक्त अर्थात् २५ में से सातवाँ अध्ययन विच्छेद गया है, उसकी जगह निशीथ अध्ययन को गिनकर यहाँ २५ वें समवाय में २५ अध्ययन कहे हक्त । यह सापेक्ष कथन है, ऐसा समझना चाहिये ।

(१८) मतिज्ञान के २८ प्रकार- अर्थावग्रह-६, व्य जनावग्रह-४, ईहा, अवाय, धारणा तीनों ६-६ यों कुल ६×४=२४+४=२८ । व्य जनावग्रह

चक्षु इन्द्रिय और नोइन्द्रिय(मन) का नहीं होने से ४ प्रकार का कहा गया है ।शेष सभी पाँच इन्द्रिय और एक नोइन्द्रिय यों ६ प्रकार के होते हक्त । अव्यक्त बोध 'कुछ है' यह **व्य जनावग्रह** है 'यह मनुष्य है' ऐसा सामान्य स्पष्ट ज्ञान **अर्थावग्रह** है, 'यह मनुष्य कौन है' इसकी विचारणा युक्त अनेक विकल्पों की कल्पनामय जिज्ञासा रूप ज्ञान **ईहा** है, 'यह अमुक व्यक्ति है' ऐसा निर्णित ज्ञान **अवाय** है और इस निर्णित ज्ञान का स्मृति में स्थिर हो जाना **धारणा** है ।

इनके अतिरिक्त अन्य आगमों में आये कुछ विषय इस प्रकार हक्त– आवश्यक सूत्र में वर्णित ३३ बोल के उपरांत ५ स वर, ५ आश्रव, ५ निर्जरा स्थान, प च अस्तिकाय, तप, समुद्घात, क्षेत्र, पर्वत, जगती, ज बूवृक्ष, कूटसाल्मली वृक्ष, केवली समुद्घात के आठ समय, चित्त-समाधि, ज्ञानवृद्धिकर नक्षत्र, दस वृक्ष, पूर्व, सूर्य, तिर्यंच मनुष्य के प्रयोग, चौदह पूर्व, क्षेत्र-पर्वतों की जीवा, १४ रत्न, १४ नदी बडी, कषाय–१६, स यम स्थान–१८(दशवैकालिक अध्य.६ में विस्तार है) नरक पृथ्वीपिंड, दृष्टिवाद के ८८ सूत्र, ३० मुहूर्तनाम, नरकावास, चक्षु-स्पर्श(सूर्य स ब धी) । इन विषयों का स्पष्टीकरण यथास्थान देखेंगे ।

समवाय–३४ से १००

प्रश्न–१ : तीर्थंकरों के अतिशय का क्या तात्पर्य है और वे कितने हक्त?

उत्तर– सामान्य मानवों की अपेक्षा किसी के गुणों की और स पदा की अपनी अलग ही विशिष्टता हो उसे अतिशय कहा जाता है । तीर्थंकर समस्त मानवों में अलौकिक अद्वितीय पुढष होते हक्त । जिनके पुण्य प्रभाव से आकर्षित होकर देवों के ६४ इन्द्र उनका जन्म महोत्सव मनाने के लिये बिना बुलाये आते है और प्रसूति कर्म एव सेवा-सन्मान के लिये ५६ दिशाकुमारी देवियाँ आती है। ऐसे महापुढषों के विशिष्ट गुण-प्रभाव रूप अतिशय हों तो यह स्वाभाविक ही है, उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होती है । यहाँ तीर्थंकरों के ३४ अतिशय सामान्य एव ३५ वचनातिशय विशेष कहे गये हक्त वे इस प्रकार है–

चोतीस अतिशय– (१) केश, मूँछ, रोम, नख का मर्यादित ही बढना फिर नहीं बढना । (२) रोम रहित शरीर एव निढपलेप निर्मल देह ।

(३) रक्त, मा स का सफेद होना । (४) श्वासोच्छवास सुग धी । (५) आहार-निहार अदृश्य, प्रच्छन्न । (६) चक्र (७) छत्र (८) चमर (९) सि हासन (१०) इन्द्रध्वज (११)अशोक वृक्ष (१२)भाम डल (१३) विहार में समभूमि । (१४) का टों का अधोमुख होना । (१५) ऋतु प्रकृति का शरीर के अनुकूल होना ।(१६) देवों द्वारा एक योजन भूमि प्रमार्जन ।(१७) जलसि चन । (१८) पुष्पोपचार । (१९) अमनोज्ञ शब्दादि का अपहार । (२०) मनोज्ञ का प्रादुर्भाव ।(२१) योजन गामी स्वर ।(२२) एक भाषा (अर्धमागधी) में धर्मोपदेश । (२३) जीवों की अपनी-अपनी भाषा में परिणमन । (२४) देव, मनुष्य, जानवर सभी वैर भूल कर साथ में बैठकर धर्मश्रवण ।(२५)अन्यतीर्थिकों द्वारा व दन ।(२६)उनका निढत्तर होना । (२७) २५ योजन तक उपद्रव शा ति । (२८) मरी-मारी आदि बिमारी नहीं होती । (२९) स्वचक्र का भय नहीं रहे । (३०) परचक्र का भय नहीं रहे । (३१) अतिवृष्टि नहीं होती । (३२) अनावृष्टि नहीं होती । (३३) दुर्भिक्ष-दुष्काल नहीं होता । (३४) पूर्वोत्पन्न व्याधि उपद्रव की शा ति ।

पेंतीस वचनातिशय– (१) व्याकरण नियम युक्त । (२) उच्चस्वर। (३) ग्रामीणता गामठीपन रहित । (४) ग भीर घोष । (५) प्रतिध्वनित वचन । (६) चतुराई युक्त । (७) राग-रागिणी या लय-प्रवाह युक्त। (८) महान अर्थ वाले वचन ।(९) पूर्वापर अविरोधी ।(१०) शिष्ट वचन । (११) अस दिग्ध । (१२) दूषण निवारक । (१३) हृदयग्राही । (१४) अवसरोचित । (१५) विवक्षित तत्व के अनुरूप। (१६) निरर्थक विस्तार रहित । (१७) परस्पर उपेक्षित वाक्य । (१८) शालीनता सूचक । (१९) मिष्ट वचन । (२०) मर्म रहित । (२१) अर्थ-धर्म के अनुकूल । (२२) उदारता युक्त ।(२३) परनिंदा स्वप्रश सा रहित ।(२४) प्रश सनीय वचन । (२५) व्याकरण दोषों से रहित । (२६) कोतुहल युक्त आकर्षण वाले । (२७) अद्भुत वचन । (२८) धाराप्रवाही वचन । (२९) मन के विक्षेप, रोष, भय आदि से रहित । (३०) अनेक प्रकार के कथन करने वाले । (३१) विशेष वचन (३२) साकार (३३) साहसपूर्ण (३४) खेद रहित (३५) विवक्षित अर्थ की सिद्धि करने वाले ।

प्रश्न–२ : पुढषों की ७२ कलाएँ क्या है ?

उत्तर– प्राचीन काल में राजकुमार आदि विशिष्ट पुण्यशाली बालक

गुढकुल में रहकर जिन विषयों में पार गत बनते थे, उन्हें आगमों में ७२ कला के रूप में सूचित किया गया है । इन कलाओं का वर्णन आगमों में अनेक जगह पुण्यशाली पुढषों के सा सारिक गुण ऋद्धि योग्यता के रूप में किया जाता है अर्थात् ये लौकिक अध्ययन रूप है । लौकिक अध्ययन की पूर्णता में सामाजिकता, नैतिकता, धर्मप्रियता, शूरवीरता आदि गुणों का स्वत: समावेश हो जाता है । जिससे इन ७२ कलाओं में प्रवीण बना व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में कर्तव्य करता हुआ सफलता प्राप्त कर सकता है ।

बहोत्तर कलाएँ– १. लेखन कला २. गणित ३. चित्र कला ४. नृत्य ५. गीत ६. वाद्य ७. स्वर–राग ८. मृद ग ज्ञान ९. समताल बजाना १०. द्यूत कला ११. कि वद तिएँ जानना १२. शीघ्र कवित्व १३. शतर ज १४. जलशोधन १५. अन्नस स्कार १६. जल स स्कार १७-१८. गृह निर्माण १९. आर्या छ द बनाना २०. पहेली ज्ञान २१. मागधिका छ द २२. गाथा २३. श्लोक २४. सुग धित करने की कला २५. मोम प्रयोग कला २६. अल कार बनाने पहनने की कला २७. तढणी प्रसाधन कला २८. स्त्री लक्षण २९–४१. पुढष, घोडा, हाथी, बैल, कुर्कुट, मेढा के लक्षण तथा चक्र, छत्र, द ड, तलवार, मणि, काकणि, चर्म(रत्नों) के लक्षण ४२–४५. च द्र,सूर्य,राहु ग्रह का विज्ञान ४६. सौभाग्य ४७. दुर्भाग्य जानने का ज्ञान ४८. रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्या ४९. म त्र विज्ञान ५०. गुप्त वस्तुओं को जानने की कला ५१. प्रत्यक्ष वस्तुओं को जानने की कला ५२. ज्योतिष चक्रगति ५३. चिकित्सा विज्ञान ५४. व्यूह रचने की कला ५५. प्रतिव्यूह ५६. सैन्य माप ५७. नगर माप ५८. मकान माप ५९-६१. सेना, नगर, मकान को बनाने की कला ६२. दिव्यास्त्र ज्ञान ६३. खड्ग शास्त्र ६४. अश्व शिक्षा ६५. हस्ति शिक्षा ६६. धनुर्वेद ६७. चा दी, सोना, मणि, धातु की सिद्धि की कला ६८. बाहु, द ड, मुष्टि, अस्थि आदि युद्ध कला ६९. क्रीडा, पासा, नालिका खेल ७०. पत्रछेद कला ७१. धातु को सजीव-निर्जीव करने की कला और पुन: मौलिक रूप में लाना ७२. शकुन शास्त्र ।

प्रश्न–३ : स वत्सरी के निर्णय के लिये इस शास्त्र में क्या वर्णन है ?

उत्तर– स वत्सरी के लिये आगम निशीथ सूत्र में पर्युषणा शब्द का प्रयोग किया गया है । स वत्सरी शब्द वर्तमान प्रचलित शब्द है ।

जिसका अर्थ है– पूरे स वत्सर में विशिष्ट धर्म आराधना का एक दिन, वह स वत्सरी पर्व दिन । इस पर्व दिन के लिये निशीथ सूत्र उद्देशक १९ में विशिष्ट विधान है जिसके भाष्यादि प्राचीन व्याख्याओं में भादवा सुदी प चमी का उल्लेख मिलता है, जिसमें प्राचीन सभी व्याख्याएँ एक मत है । उनमें अधिक मास या तिथि घट-वध से प चमी या भादवा के परिवर्तन की कोई चर्चा-विवाद की ग ध मात्र भी नहीं है । प्रस्तुत सूत्र के ७० वें समवाय में एक सूत्र में यह निरूपण है कि ''श्रमण भगवान महावीर वर्षाकाल का १ महीना २० दिन बीतने पर और ७० दिन शेष रहने पर वर्षावास पर्युषित करते थे ।''

विचारणा– भगवान महावीर के ४२ चातुर्मास का वर्णन जो भी प्राप्त होता है उसके अनुसार उन्होंने सभी चातुर्मास चार महीनों के ही किये थे । तो भी यहाँ भगवान के नाम से जो कुछ कहा गया है वह स देहपूर्ण है । क्यों कि इसमें अनेक प्रश्नचिह्न अ कित होते हक्त, यथा– यह विषय सित्तरवें समवाय में ही क्यों कहा ? बीसवें या पचासवें समवाय में क्यों नहीं कहा ? चातुर्मास का कथन है या पर्युषण का कथन है ? वगैरह..। वास्तव में कल्पसूत्र में ऐसा एक पाठ है जो बहुत ल बा एव तर्क से अस गत सा है, उसी का यह प्रथम वाक्याँश है । कल्पसूत्र के उस कल्पित से पाठ को प्रामाणिकता की छाप के वास्ते उसके एक अ श को यहाँ अ गसूत्र में कभी भी किसी ने लगा दिया हो, ऐसी स भावना लगती है । अत: प्रस्तुत सूत्र से स वत्सरी के निर्णय की कल्पना करना सही नहीं है । इस सूत्र के नाम से ४९–५० दिन की कल्पना करना और मूल में स्पष्ट लिखित ७० दिन की उपेक्षा करना भी योग्य नहीं है ।

प्रश्न– ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में ५० वें दिन स वत्सरी करना कहा है ?

उत्तर–उस सूत्र में स वत्सरी स ब धी एक भी वाक्य नहीं है । उत्सर्पिणी काल के वर्णन में प्रथम तीर्थंकर के जन्म से हजारों वर्ष पहले कुछ मा साहारी मानव वनस्पतियों को विकसित सुलभ देखकर परस्पर मिलकर मा साहार नहीं करने की मर्यादा बा धेंगे, ऐसा वर्णन है । उस समय प्रथम तीर्थंकर का शासन भी चालु नहीं हुआ होगा, साधु-साध्वी भी कोई नहीं होंगे । तब स वत्सरी का तो वहाँ प्रस ग भी नहीं है । तो भी लोग आग्रह में पडी बात के लिये ज्यों त्यों करके कुछ भी लगा

देने का श्रम करते है, कि तु– 'मिल गया चाबुक का तोडा, घटे फिर लगाम और घोडा' वाली कहावत चरितार्थ करते हक्त । अत: ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति की बात तो उक्त कहावत के समान नासमझी की होती है । श्रावक-साधुपन भी नहीं है तो स वत्सरी का वहाँ कोई अर्थ नहीं है ।

सार यह है कि स वत्सरी स ब धी कुछ स्पष्ट कथन निशीथ सूत्र के उन्नीसवें उद्देशक में है और उसी की व्याख्या में भादवा सुदी प चमी कही है । पर परा भी जिसकी साक्षी है तथा कालकाचार्य की जो घटना प्रचलित है उसमें उन्होंने भी राजा को अपनी स वत्सरी मनाने के कथन में भादवा सुदी प चमी का ही निरूपण किया था । फिर राजा के आग्रह से एक दिन पहले भादवा सुदी चौथ को परिस्थितिवश राजाज्ञा से उस राजधानी के चातुर्मास के लिये ही की थी । यह वर्णन भी ग्र थों में है । इससे भी भादवा सुदी प चमी की प्राचीनता एव महत्ता सिद्ध होती है । इस घटना में भी अधिकमास स ब धी या तिथि घट-वध स ब धी या प्रतिक्रमण के समय के घडी पल स ब धी कोई चर्चा विचारणा नहीं है । अत: लौकिक प चा ग में लिखी भादवा सुदी पंचमी(ऋषि प चमी) तर्क विना स्वीकार कर स वत्सरी पर्व मनाना श्रेयस्कर होता है । आगम काल से जिस निश्चित तिथि का नामोल्लेख प्राप्त हो रहा है, उससे अन्य कोई भी तिथि को अर्थात्(पहले या पीछे) स वत्सरी करने पर उस निशीथ सूत्र के पाठ से प्रायश्चित्त आता है । फिर भले अपने गुढ या पर परा के नाम से या बहुमति के नाम से कोई कभी भी करके सच्चाई का स तोष माने तो वह स्पष्ट ही आगम भावों की उपेक्षा और आत्मव चना बनती है । यह सिद्धा त की बात है।

सामान्यतया **'सोही उज्जुय भूयस्स'** शुद्धि सरल आत्मा की होती है और शुद्धात्मा में धर्म टिकता है, अत: चर्चाविवाद में जो अपनी पहुँच नहीं हो तो सरलता के साथ धर्म भावों की एव त्याग-तप की वृद्धि करना ही कल्याण का मार्ग है । अत: सामान्य जन के लिये विवाद में पडे बिना शा त-प्रशा त भावों से हृदय की पवित्रता से स वत्सरी पर्व की आराधना करने में **स योग अनुसार** प्रवृत्त रहना चाहिये ।

प्रश्न–४ : परवैयावच्च कर्मपडिमा क्या है ?

उत्तर– यहाँ ९१ वें समवाय में इस विषय में निरूपण किया गया है । जिसमें 'पर' अर्थात् अन्य के लिये **सेवा** या सुख रूप जो **कर्म**–कर्तव्य

पालन रूप **पडिमा**–विशिष्ट आचार है उन्हें **'पर वैयावृत्य कर्म प्रतिज्ञा'** इस वाक्य से कहा गया है । इनकी स ख्या ९१ कही गई है । जिसमें अन्य के लिये किया गया सद्व्यवहार, सन्मान, विनय व्यवहार एव सेवा शुश्रूषा का समावेश है, उन ९१ की गणना इस प्रकार है–

शुश्रूषा विनयना दश प्रकार– (१) ज्ञान, दर्शन, चारित्र यों रत्नत्रय की अपेक्षा रत्नाधिक पुढषों का सन्मान सत्कार करना । (२) उनके आने पर खडे होना । (३) वस्त्रादि देकर सन्मान करना । (४) आसन लाकर उसे बैठने के लिए कहना । (५) आसन का अनुप्रदान करना– उनके आसन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना । ६) कृतिकर्म करना अर्थात् सविधि व दन करना । (७) अ जलि करना । (८) गुढजनों के आने पर उनके सामने जाकर स्वागत करना । (९) गुढजनों के जाने पर थोडा उनके पीछे चलना। (१०) वे बैठे उसके बाद बैठना । ये दस प्रकार के शुश्रूषा विनय है ।

महापुढषों के विनय स ब धी ६० प्रकार–(१) तीर्थंकर (२) केवली प्रज्ञप्त धर्म (३) आचार्य (४) उपाध्याय (५) स्थविर (६) कुल (७) गण (८) स घ (९) सा भोगिक श्रमण (१०) आचारवान (११-१२) विशिष्ट मति-श्रुत ज्ञानी (१३) अवधिज्ञानी (१४) मन:पर्यवज्ञानी (१५) केवल ज्ञानी । इन १५ महापुढषों के लिये १. आशातना नहीं करना २. भक्ति करना ३. बहुमान करना और ४. वर्णवाद(गुणगान करना) ये चार कर्तव्य पालन करने से १५×४=६० भेद होते है ।

औपचारिक विनय के ७ प्रकार– (१) अभ्यासन– वैयावृत्य योग्य गुढ आदि के पास बैठना । (२) छ दानुवर्तन– उनके अभिप्राय के अनुसार कार्य करना ।(३) कृत प्रतिकृति– प्रसन्न आचार्य मुझे सूत्रज्ञान देंगे ऐसे भाव से उनको आहारादि देना । (४) कारित निमित्तकरण– शास्त्र ज्ञान मिलने से शिक्षा देनेवाले का विशेष रूप से विनय करना । (५) दु:ख से पीडित जनों को खोजकर उनके दु:खों को जानना ।(६) देश काल को जानकर उनकी अनुकूल सेवा करना । (७) रोगी को उसके स्वास्थ्य के अनुकूल अनुमति-आज्ञा देना ।

आचार्यादि की सेवा के १४ प्रकार–(१-५) पाँच प्रकार के आचार्य होते हक्त, यथा– प्रव्राजनाचार्य, उपस्थापनाचार्य, उद्देशनाचार्य, वाचना-चार्य, धर्माचार्य । इन पाँच के सिवाय (६-१४) उपाध्याय, तपस्वी,

शैक्ष, ग्लान, कुल, गण, स घ, साधु और अन्य समनोज्ञ सुसाधु की सेवा करने से वैयावच्च के १४ भेद होते हक्त । इस तरह क्रमश: शुश्रूषा–विनय के १० भेद, तीर्थंकर आदि के अनाशातनादि के ६० भेद, औपचारिक विनय के ७ भेद और आचार्य आदि की वैयावच्च के १४ भेद; इन सभी को मिलाने पर(१०+६०+७ +१४=९१) एकानवें भेद होते हक्त ।

प्रश्न–५ : साधु श्रावक की पडिमा तो १२ या ११ कही गई है, तो प्रस्तुत सूत्र में ९२ पडिमाएँ कौन सी कही है ?

उत्तर– आगमों में वर्णित अनेक पडिमाओं का स कलन करके यहाँ ९२ का योग मिलाकर समवाय के अनुरूप स ख्या में स क्षिप्त कथन किया गया है । उनका नाम के साथ स्पष्टोल्लेख व्याख्या में इस प्रकार मिलता है– आचारा ग प्रथम श्रुतस्क धगत–५, द्वितीय श्रुतस्क धगत–३७, स्थाना ग सूत्र की–१६ एव व्यवहार सूत्रगत–४ ये मिलकर ६२ हुई । सामायिक आदि पाँच चारित्र रूप–५ पडिमा(विशेष आचार), साधु श्रावक की १२+११=२३ पडिमा, कषाय त्याग रूप १ विवेक पडिमा और इन्द्रिय मननिग्रह रूप १ प्रतिस लीनता पडिमा । यों ६२+ ५+२३ +१+१=९२ पडिमा । यह विवरण भी दशाश्रुत स्क ध की निर्युक्ति चूर्णि प्राचीन व्याख्या में प्राप्त होता है ।

प्रश्न–६ : इन समवायों में तीर्थंकर स ब धी क्या क्या वर्णन है ?

उत्तर– इन समवायों में कथित तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव की आयुष्य, अवगाहना, दीक्षापर्याय, साधुस पदा और गण-गणधर, छद्मस्थकाल वगैरह **आगे परिशिष्ट–१** में दिये गये हक्त । अत: इन समवायों में उनका स कलन नहीं रखा है । शेष वर्णन इस प्रकार है–

(१) ऋषभदेव भगवान ने ६३ लाख पूर्व वर्ष तक महाराजा रहकर ८३ लाख पूर्व वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी और ८४ लाख पूर्व वर्ष की कुल उम्र थी । भरत, बाहुबली, ब्राह्मी, सु दरी चारों की ८४ लाख पूर्व वर्ष की उम्र थी । भगवान ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक का अ तरकाल १ क्रोडाक्रोड सागरोपम था । **(२)** अजितनाथ भगवान ने ७१ लाख पूर्व वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी । अजितनाथ भगवान के ९४०० (साधिक नव हजार) अवधिज्ञानी थे । **(३)** स भवनाथ भगवान ने ५९ लाख पूर्व वर्ष की उम्र में दीक्षा अ गीकार की थी । **(४)** सुपार्श्वनाथ

भगवान के ८६०० वादी थे । **(५)** सुविधिनाथ भगवान के ७५०० केवली हुए । **(६)** शीतलनाथ भगवान ने ७० हजार पूर्व वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी । **(७)** वासुपूज्य तीर्थंकर ने ६०० पुढषों के साथ दीक्षा ली थी । **(८)** विमलनाथ भगवान के ४४ पाट निर तर मोक्ष गये । **(९)** शा तिनाथ भगवान ने ७५ हजार वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी । उनके ८९हजार साध्वी स पदा थी तथा ९३०० चौदपूर्वी थे । **(१०)** कु थुनाथ भगवान के ९१०० अवधिज्ञानी थे । **(११)** मल्लिभगवती के ५७०० मन:पर्यव ज्ञानी थे; ५९०० अवधि ज्ञानी थे । **(१२)** मुनि सुव्रत तीर्थंकर के उत्कृष्ट ५० हजार साध्वियाँ थी । **(१३)** नमिनाथ तीर्थंकर के ३९०० अवधि ज्ञानी थे । ४१ हजार साध्वियाँ थी । **(१४)** अरिष्टनेमि तीर्थंकर ने ३०० वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी । उनकी केवलज्ञान पर्याय देशोन ७०० वर्ष की थी एव कुल उम्र १००० वर्ष की थी । उनके ८०० वादी श्रमण थे तथा उत्कृष्ट ४० हजार साध्वियाँ थी ।

(१५) पार्श्वनाथ भगवान के उत्कृष्ट ३८ हजार साध्वियाँ थी, ३५० चौदहपूर्वी श्रमण थे, ६०० वादी श्रमण स पदा थी । उनके केवली और मोक्षगामी श्रमण १००० हुए तथा ११०० वैक्रिय लब्धिवाले श्रमण थे । उनकी श्राविका स पदा ३ लाख २७ हजार की थी ।

(१६) भगवान महावीर के ५३ अणगार १ वर्ष की स यमपर्याय का आराधन करके पाँच अणुत्तर विमान में गये । भगवान ने एक दिन में ५४ बार उपदेश दिया था । भगवान ने अ तिम रात्रि में ५५ सुखविपाक के और ५५ दु:खविपाक के अध्ययन फरमाये थे । उनके ३०० चौदह पूर्वी श्रमण थे, ४०० वादी श्रमण स पदा थी, ७०० वैक्रिय लब्धिवाले श्रमण थे । उनके ८०० श्रमण अणुत्तर विमान में गये थे । भगवान महावीर ने छट्ठे पूर्व भव में पोटिल नामक श्रमण के रूप में १ क्रोड वर्ष स यम पालन किया था ।

(१७) अग्निभूति गणधर ने ४७ वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी । **(१८)** मौर्यपुत्र स्थविर ने ६५ वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी । **(१९)** अचलभ्राता स्थविर(गणधर) की ७२ वर्ष की उम्र थी । **(२०)** अग्निभूति गणधर की ७४ वर्ष की उम्र थी । **(२१)** अक पित गणधर की ७८ वर्ष की उम्र थी । **(२२)** म डित पुत्र गणधर की ८३ वर्ष की उम्र थी । **(२३)** इन्द्रभूति गौतम गणधर की ९२ वर्ष की उम्र थी । **(२४)** मौर्यपुत्र स्थविर(गणधर) की ९५

वर्ष की उम्र थी । गणधर सभी मोक्षगामी हुए । **(२५)** सुधर्मा गणधर की १०० वर्ष की उम्र थी ।

(२६) धातकी ख ड और पुष्कर द्वीप में ६८-६८ चक्रवर्ती विजय है । (३२+३२+२+२) । दो भरत दो एरवत एव दो महाविदेह की ६४ विजय ।तीर्थंकर ६८ हो सकते है ।चक्रवर्ती,बलदेव, वासुदेव उत्कृष्ट ६० ही हो सकते है क्यों कि जघन्य ८ चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव होने से वे ८ कम होंगे । मूलपाठ में क्षेत्र योग्यता की अपेक्षा चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव सभी को ६८-६८ कहा है । अथवा स क्षिप्त पाठ होने से कुछ विगत छूट गई है । ज बूद्वीप में ३४ चक्रवर्ती विजय है, उसमें उत्कृष्ट ३४ तीर्थंकर हो सकते है, चक्रवर्ती वासुदेव बलदेव उत्कृष्ट २८-२८ हो सकते है ।**(२७)** सगर चक्रवर्ती ७१ लाख पूर्व वर्ष की उम्र में दीक्षित हुए थे ।**(२८)** भरत चक्रवर्ती ७७ लाख पूर्व वर्ष राजकुमार रहने के बाद राजा बने तथा ६ लाख पूर्व वर्ष राजा रहे और ८३ लाख पूर्व वर्ष की उम्र में केवली होकर दीक्षित हुए थे । **(२९)** हरिषेण चक्रवर्ती ८९०० वर्ष महाराज पद पर रहे थे और ९७०० वर्ष की उम्र में दीक्षित हुए ।**(३०)** चक्रवर्ती के ६४ लडा हार होता है । **(३१)** प्रत्येक चक्रवर्ती के ९६ करोड गाँव ४८ हजार पाटण आधिपत्य में होते है ।

(३२) त्रिपृष्ट वासुदेव ८० लाख वर्ष महाराज पद पर रहे थे । **(३३)** अभिचन्द्र कुलकर की ६०० धनुष की अवगाहना थी ।**(३४)** विमलवाहन **कुलकर** की अवगाहना ९०० धनुष की थी ।

प्रश्न–६ : इन समवायों में अन्य क्या-क्या विषय स ग्रहित है ?

उत्तर– **(१)** क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति सूत्र के प्रथमवर्ग में ३७, द्वितीय वर्ग में ३८ एव तृतीय वर्ग में ४० उद्देशक है । **(२)** महल्लिका विमान प्रविभक्ति सूत्र के पाँच वर्गों में क्रमशः ४१,४२,४३,४४,४५ उद्देशक है । इन दोनों शास्त्र के नाम न दीसूत्र एव व्यवहारसूत्र में हक्त । **(३)** नामकर्म की ४२ प्रकृत्तियाँ है । **(४)** कालोदधि समुद्र में ४२ च द्र ४२ सूर्य है । **(५)** ऋषिभाषित सूत्र के ४४ अध्ययन है । न दीसूत्र में इसका नाम है तथा यह शास्त्र प्रकाशित उपलब्ध भी है । (६) कर्म-विपाकशास्त्र के ४३ अध्ययन है । **(७)** ब्राह्मी लिपि के ४६ मूलाक्षर–मातृकापद है । **अ** से लेकर **ह** तक ।**(८)** आचारा ग प्रथम श्रुतस्क ध

के ५१ उद्देशक है । (९) मोहनीय कर्म के ५२ नाम है । **(१०)** उत्तम पुढष ५४ होते हक्त, ६३ में से ९ प्रतिवासुदेव नहीं गिने हक्त । **(११)** निषध पर्वत पर ६३ बार सूर्योदय होते हुए हमें भरत क्षेत्र में दिखते है । इसका तात्पर्य यह है कि अपने यहाँ के ६३ दिन के सूर्योदय के समय सूर्य निषध पर्वत के उपर सीध में होता है ।**(१२)** आचारा ग, सूयगडा ग, ठाणा ग सूत्र इन तीनों के ५७ अध्ययन होते हक्त । २४+२३+१०=५७ । **(१३)** वीर्य प्रवाद पूर्व के ७१ पाहुड अध्ययन है । **(१४)** एक मुहूर्त में ७७ लव होते हक्त ।**(१५)** अ ग व श में ७७ पाट के राजा निर तर दीक्षित हुए थे । **(१६)** भगवती सूत्र के पिछले ६ शतक(३५ से ४१) में ८१ महायुग्म कहे हक्त । एकेन्द्रिय से असन्नि प चेन्द्रिय पर्यंत पाँचों के १२-१२ कुल–६० तथा सन्नी प चेन्द्रिय के–२१ ।

(१७) सभी बाह्य मेढ, सभी अ जनगिरि पर्वत ८४ हजार योजन ऊँचे हक्त । १००० योजन भूमि में है, कुल ८५ हजार योजन के हक्त ।**(१८)** चौरासी लाख जीवायोनि कही गई है ।**(१९)** सौधर्मावत सक विमान की एक बाहा(दिशा) में ६५ भवन है ।**(२०)** मतिज्ञान की स्थिति उत्कृष्ट ६६ सागरोपम की है । **(२१)** समय क्षेत्र में ६९ वर्ष, वर्षधर पर्वत हक्त– ३५ क्षेत्र ३० वर्षधर पर्वत ४ इक्षुकार पर्वत । **(२२)** पातालकलशों के नीचे के चरमा त से रत्नप्रभा पृथ्वी का चरमा त ७९ हजार योजन का है । १ हजार योजन समुद्र की ऊँडाई है अतः १०००+१ लाख योजन पाताल कलश+ ७९ हजार=१,८०,००० योजन पृथ्वीपिंड रत्नप्रभा का है । **(२३)** द ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष, मूसल ये सभी ९६ अ गुल के होते हक्त । **(२४)** असुरकुमारों के प्रासाद २५० योजन के ऊँचे हक्त। **(२५)** वैमानिक देवों के विमानों के कोट तीन सौ योजन ऊँचे हक्त ।

(२६) ८४ लाख को ८४ लाख से गुणा करने **से एकपूर्व** वर्ष होते हक्त अर्थात् ७०,५६,००,००,००,००,०० वर्ष का एक पूर्व होता है । ऐसे क्रोड पूर्व की उम्र वाला मोक्ष जा सकता है । उससे ज्यादा उम्र वाले युगलिये मनुष्य होते हक्त, वे देवलोक में जाते हक्त । **(२७)** वैमानिक देवों के कुल विमान ८४,९७,०२३ साधिक चोरासी लाख है ।**(२८)** भगवती सूत्र के ८४००० पद हक्त । **(२९)** आचारा ग सूत्र के कुल ८५ उद्देशन काल (छोटे बडे कुल विभाग) हक्त । **(३०)** सूर्य ९३ वें म डल में होता है तब समान दिन रात को विषम करना प्रार भ करता है । कुल

१८४ म डल है । अ दर से बाहर या बाहर से अ दर जाते समय सूर्य ९२ वें म डल में गति करता है तब चैत्र और आसोज महीना होता है और उसमें एक दिन १५-१५ मुहूर्त के दिन- रात होते है । ९३ वें म डल में गति करने के दिन, हीनाधिक होना विषम होना प्रार भ होता है ।
(३१) आठ कर्म की कुल ९७ प्रकृति है (यहाँ नामकर्म की ४२ प्रकृति गिनी है) **(३२)** रेवती नक्षत्र से प्रार भ करके ज्येष्ठा तक १९ नक्षत्र के तारे ९८ होते हक्त । यहाँ अनुराधा नक्षत्र के ५ तारे गिने हक्त । कहीं ४ तारे भी मूलपाठ में है अर्थात् दो मान्यता चालू है; **शोध का विषय है ।**
(३३) मेढ पर्वत समभूमि से शिखर तक ९९ हजार योजन ऊँचा है । १००० योजन भूमि के अ दर है । **(३४)** समभूमि से १०० योजन नीचे जाने के बाद ८०० योजन में वाणव्य तर देवों के भोमेय विहार अर्थात् अस ख्य नगर हक्त । **(३५)** पहले-दूसरे देवलोक में विमान ५०० योजन ऊँचे हक्त । फिर क्रमशः तीसरे, चौथे में ६००, पाँचवें, छट्ठे में ७००, सातवें, आठवें में ८००, एव ९ से १२ देवलोक में ९०० योजन ऊँचे है । ग्रैवेयक विमान १००० योजन ऊँचे है । अनुत्तर विमान ११०० योजन ऊँचे हक्त । **(३६)** वक्षस्कार पर्वत पर हरि, हरिस्सकूट और न दनवन में बलकूट ये तीनों कूट १००० योजन ऊँचे है । पर्वतों पर के शेष सभी कूट– ५००–५०० योजन के होते है । **(३७)** मेढ पर्वत भूमि पर दस हजार योजन ल बा, चौडा, गोल है ।

इसके अतिरिक्त इन समवायों में नरकावास, विमान, अध्ययन नाम, क्षेत्र, प्राकार, पोरिसी छाया, कर्म, च द्र-सूर्य स ख्या, मेढ, नक्षत्र योग, युगलिक, स्थिति, वैताढ्यादि पर्वत-गुफा, सुधर्मासभा, देव, म डल गति–छाया, विष्क भ, का ड के पर्वत आदि से अ तर, पडिमा आदि स ब धी विविध वर्णन है जो अन्य आगमों में प्रस गानुसार वर्णित है । यहाँ १०० समवाय का कथन होते हुए भी सो की स ख्या के बाद १५०, २०० आदि क्रोड स ख्या पर्यंत के कुछ कथन भी है, उन्हें अनेकोत्तरिका वृद्धि समवाय भी कहा जाता है ।

॥१ से १०० समवाय स पूर्ण॥

स ख्या मुक्त प्रकरण

प्रश्न–१ : स ख्यावाची वर्णन के बाद इस सूत्र में क्या वर्णन है?
उत्तर– एक से करोड तक की स ख्या स ब धी वर्णन के बाद स ख्या के आल बन रहित समस्त विषय मुख्य तीन विभागों में विभक्त है– (१) द्वादशा ग गणिपिटक का वर्णन । (२) जीव और अजीव स ब धी विविध वर्णन ।(३) अतीत अनागत महापुढषों स ब धी वर्णन ।
प्रश्न–२ : द्वादशा ग गणिपिटक से क्या समझना ?
उत्तर– द्वादशा ग=बारह अ ग सूत्र । गणिपिटक– सामुहिक एक साथ स कलन । गण=समूह, गणिपिटक=सामुहिक एक साथ स लग्न वर्णन । तात्पर्य यह है कि १२ अ गशास्त्रों का एक सामुहिक थोक-वर्णन; समस्त श्रुतज्ञान म जूषा रूप बारह अ गसूत्र कहे गये है । इन १२ सूत्रों के यथाक्रम से नाम इस प्रकार है– (१) आचारा ग सूत्र (२) सूत्रकृता ग सूत्र (३) स्थाना ग सूत्र (४) समवाया ग सूत्र (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र (६) ज्ञाताधर्मकथा सूत्र (७) उपासकदशा सूत्र (८) अ तगडदशा सूत्र(९) अनुत्तरोपपातिक सूत्र (१०) प्रश्नव्याकरण सूत्र (११) विपाक सूत्र(दुःखविपाक–सुखविपाक सूत्र) (१२) दृष्टिवाद सूत्र ।

यहाँ प्रस्तुत प्रकरण में इन १२ अ ग सूत्रों के नाम तथा इनके विषय वर्णन का परिचय दिया गया है । जिसमें उनकी अध्ययन स ख्या आदि का वर्णन है ।

प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में स पूर्ण श्रुतज्ञान इन १२ अ गशास्त्रों में समाविष्ट होता है । सामायिक आदि ६ आवश्यक रूप आवश्यक सूत्र इस द्वादशा गी से प्रार भिक मौलिक ज्ञान रूप सभी तीर्थंकर के शासन में होता है । आगम में अनेक श्रमणों के अध्ययन स ब धी वर्णन में **सामाइयमाइयाइ एक्कारस अ गाइ अहिज्जइ** अर्थात् सामायिक आदि षडावश्यक रूप आवश्यक सूत्र सहित ११ अ गों का अध्ययन किया । तात्पर्य यह है कि आवश्यक सूत्र का तो द्वादशा गी से भी पूर्व स्थान है ऐसा समझना चाहिये ।

भगवान महावीर स्वामी के शासन में हुण्डावसर्पिणी के कारण एव भस्मग्रह के प्रभाव से श्रुतज्ञान विशेष छिन्न-विच्छिन्न हुआ ।

समस्त १२ वा अ ग का विच्छेद होने के कारण आचार्यों ने विच्छेद के पूर्व ही अनेक तत्त्वों को अनेक आगमों के रूप में स कलित स पादित किया । इसलिये न दीसूत्र में **इस द्वादशा गी वर्णन के साथ** श्रुतज्ञान का अ गप्रविष्ट और अ गबाह्य इस विभाजन से वर्णन किया गया है । क्यों कि न दीसूत्र की रचना के समय तक अ गशास्त्रों के सिवाय अनेक अ गबाह्य आगम बनाये जा चुके थे । इसलिये यहाँ समवाया ग सूत्र में मात्र १२ अ गशास्त्रों का परिचय दिया गया है । जब कि न दीसूत्र में १२ अ गशास्त्रों के परिचय वर्णन के अतिरिक्त अ गबाह्य– कालिक या उत्कालिक अनेक शास्त्रों के नाम भी सूचित किये है ।

न दी सूत्र में भी द्वादशा गी सूत्रों का विस्तृत परिचय दिया गया है, जो प्रस्तुत शास्त्र के द्वादशा गी वर्णन के समान ही है । प्रश्नव्याकरण सूत्र के विषय वर्णन में कुछ भिन्नता है । उसका कारण यह है कि प्रश्नव्याकरण सूत्र के मौलिक विषय में पूर्वधर बहुश्रुतों द्वारा स पूर्ण परिवर्तन कर दिया गया है, जिसकी सूचना न दीसूत्र या समवाया ग सूत्र किसी में भी नहीं है । दोनों शास्त्रों के सूचित विषय से पूर्ण भिन्न रूप में ही आज प्रश्नव्याकरण सूत्र का विषय उपलब्ध है । इसलिये इस शास्त्र के परिचय की भिन्नता को छोडकर न दी और समवाया ग सूत्र का द्वादशा गी परिचय वर्णन प्राय:समान है । न दी सूत्र में ५ ज्ञान का व्यवस्थित वर्णन है अत: वहाँ पर ही श्रुतज्ञान के वर्णन में यहाँ वर्णित द्वादशा गी परिचय भी दिया जायेगा ।

प्रश्न–३ : यहाँ जीवराशि अजीवराशि स ब धी विविध विषय किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर– जीव-अजीव स ब धी मौलिक विस्तृत क्रमबद्ध वर्णन प्रज्ञापना सूत्र में ३६ अध्यायों में विषय विभाजन के साथ दिया गया है। अत: यहाँ वर्णित अनेक विषयों में थोडा स केतिक कथन करते हुए प्रज्ञापना सूत्र से विस्तृत जानने का सूचन दिया गया है ।

यहाँ वर्णित विषय इस प्रकार है– जीवराशि अजीवराशि । इसमें दोनों तत्त्वों के समस्त भेद प्रभेद का वर्णन आता है जो प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद की सूचना से स क्षिप्त किया गया है । फिर २४ द डकों के आवास स्थान का वर्णन कुछ विस्तृत कुछ स क्षिप्त में है । प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे स्थान पद में वह स पूर्ण वर्णन विस्तार से है ।

इसके बाद जीवों की स्थिति, पाँच शरीर, अवधिज्ञान, वेदना, लेश्या, आहार, आयुब ध और उसके आकर्ष, विरहकाल, स घयण, स स्थान और तीन वेद स ब धी वर्णन के साथ यह विविध वर्णन का प्रकरण पूर्ण होता है । सर्वत्र प्राय: प्रज्ञापना सूत्र का ही निर्देश है । स घयण आदि का कोईक वर्णन जीवाभिगम सूत्र में भी है ।

जिस तरह स ख्या से स ब धित कई विषय अन्य आगमों में आये हुओं का यहाँ स कलन है वैसे ही प्रस्तुत प्रकरण में प्रज्ञापना, जीवाभिगम सूत्र वर्णित तत्त्वों का कुछ स कलन है । यह इस शास्त्र की अपनी विशिष्ट पद्धति है ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–४ : अतीत अनागत महापुढषों के वर्णन में क्या दर्शाया गया है?

उत्तर– अतीत अनागत कुलकर; अतीत अनागत तीर्थंकर और उनके माता-पिता, प्रथम शिष्य-शिष्या, प्रथम भिक्षा, भिक्षादाता आदि विषयों से २४ तीर्थंकर स ब धी परिचय; एरवत क्षेत्र के तीर्थंकर, इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव स ब धी वर्णन है । इन वर्णनों में अधिकतम नाम निर्देश ही किये गये हैं । यह वर्णन प्राय: पद्यात्मक शैली से स कलित किया गया है, क्वचित् गद्यपाठ भी है । इस वर्णन की पद्यस ख्या १ से ९५ तक है ।

प्रश्न–५ : कुलकरों के विषय में क्या वर्णन है ?

उत्तर– अवसर्पिणीकाल में युगलिक काल के समाप्त होने के कुछ पूर्व मिश्रणकाल होता है, जिसमें जीवन निर्वाह के वृक्ष कम होते जाते हैक्त और युगलियों के भद्रिक स्वभाव में कुछ-कुछ परिवर्तन आने लगता है, इस कारण से कोई मुखिया या अनुशास्ता की जरूरत पडती है, तब उन्हीं युगलियों में से कोई अपने क्षयोपशम की विशेषता के कारण न्यायदाता स चालक बन जाता है, मान लिया जाता है, स्वीकार लिया जाता है । उसे ही शास्त्र की भाषा में कुलकर कहा गया है । प्रस्तुत में कुलकर वर्णन इस प्रकार है– **(१)** भूतकालीन उत्सर्पिणी में सात कुलकर हुए थे ।**(२)** भूतकालीन अवसर्पिणी में १० कुलकर हुए थे। **(३)** वर्तमान अवसर्पिणी में सात कुलकर हुए– १. विमलवाहन २. चक्षुवान ३. यशवान ४. अभिच द्र ५. प्रसेनजित ६. मढदेव ७. नाभिराय **(४)** इनकी स्त्रियों के नाम– १. च द्रयशा २. च द्रका ता ३.

सुरूपा ४. प्रतिरूपा ५. चक्षुका ता ६. श्रीका ता ७. मढदेवी । **(५)** आगामी उत्सर्पिणी के (भरतक्षेत्र में) सात कुलकर होंगे । **(६)** आगामी उत्सर्पिणी के **एरवतक्षेत्र** में १० कुलकर होंगे । यहाँ पर कुलकरों की स ख्या दो प्रकार से वर्णित है–सात और दस की स ख्या में । अन्यत्र १५ कुलकर का वर्णन भी देखने को मिलता है । अत: इनकी स ख्या तीर्थंकर चक्रवर्ती की स ख्या जैसे निश्चित नहीं होती है ।

प्रश्न–६ : चक्रवर्ती स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– भरत, एरवत या महाविदेह क्षेत्र की एक विजय में ६-६ ख ड होते हक्त । उन छहों ख डों पर एक छत्र राज्य करने वाले तथा चक्ररत्न आदि १४ रत्नों के स्वामी राजा को चक्रवर्ती कहा जाता है । उनके दोनों भुजा के रक्षक २००० एव १४ रत्नों के १४००० यों कुल १६००० देव सेवा में होते हक्त । प्रस्तुत में चक्रवर्ती का वर्णन इस प्रकार है– (१) वर्तमान अवसर्पिणी के १२ चक्रवर्ती के नाम– १. भरत २. सगर ३. मघवा ४. सनत्कुमार ५. शा तिनाथ ६. कु थुनाथ ७. अरनाथ ८. सुभूम ९. महापद्म १०. हरिषेण ११. जय १२. ब्रह्मदत्त । इन बारह के पिता का नाम ऋषभ आदि एव माता का नाम सुम गला आदि है । इन बारह चक्रवर्ती के बारह स्त्री रत्नों के नाम सुभद्रा आदि कहे हक्त ।

(२) आगामी उत्सर्पिणी के १२ चक्रवर्ती– प्रथम चक्रवर्ती का नाम भरतक्षेत्र के नाम अनुसार **भरत** ही होता है । शेष ११ नाम अन्य होते हक्त । इन १२ के माता-पिता एव स्त्रीरत्न १–१ कुल १२–१२ कहे हैक्त। भरतक्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में १२–१२ चक्रवर्ती अलग-अलग समय में होते हक्त । उसी प्रकार एरवत क्षेत्र में भी १२-१२ समझ लेना चाहिये । भरत चक्रवर्ती की ६ ख ड विजय साधना आदि विस्तृत वर्णन ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में है, वहाँ ६ आरों का, युगलियों का, कुलकर का भी वर्णन है ।

चक्रवर्ती दीक्षा लेवे तो मोक्षगति या देवगति को प्राप्त करते हक्त और दीक्षा नहीं लेवे तो नरकगामी होते हक्त । वर्तमान के १२ चक्रवर्ती में से सुभूम और ब्रह्मदत्त दो नरक में गये हक्त, शेष १० मोक्ष में गये हक्त । दो चक्रवर्ती देवलोक में जाने की विचारधारा भी चलती है, कि तु वह आगम विपरीत एव समझ भ्रम से उत्पन्न है । प्रमाण के लिये ठाणा गसूत्र स्थान–४ एव उत्तराध्ययन सूत्र की टीका देखकर समझा

जा सकता है । ठाणा ग सूत्र के दूसरे स्थान में दो चक्रवर्ती का नरक में जाने का कथन है वहाँ दो की स ख्या के कथन होते हुए भी दो के स्वर्ग में जाने का कथन नहीं किया गया है ।

प्रश्न–७ : बलदेव-वासुदेव और प्रतिवासुदेव स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– चक्रवर्ती की अपेक्षा इनका राज्य आधा होता है । भरतक्षेत्र के ६ ख ड में से तीन ख ड में इनका राज्य होता है । पहले प्रतिवासुदेव ३ ख ड का विजय करके राज्य करते हक्त । फिर उनकी उम्र के अ तिम विभाग में बलदेव वासुदेव होते है, जो दोनों सगे भाई होते हक्त । उनके पिता एक ही होते हक्त और माता अलग-अलग होती है । दोनों भाईयों में आजीवन प्रेम रहता है । बलदेव उम्र में बडे होते हक्त, वासुदेव छोटे होते हक्त । वासुदेव के द्वारा प्रतिवासुदेव का किसी भी निमित्त से युद्ध में वध होता है । युद्ध समाप्ति समय प्रतिवासुदेव अपना देवाधिष्ठित चक्र फेंकता है, वह पुण्य प्रभाव से वासुदेव का अभिवादन कर उसके हाथ में स्थिर होता है । तब उसी चक्र से प्रतिवासुदेव मारा जाता है । तब वासुदेव–बलदेव तीन ख ड का राज्य करते हक्त । अ त में वासुदेव के काल कर जाने पर बलदेव दीक्षा लेते हक्त। वासुदेव और प्रतिवासुदेव दोनों ही नरक में जाते हक्त । बलदेव स यम आराधन करके मोक्ष में या देवलोक में जाते हक्त । वर्तमान अवसर्पिणी के ९ बलदेव में से कृष्ण के भाई बलभद्र पाँचवें देवलोक में गये, शेष आठों ही मोक्ष में गये हक्त ।

सूत्र में बलदेव-वासुदेव के गुणसमृद्धि का सम्मिलित वर्णन है। इनके शरीर में १०८ शुभ लक्षण होते हक्त । इनके पूर्वभव के नाम, पूर्वभव के दीक्षागुढ–धर्माचार्य के नाम, वासुदेवों की निदान भूमि एव निदान कारणों का यहाँ उल्लेख किया गया है । निदान का अर्थ है कि आगे के भव की आशा-अपेक्षा युक्त स कल्प द्वारा स यम फल को दाव पर लगाना; स यमफल की चाहना को स कल्पबद्ध करना, यह निदान का तात्पर्य समझना चाहिये ।

बलदेव वासुदेव के पिता– (१) प्रजापति (२) ब्रह्म (३) सोम (४) ढद्र (५) शिव (६) महाशिव (७) अग्निशिख (८) दशरथ (९) वसुदेव ।

बलदेव–वासुदेव के नाम– (१) अचल–त्रिपृष्ट (२) विजय–द्विपृष्ट

(३) भद्र–सय भू (४) सुप्रभ–पुढषोत्तम (५) सुदर्शन–पुढषसि ह (६) आन द–पुढष पोंडरीक (७) न दन–दत्त (८) पद्म(राम)–लक्ष्मण (९) बलभद्र–कृष्ण । **बलदेव–वासुदेव की माताओं के नाम–** (१) भद्रा–मृगावती (२) सुभद्रा–उमा (३) सुप्रभा–पृथ्वी (४) सुदर्शना–सीता (५) विजया– अमृता (६) वैजय ती–लक्ष्मीमती (७) जय ती–शेषमती (८) अपराजिता–केकेयी (९) रोहिणी–देवकी । **प्रतिवासुदेव के नाम–** (१) अश्वग्रीव (२) तारक (३) मेरक (४) मधुकैटभ (५) निशु भ (६) बलि (७) प्रभराज–प्रहलाद (८) रावण (९) जरास ध ।

आगामी उत्सर्पिणीकाल में भी ९ बलदेव ९ वासुदेव होंगे। उनके भी पूर्वभव, पूर्वभव के धर्माचार्य, नियाणभूमि, णियाणकारण होंगे। उनका वर्णन दृष्टिवाद अ ग के ग डिकानुयोग में होता है। उनके ९ प्रतिवासुदेव होंगे । जिनके नाम यहाँ सूत्र गाथा ८७–८८ में और वासुदेव बलदेवों के नाम गाथा ८५–८६ में दिये हक्त । सभी प्रतिवासुदेव अपने ही चक्र से युद्ध में वासुदेव के हाथ से मारे जाते हक्त । वर्तमान अवसर्पिणी के वासुदेव और प्रतिवासुदेव नवों युगल एक सरीखी नरक में गये हक्त ।

प्रश्न–८ : तीर्थंकर स ब धी वर्णन इस प्रकरण में किस प्रकार है?

उत्तर : (१) वर्तमान अवसर्पिणी काल के भरत क्षेत्र के २४ तीर्थंकर ऋषभ आदि महावीर पर्यंत है। **(२)** इनके पिता नाभिराजा आदि सिद्धार्थ पर्यंत है। **(३)** इनकी माता मढदेवी आदि त्रिशला पर्यंत है। **(४)** इनके पूर्वभव के नाम–वज्रनाभ आदि न दन पर्यंत है । **(५)** इनकी दीक्षा पालखी के नाम– सीता आदि च द्रप्रभा पर्यंत है । तीर्थंकर की इन दीक्षा पालखी को सर्व प्रथम प्रार भ में मनुष्य उठाते हक्त, फिर देवता मिलकर उस शिविका का स पूर्ण वहन करते हक्त, तब चार दिशा में से पूर्व में ज्योतिषी–वैमानिक देव, पश्चिम में असुरकुमार, उत्तर में गरूडदेव(सुवर्णकुमार) एव दक्षिण में नागकुमार देव रहते हक्त ।

(६) सभी तीर्थंकर एक देवदूष्य वस्त्र लेकर दीक्षित होते हैक्त। वे अन्यलि ग या गृहस्थलि ग अथवा कुलि ग को धारण नहीं करते हक्त अर्थात् केवल स्वलि ग से दीक्षित होते हक्त और वे स्वलि ग सिद्धा में गिने जाते हक्त ॥गाथा–२३॥ देवदूष्य वस्त्र के सिवाय स्वलि ग में मुखवस्त्रिका एव रजोहरण आवश्यक स्व=स यम के लि ग=उपकरण

गिने गये हक्त, जिन्हें वस्त्रत्यागी श्रमण, जिनकल्पी एव पडिमाधारी भिक्षु भी धारण करते हक्त, रखते हक्त । वर्तमान पर परा में तीर्थंकर के मुखवस्त्रिका एव रजोहरण रूप स्वलि ग का कथन अज्ञातकाल से छूट गया है, जब कि उसके बिना स्वलि ग की कोई प्रामाणिकता स भव नहीं होती है । केवल नग्न रहना यह कोई लि ग या स्वलि ग नहीं कहा जा सकता क्यों कि अनेक अन्य मतावल बी भी नग्न रहते हक्त ।

(७) भगवान ऋषभ देव का जन्म अज्ञात वनभूमि में हुआ था । क्यों कि तब तक गांव-नगर की वसति नहीं हुई थी और उनकी दीक्षा विनीता नगरी में हुई थी । यह नगरी शक्रेन्द्र के आदेश से देवों द्वारा निर्मित थी । अरिष्टनेमिनाथ की दीक्षा द्वारिकानगरी में हुई थी, जन्म शौर्यपुर नगर में हुआ था । शेष २२ तीर्थंकर अपनी जन्मनगरी में दीक्षित हुए थे ॥गाथा–२२॥

(८) भगवान महावीर अकेले दीक्षित हुए थे । पार्श्व–मल्लि ३०० के साथ, वासुपूज्य–६०० के साथ एव ऋषभदेव–४००० के साथ दीक्षित हुए थे । शेष १९ तीर्थंकर–१००० के साथ दीक्षित हुए थे । मल्लिनाथ भगवान स्त्री तीर्थंकर थे, उनके साथ ३०० स्त्रियें और ३०० पुढष यों ६०० दीक्षित हुए थे । कि तु यहाँ सूत्र में एक की अपेक्षा से ३०० का कथन है ॥गाथा–२४,२५॥

(९) दीक्षातप– (१) पाँचवें तीर्थंकर आहार करके (२) बारहवें तीर्थंकर १ उपवास करके (३–४) उन्नीसवें, तेवीसवें तेले में और शेष २० तीर्थंकर बेले की तपस्या में दीक्षित हुए थे । **(१०) तप का पारणा(प्रथम भिक्षा)–** प्रथम तीर्थंकर को १ वर्ष बाद पारणा हुआ । शेष सभी का दीक्षा के दूसरे दिन पारणा हुआ । एक तीर्थंकर के तपस्या और पारणा नहीं हुआ था। प्रथम तीर्थंकर को पारणे के दिन इक्षुरस मिला । शेष सभी को खीर (परमान्न) की भिक्षा मिली थी । सभी के पारणे में पुढष प्रमाण सोना मोहरों की वृष्टि हुई थी ॥गाथा–२६, ३१, ३२, ३३॥ पारणा में भिक्षा देने वालों के नाम श्रेया शकुमार आदि बहुलगाथापति पर्यंत २४ नाम कहे गये हक्त ।

(११) सभी तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष अर्थात् केवलज्ञान वृक्ष कहे गये हक्त अर्थात् इन वृक्षों के नीचे ध्यान में रहे उन-उन तीर्थंकरों को

केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । ऋषभदेव भगवान का चैत्यवृक्ष तीन कोश ऊँचा था । महावीर भगवान का अशोकवृक्ष सहित साल वृक्ष ३२ धनुष ऊँचा था तथा अन्य सभी तीर्थंकरों के अपनी अवगाहना से बारह गुना ऊँचा था ॥गाथा-३४ से ३९॥ जिस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान होता है, समवसरण में देवता उसी वृक्ष की रचना कर देते हक्त । अन्य मान्यतानुसार **दीक्षावृक्ष** को चैत्यवृक्ष कहा जाता है और समवसरण में देवता उसकी रचना करते हक्त ।

प्रस्तुत प्रकरण की गाथा ३७ के अनुसार भगवान महावीर स्वामी के समवसरण के अशोक वृक्ष के उपर उनका चैत्यवृक्ष शालवृक्ष आच्छादित होता है । इससे यह फलित होता है कि अतिशय रूप अशोकवृक्ष सभी तीर्थंकरों के होता है और उसके उपर उनके केवलज्ञान का वृक्ष आच्छादित रहता है ।

अशोकवृक्ष का अर्थ किया जाता है कि इस वृक्ष की छाया में समवसरण में पहुँचने वाले शोकरहित हो जाते थे । चैत्यवृक्ष का अर्थ होता है चित्त को प्रसन्न बना देने वाला । इस प्रकार तात्पर्य की अपेक्षा अशोकवृक्ष और चैत्यवृक्ष दोनों का समानार्थ कहा गया है ।

(१२) प्रथम शिष्य-शिष्या- तीर्थंकरों के प्रथम शिष्य ऋषभसेन आदि इन्द्रभूति पर्यंत एव प्रथम शिष्या ब्राह्मी आदि च दना पर्यंत २४-२४ कहे हक्त ।

(१३) एरवतक्षेत्र के वर्तमान चौवीसी के तीर्थंकर- प्रथम च द्रानन एव अ तिम वारिषेण आदि २४ नाम कहे हक्त ।

(१४) भरतक्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी के तीर्थंकर- प्रथम महापद्म आदि २४ नाम कहे हक्त । इनके पूर्व भव के नाम भी कहे हक्त, जिसमें से अपने यहाँ चौथे आरे के अनेक प्रसिद्ध नाम या नाम साम्य वाले हक्त, यथा- (१) श्रेणिक (२) सुपार्श्व (३) उदक (४) पोटिल्ल अणगार (५) दृढायु (६) कार्तिक (७) श ख (८) न द (९) सुन द (१०) शतक (११) देवकी (१२) सत्यकी (१३) वासुदेव कृष्ण (१४) बलदेव (बलभद्र) (१५) रोहिणी (१६) सुलसा (१७) रेवती (१८) शताली (मृगाली) (१९) भयाली (२०) द्वीपायन (२१) नारद (२२) अ बड (२३) स्वाति (२४) बुद्ध । ये जीव क्रमशः आगामी उत्सर्पिणी के

२४ तीर्थंकर बनेंगे । श्रेणिक राजा का जीव प्रथम तीर्थंकर पद्मनाम बनेंगे । इन २४ में कृष्ण, बलराम और उनके माता-पिता कुल ५ नाम है । इन २४ जीवों में से इस समय कोई जीव नरक में और कोई देवलोक में अपना आयुष्य भोग रहे हक्त ।

(१५) एरवत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी के २४ तीर्थंकरों के नाम यहाँ गाथा ८९ से ९५ तक में कहे हैं ।

प्रश्न-९ : इस सूत्र के अ तिम उपस हार सूत्र में क्या कहा गया है ?

उत्तर : महापुढषों के वर्णन रूप अ तिम प्रकरण का उपस हार करते हुए स पूर्ण शास्त्र का उपस हार किया गया है, जिसमें स क्षेप में इस शास्त्र का माहात्म एव परिचय दर्शाया गया है । यथा- इस प्रकार इस शास्त्र में कुलकर, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, दशारम डल (वासुदेव-बलदेव) और गणधर स ब धी पर पराएँ अर्थात् तीसरे आरे के अ त से लेकर चौथे आरे के अ त तक होने वालों का, आगामी काल में होने वालों का या भूतकाल के तीर्थंकर आदि का तथा भरतक्षेत्र के साथ ऐरवतक्षेत्र स ब धी वर्णन इत्यादि । इन वर्णनों में प्रयुक्त **व श** शब्द अनेक पर पराओं को प्रगट करने के अर्थ में लगा है । इसी प्रकार इस शास्त्र में अनेक वर्णन श्रमणों स ब धी होने से उन्हें अलग-अलग अपेक्षा से ऋषिवर्णन, यतिवर्णन एव मुनिवर्णन के रूप में स्वीकारा गया है और स निकट लय से(चक्रवर्ती व श वगैरह वर्णन के समीप होने से)सभी के साथ व श शब्द लगाया गया है। यह एक विशिष्ट शैली का प्रयोग है, यथा- व्यवहार सूत्र में पडिमा शब्द का प्रयोग एकलविहार के साथ लगा होने से उसके बाद में अन तर वर्णित पासत्था आदि सभी को पडिमा शब्द लगाया गया है तथा समुद्घात के प्रकरण में ४ कषाय की समुद्घात कहने के साथ अकषाय की भी समुद्घात कही है।

इसके बाद के शब्दों से बताया गया है कि यह शास्त्र- (१) श्रुत रूप है ।(२) श्रुतज्ञान का अ ग रूप (१२ अ ग में से एक होने से) है ।(३) श्रुत समास=श्रुत का स क्षेप है क्यों कि इसमें अनेक विषय और अनेक शास्त्रों की बातें स क्षिप्त में कही है ।(४) श्रुत स्क ध- यह एक ही श्रुतस्क ध है, इसमें अन्य बडे विभाग नहीं है ।(५) अनेक

तत्त्वों का या जीवादि समस्त तत्त्वों का इसमें समावेश होने से समवाय रूप है । (६) स ख्या रूप वर्णन वाला शास्त्र है ।(७) समस्त= परिपूर्ण अ ग सूत्र है । (८) पूरा शास्त्र एक ही अध्ययन रूप है, इसमें उद्देशक आदि कोई छोटे-छोटे विभाग भी नहीं है । प्रकरण रूप विभाग भी मूल पाठ में नहीं है, वे पाठकों की सुविधा के लिये आधुनिक विभाजन रूप में प्रचलित हुए हक्त । इस प्रकार उपस हार सूत्र को उसके शब्दार्थों के माध्यम से समझने समझाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर प्रकाशन का यह दूसरा ख ड स्थाना ग सूत्र और समवायाँग सूत्र के भावों एव श का समाधानों के साथ पूर्ण होता है ।

नोंध–स ख्या समवायों में तथा बाद के प्रकरण में आये विशिष्ट पुढषों के परिचायक अनेक विषय आगे परिशिष्ट–१में चार्ट पद्धति से दिये हक्त ।

॥ स ख्या मुक्त प्रकरण स पूर्ण ॥

॥ समवाया ग सूत्र स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग–२ स पूर्ण ॥

आगम प्रश्नोत्तर का यह प्रावधान सन २०११ तक समापन करने का आयोजन है । यह दूसरी पुस्तक स्थाना ग–समवाया ग प्रश्नोत्तर की पाठकों के हाथ में है। दिसम्बर–२००८ तक भगवतीसूत्र प्रश्नोत्तर की तीसरी और चोथी पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना है ।

सौजन्य दाताओं की शुभ नामावली

(१) श्री अक्षयकुमारजी सामसुखा, मु बई
(२) श्री बी.गौतमचन्दजी का करिया
(३) श्री प्रतापमुनि ज्ञानालय, बडीसादडी
(४) श्री केवलचन्दजी जवानमलजी सामसुखा
(५) श्री मा गीलालजी जैन सामसुखा, बेलगाम सिटी
(६) श्री एल. आशकरणजी गोलेछा, राजना दगाव
(७) श्री पूनमचन्दजी बरडिया, अहमदाबाद
(८) श्री बी. मोहनलालजी अजितमलजी भुरट, बेंगलोर
(९) श्री च पालालजी ता तेड, मद्रास
(१०) श्री केवलच दजी बाबूलालजी कटारिया, प जागुटा
(११) श्री शा तिलालजी दुग्गड, नासिक
(१२) श्री एस. रोशनलालजी जैन (गोलेछा), रायपुर
(१३) मे. च पालालजी भँवरलालजी पारख, दोंडायचा
(१४) श्री मोहनलालजी डागा, पाली मारवाड
(१५) श्री चा दमलजी भ साली, बेंगलोर
(१६) श्री राजीव जैन, सुपुत्र श्री रामधारी जैन, पानीपत
(१७) श्रीमती कमलादेवी माणेकचन्द सा. चोपडा, जोधपुर
(१८) श्री ताराचन्दजी स कलेचा, मद्रास
(१९) श्री माणेकचन्दजी जैन, मद्रास
(२०) श्री एल.महावीरचन्दजी जैन रा का, गुडियातम
(२१) श्री पुखराजजी गोलेच्छा, रायपुर
(२२) श्रीमती निर्मलाबेन नीलमचन्दजी ओस्तवाल, मद्रास
(२३) श्रीमती आशालता बाफणा, धूलिया
(२४) श्री पारसमलजी किशोरकुमारजी सोल की, कोयम्बतूर
(२५) श्री हनव तराजजी डोसी(सा चोर वाले)दिल्ली
(२६) श्री धर्मीचन्दजी माढ, दिल्ली
(२७) श्री जी. सुरेशकुमारजी नाहर, अ कलेश्वर
(२८) श्री दुलीचन्दजी जैन, मद्रास
(२९) श्री च पालालजी कँवरलालजी गोलेच्छा, भिलाई(खीचन निवासी)
(३०) स्व. श्रीमती शकुनबाई अमृतलालजी गोलेच्छा, भिलाई(खीचन नि.)

अग्रिम ग्राहक :–

(१) श्री तिलोकचन्दजी कानूगा, अहमदाबाद
(२) श्री महावीर जैन वाचनालय, झाबुआ
(३) श्री रिषभचरण जैन, नालागढ
(४) श्री रामरतन जैन ग्र थालय, उज्जैन
(५) श्री एस. एस. जैन सभा, फरीदाबाद
(६) श्री क चन मिश्रीलालजी चोपडा, जलगाँव
(७) श्री आचार्य विनयचन्द ज्ञानभ डार, जयपुर
(८) श्री जैन धार्मिक उपकरण केन्द्र, हैदराबाद
(९) श्री हरखचन्दभाई माडण, मुम्बई
(१०) श्री स्था. पोरवाल जैन श्रावक स घ, धार
(११) श्री केवलमलजी लोढा, जयपुर
(१२) श्री लालचन्दजी बाबूलालजी भटेवरा, धूलिया
(१३) श्री व्या. वा. श्री चन्दनमुनिजी म.सा. नीमचसीटी
(१४) श्री किसनलाल रतनचन्द मुणोत, बीड
(१५) श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुले
(१६) श्रीमती म गला नवीनचन्द्र जैन(बोथरा)म डलेश्वर
(१७) श्री सोहनलाल सियानी ग्र थालय, बेंगलोर
(१८) श्री अमितराय जैन, बडौत(मेरठ)
(१९) श्री प्रेमचन्दजी धूपिया, रायपुर(राज.)
(२०) श्री ऊकचन्दजी बाफणा, गन्टूर
(२१) श्री एस. कन्हैयालाल गोलेछा, मद्रास
(२२) श्री प्रेमसुख सुवालाल छाजेड, पूना
(२३) श्री के. ह सराज गोलेछा, ईरोड
(२४) श्री धर्मीचन्दजी ब ब, व्यावर
(२५) श्री मनोहरलालजी जैन, धार
(२६) श्री अशोककुमारजी सामरा, अमरावती
(२७) श्री एम. मोहनलाल जैन, तिढवन्नामली
(२८) श्री किशनलाल रूपचन्द कोठारी, जामनेर
(२९) श्री मढधर केसरी स्था.जैन गुढ सेवा समिति, सोजत
(३०) श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक स घ, जोधपुर
(३१) श्री मोहनलालजी लालचन्दजी चोपडा, नासिकरोड
(३२) श्री साधुमार्गी शा तक्रा ति जैन श्रावक स घ, कानोड
(३३) श्री घेवरचन्दजी चम्पालालजी बागरेचा, जोधपुर
(३४) श्री साबदरा एन्ड साबदरा, नासिक
(३५) श्री एच.प्रकाशचन्द खींचा, बेंगलोर

(३६) श्री समरथमलजी सागरमलजी लोढा, महागढ
(३७) श्री शोभा नेमीचन्दजी सा खला, विशाखापटनम
(३८) श्री आदर्श महिला म डल, अहमदनगर
(३९) श्री धर्मीचन्दजी जैन, चित्तूर
(४०) श्री जबरचन्दजी जैन, धमधा
(४१) श्री प्रवीण जैन, सुजालपुर सीटी
(४२) श्री कु वरचन्द जैन एडवोकेट, हनुमानगढ
(४३) श्री कुलव तराय जैन, का धला
(४४) श्री चन्दनबाला स्वाध्याय म डल, पूना
(४५) श्री हनुमानचन्दजी जैन, बेंगलोर
(४६) श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक स घ, कल ब
(४७) श्री सतीदानजी शा तिलालजी कोठारी, राजना दगाँव
(४८) श्री तिलोकचन्द किशोर चोरडिया, मद्रास
(४९) श्री गणेश टुकमदास गु देचा, बार्शी
(५०) श्री एस.एस. जैन सभा, नारनौल
(५१) श्री भ्राता फूलचन्दजी जैन, लुधियाना
(५२) श्री गणेश जैन पुस्तकालय, जालना
(५३) श्री भ वरलालजी महेन्द्रकुमारजी कोचर, रायपुर
(५४) श्री शा तिलाल नथमल जैन, चालीसगाँव
(५५) श्री कजोडीमल जैन (नेता) खेरली
(५६) श्री महेश नाहटा, नगरी(एम.पी)
(५७) श्री सुशील बहु म डल, जलगाँव (५ सेट)
(५८) श्री जगदीश जैन(श्री सुभद्रमुनि)दिल्ली
(५९) श्री धर्मराजजी सुराणा, भ डारा
(६०) श्री जीतमल न दलाल जैन, बीजापुर(कर्नाटक)
(६१) श्री का तिलाल जैन, दुग्गड(कुर दीवाला)जगदलपुर
(६२) श्री दीपचन्दजी बोथरा, जगदलपुर
(६३) श्री शा तिकुमार जैन, दिल्ली
(६४) श्री आदर्शज्योति धार्मिक एव परमार्थिक ट्रस्ट, इन्दौर
(६५) श्री बस त एन्टरप्राईजेज, केसिंगा
(६६) श्री विमलचन्दजी बोल्या, सूरत
(६७) श्री प्रकाशचन्दजी पटवा, हुसूर
(६८) श्री अन त नवलमल सावडा, नासिक
(६९) डो. राजकुमारी सुरेश जैन, पारोल(जलगाँव)
(७०) श्री प्रेमचन्दजी ढेलडिया, राजना दगाँव
(७१) श्री रेखचन्दजी सा खला, राजना दगाँव

परिशिष्ट-१ : विशिष्ट पुढष परिचय

चक्रवर्ती :-

क्रम	नाम	उम्र	शरीरमान	नगरी	तीर्थंकर समय
१	भरत	८४ लाख पूर्व	५०० धनुष	विनीता	प्रथम के समय
२	सगर	७७ लाख पूर्व	४५० धनुष	अयोध्या	दूसरे के समय
३	माघव	५ लाख वर्ष	४२॥ धनुष	श्रावस्ती	१५ के बाद
४	सनत्कुमार	३ लाख वर्ष	४१॥ धनुष	हस्तिनापुर	१५ के बाद
८	सुभूम	६०,००० वर्ष	२८ धनुष	हस्तिनापुर	१८ के बाद
९	महापद्म	३०,००० वर्ष	२० धनुष	बनारस	२० के बाद
१०	हरिषेण	१०,००० वर्ष	१५ धनुष	क पिलपुर	२१ के बाद
११	जयषेण	३००० वर्ष	१२ धनुष	राजगृही	२१ के बाद
१२	ब्रह्मदत्त	७०० वर्ष	७ धनुष	क पिलपुर	२२ के बाद

बलदेव :-

१	अचल	८५ लाख वर्ष	८० धनुष	पोतानपुर	११ के समय
२	विजय	७३ लाख वर्ष	७० धनुष	द्वारिका	१२ के समय
३	भद्र	६५ लाख वर्ष	६० धनुष	बारावई	१३ के समय
४	सुप्रभ	५१ लाख वर्ष	५० धनुष	बारावई	१४ के समय
५	सुदर्शन	१७ लाख वर्ष	४५ धनुष	अक्तपुर	१५ के समय
६	आन द	८५००० वर्ष	२९ धनुष	चक्रपुर	१८ के बाद
७	न दन	६५,००० वर्ष	२६ धनुष	बनारस	१८ के बाद
८	पद्म (राम)	१५,००० वर्ष	१६ धनुष	राजगृही	२० के समय
९	बलभद्र	१२०० वर्ष	१० धनुष	शौर्यपुर	२२ के समय

वासुदेव :-

क्रम	नाम	उम्र	गति	प्रतिवासुदेव
१	त्रिपृष्ट	८४ लाख वर्ष	सातवीं नरक	अश्वग्रीव
२	द्विपृष्ट	७२ लाख वर्ष	छट्ठी नरक	तारक
३	सय भू	६० लाख वर्ष	छट्ठी नरक	मेरक
४	पुढषोत्तम	३० लाख वर्ष	छट्ठी नरक	मघुकैटभ
५	पुढषसि ह	१० लाख वर्ष	छट्ठी नरक	निशुंभ

क्रम	नाम	उम्र	गति	प्रतिवासुदेव
६	पुढषपु डरीक	६५,००० वर्ष	छट्ठी नरक	बलि
७	दत्त	५९,००० वर्ष	पाँचवीं नरक	प्रह्लाद
८	लक्ष्मण (नारायण)	१२,००० वर्ष	चोथी नरक	रावण
९	कृष्ण	१,००० वर्ष	तीसरी नरक	जरास ध

बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव तीनों की अवगाहना समान होती है। बलदेव और प्रतिवासुदेव की उम्र समान होती है। वासुदेव की उम्र कम होती है। पाँचवाँ, छट्ठा, सातवाँ चक्रवर्ती ही सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें तीर्थंकर हुए । सभी बलदेव वासुदेव की जन्मनगरी एक ही होती है कि तु क स के कारण कृष्ण की जन्मनगरी मथुरा थी । प्रस्तुत शास्त्र में अनुपलब्ध कथन जैन सिद्धा त बोलस ग्रह भाग-६, पृष्ट-१७८...से लिये गये है । सप्तति शत स्थान प्रकरण में तीर्थंकर स ब धी १७० बोलों का वर्णन है ।

तीर्थंकर :-

क्रम	तीर्थंकर नाम	शरीरमान	जन्मनगरी	गणधर/गण	साधु स पदा	मोक्ष परिवार
१	ऋषभ	५००धनुष	विनीता	८४	८४,०००	१०,०००
२	अजित	४५०	अयोध्या	९०	१ लाख	१०००
३	स भव	४००	श्रावस्ति	१०२	२ लाख	१०००
४	अभिनन्दन	३५०	अयोध्या	११६	३ लाख	१०००
५	सुमति	३००	अयोध्या	१००	३२००००	१०००
६	पद्मप्रभ	२५०	कोशंबी	१०७	३३००००	३०८
७	सुपार्श्व	२००	वाराणसी	९५	३ लाख	५००
८	च द्रप्रभ	१५०	चन्द्रपुरी	९३	२५००००	१०००
९	सुविधि	१००	काक दी	८६	२ लाख	१०००
१०	शीतल	९०	भद्दिलपुर	८३	१ लाख	१०००
११	श्रेयाँस	८०	सि हपुर	६६	८४,०००	१०००
१२	वासुपूज्य	७०	च पा	६२	७२,०००	६००
१३	विमल	६०	क पिलपुर	५६	६८,०००	६०००
१४	अन त	५०	अयोध्या	५४	६६,०००	७०००
१५	धर्म	४५	रत्नपुर	४८	६४,०००	१०८
१६	शान्ति	४०	गजपुर	९०	६२,०००	९००
१७	कुंथु	३५	गजपुर	३७	६०,०००	१०००
१८	अर	३०	गजपुर	३३	५०,०००	१०००

क्रम	तीर्थंकर नाम	शरीरमान	जन्मनगरी	गणधर/गण	साधु स पदा	मोक्ष परिवार
१९	मल्लि	२५	मिथिला	२८	४०,०००	५००
२०	मुनिसुव्रत	२०	राजगृही	१८	३०,०००	१०००
२१	नमि	१५	मिथिला	१७	२०,०००	१०००
२२	अरिष्टनेमि	१०	सौर्यपुर	११	१८,०००	५३६
२३	पार्श्व	९ हाथ	वाराणसी	१०	१६,०००	३३
२४	वर्धमान	७ हाथ	क्षत्रियकुंड	११/९	१४,०००	एकाकी

तीर्थंकर	उम्र	दीक्षा पर्याय	छद्मस्थ काल
१	८४ लाख पूर्व	एक लाख पूर्व	१००० वर्ष
२	७२ लाख पूर्व	१ ला.पू.में एक पूर्वांग कम	१२ वर्ष
३	६० लाख पूर्व	१ ला.पू.में चार पूर्वांग कम	१४ वर्ष
४	५० लाख पूर्व	१ ला.पू.में आठ पूर्वांग कम	१८ वर्ष
५	४० लाख पूर्व	१ ला. पू.में १२ पूर्वांग कम	२० वर्ष
६	३० लाख पूर्व	१ ला.पू.में १६ पूर्वांग कम	६ मास
७	२० लाख पूर्व	१ ला.पू.में २० पूर्वांग कम	९ मास
८	१० लाख पूर्व	१ ला.पू.में २४ पूर्वांग कम	३ मास
९	२ लाख पूर्व	१ ला.पू.में २८ पूर्वांग कम	४ मास
१०	१ लाख पूर्व	२५ हजार पूर्व	३ मास
११	८४ लाख वर्ष	२१ लाख वर्ष	२ मास
१२	७२ लाख वर्ष	५४ लाख वर्ष	१ मास
१३	६० लाख वर्ष	१५ लाख वर्ष	२ मास
१४	३० लाख वर्ष	साडा सात लाख वर्ष	३ वर्ष
१५	१० लाख वर्ष	ढाई लाख वर्ष	२ वर्ष
१६	१ लाख वर्ष	२५ हजार वर्ष	१ वर्ष
१७	९५ हजार वर्ष	२३७५० वर्ष	१६ वर्ष
१८	८४ हजार वर्ष	२१ हजार वर्ष	३ वर्ष
१९	५५ हजार वर्ष	५४९०० वर्ष	एक प्रहर
२०	३० हजार वर्ष	७५०० वर्ष	११ मास
२१	१० हजार वर्ष	२५०० वर्ष	९ मास
२२	१ हजार वर्ष	७०० वर्ष	५४ दिवस
२३	१०० वर्ष	७० वर्ष	८४ दिवस
२४	७२ वर्ष	४२ वर्ष साधिक	१२ वर्ष ५॥मास

॥॥ परिशिष्ट- १ स पूर्ण ॥॥

क्रम	पुस्तक का नाम	मूल्य
(१)	उत्तराध्ययन सूत्र सारा श	५-००
(२)	दशवैकालिक सूत्र सारा श	५-००
(३)	आचारा ग सूत्र सारा श	५-००
(४)	ठाणा ग सूत्र सारा श	५-००
(५)	समवायाँग सूत्र सारा श	५-००
(६)	भगवती सूत्र सारा श	५०-००
(७)	ज्ञाता सूत्र सारा श	६-००
(८)	उपासकदशा सूत्र सारा श	१०-००
(९)	अ तगड सूत्र सारा श	२०-००
(१०)	राजप्रश्नीय सूत्र सारा श	१०-००
(११)	ऐतिहासिक स वाद	१०-००
(१२)	जीवाभिगम सूत्र सारा श	७-००
(१३)	ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र सारा श	७-००
(१४)	ज्योतिषराज प्रज्ञप्ति सूत्र सारा श	७-००
(१५)	चार छेद सूत्र सारा श(परिशिष्ट युक्त)	५०-००
(१६)	बृहत्कल्प सूत्र सारा श	५-००
(१७)	व्यवहार सूत्र सारा श	५-००
(१८)	उपदेश शास्त्र जैनागम नवनीत	५०-००
(१९)	गुणस्थान स्वरूप	२-००
(२०)	ध्यान स्वरूप	२-००
(२१)	चौद नियम	२-००
(२२)	बार व्रत	२-००
(२३)	स वत्सरी एकता विचारणा	२-००
(२४)	सामायिक सूत्र सरल प्रश्नोत्तर	२-००
(२५)	सामायिक प्रतिक्रमण विशिष्ट प्रश्नोत्तर	२-००
(२६)	सविधि हिन्दी श्रावक प्रतिक्रमण	२-००
(२७)	आगम विपरीत मूर्ति पूजा	२-००
(२८)	श्रमण प्रतिक्रमण हिन्दी	२-००
(२९)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर-१	१०-००
(३०)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर-२	१०-००
(३१)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर-३,४	२०-००
(३२)	चरणाणुयोग स पूर्ण -२ भागों में	१०००-००
(३३)	द्रव्यानुयोग स पूर्ण -३ भागों में	२०००-००
(३४)	त्रीणि छेद सूत्राणि विवेचन सहित	३००-००
(३५)	निशीथ सूत्र विवेचन सहित	३००-००
(३६)	जैनागम प्रश्नोत्तरी (अग्रिम ग्राहक) (दस भागों में स पूर्ण-३२ आगम)	६००-००

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	કિ મત
(૧)	જૈનાગમ નવનીત પ્રશ્નોત્તર, ભાગ–૧, ૨	૨૦–૦૦
(૨)	જૈનાગમ નવનીત પ્રશ્નોત્તર, ભાગ–૩,૪	૨૦–૦૦
(૩)	ચૌદનિયમ	૨–૦૦
(૪)	બારવ્રત	૨–૦૦
(૫)	જૈન શ્રમણોની ગોચરી તથા શ્રાવકાચાર	૫–૦૦
(૬)	બત્રીસ આગમોનો ગુજરાતી સારા શ (૮ ભાગોમા)	૪૦૦–૦૦
(૭)	બત્રીસ આગમ : ગુજરાતી વિવેચન(૩૫ ભાગોમા)	૭૦૦૦–૦૦
(૮)	ચરણાનુયોગ સ પૂર્ણ (બે ભાગોમા) ૧૬૦૦–૦૦	
(૯)	જૈનાગમ નવનીત પ્રશ્નોત્તરી(અગ્રિમ ગ્રાહક) (દસ ભાગોમા –સ પૂર્ણ ૩૨ આગમ)	૬૦૦–૦૦
(૧૦)	વૈજ્ઞાનિક માન્યતા અને જૈનાગમ દષ્ટિ	૨–૦૦

ગુજરાતી સાહિત્ય